

प्रकाशक :
श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ
समता भवन, रामपुरिया मार्ग, बीकानेर-334005 (राज)
फोन 0151-2544867, 3292177
फैक्स 0151-2203150

श्री राम उवाच-11

बिन कुंजी के खुले न ताला

आचार्य-प्रवर श्री रामलालजी म.सा.

प्रकाशक :
श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ
समता भवन, बीकानेर 334005 (राज.)

श्री राम उवाच - 11

बिन कुञ्जी के खुले न ताला

प्रवचनकार :
आचार्य-प्रवर श्री रामलालजी म.सा.

प्रथम संस्करण : सितम्बर 2009, 3100 प्रतियाँ

मूल्य : 35/-

अर्थ सहयोगी :
श्री रतनलाल, मुकेशकुमार, राकेश कुमार रांका
चैन्नई/सारोठ

प्रकाशक :
श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ
समता भवन, रामपुरिया मार्ग, बीकानेर-334005 (राज.)
फोन : 0151-2544867, 3292177
फैक्स : 0151-2203150

मुद्रक :
तिलोक प्रिंटिंग प्रेस
मोहता अस्पताल के पास, बीकानेर
मो. : 9314962475

प्रकाशकीय

शास्त्रज्ञ तरुण तपस्वी प्रशान्तमना आचार्य-प्रवर 1008 श्री रामलालजी म.सा. हुक्मगच्छ के नवम् एवं परम पूज्य आचार्य-प्रवर श्री नानालालजी म.सा. के पट्टधर है। आपश्री संयम के प्रति सजग, अनुशासन के प्रबल हिमायती एवं व्यसनमुक्ति सस्कार क्रान्ति के अद्भुत प्रणेता है। इसी के कारण आज साधुमार्गी जैन संघ की यशकीर्ति चहुँदिशा मे फैल रही है। आचार्य श्री नानेश ने अपनी दिव्यदृष्टि से आचार्य श्री रामलालजी म.सा का चयन कर संघ को एक मजबूत आधार प्रदान किया।

आचार्य श्री रामेश के पावन विचार सम्पूर्ण समाज में एक अलौकिक क्रान्ति का संचार कर रहे हैं। आपके क्रान्तिकारी प्रवचन निःसंदेह आज के इस युग में अत्यन्त प्रासंगिक है। सघ ने आपके द्वारा प्रदत्त ओजस्वी प्रवचनों को श्री रामउवाच के रूप में संकलित करने का निर्णय लिया। तदनुसार श्री रामउवाच प्रवचन माला का यह 11वां भाग बिन कुंञ्जी के खुले न ताला आपके हाथो में है। इस पुस्तक के समस्त प्रवचन आचार्य-प्रवर 1008 श्री रामलालजी म सा द्वारा जयपुर चातुर्मास में चातुर्मास के अन्तर्गत जनजागरण हेतु प्रदान किये गये थे।

प्रस्तुत कृति का संरक्षण महाश्रमणीरत्ना श्री इन्द्रकंवरजी म सा के निर्देशानुसार विदुषी महासतीवर्या श्री सुयशप्रज्ञाजी म.सा. ने किया। सम्पादन हेतु ख्यातनाम शब्द-शिल्पी डॉ आदर्श सक्सेना का चयन किया गया।

इस वर्ष संघ के गौरवशाली राष्ट्रीय अध्यक्ष श्री सुन्दरलालजी दुगड तथा राष्ट्रीय महामंत्री श्री गौतमजी पारख की भावनानुसार संघ ने श्री रामउवाच के प्रकाशन को नवीन स्वरूप देने का निर्णय लिया। उसी अनुरूप उपरोक्त पुस्तक को श्रेष्ठ साज-सज्जा के साथ प्रकाशित किया जा रहा है।

इस पुस्तक के प्रकाशन में हमारे संघ के उदारमना दानवीर शासननिष्ठ श्री रतनलालनजी, मुकेशकुमारजी, राकेशकुमारजी राका, चैन्नई निवासी का अर्थ सहकार का आग्रह रहा। निश्चित ही आपकी शासननिष्ठा समर्पणा एवं श्रद्धा बेजोड़ है। सघ आपके प्रति हार्दिक आभार प्रकट करता है।

मैं सघ की ओर से तथा अपनी ओर से इस पुस्तक के प्रकाशन मे प्रत्यक्ष एवं परोक्ष सहयोगी बने समस्त आत्मीयजनों का आभार प्रकट किये बिना नहीं रह सकता, जिनके सहयोग से ही यह भागीरथी कार्य सम्पन्न हो सका। सम्पादन में आचार्य-प्रवर के मूलभावो को सुरक्षित रखने का पूर्ण प्रयास किया गया है तथापि अज्ञानतावश यदि कोई त्रुटि रह गई हो तो उसके लिये हम क्षमाप्रार्थी है।

संयोजक

राजमल चौरड़िया

साहित्य प्रकाशन समिति

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ, बीका

श्री रतनलालजी, मुकेशकुमारजी, राकेशकुमारजी राका
चैन्नई/सारोठ

स्वनामधन्य श्रेष्ठिवर स्वर्गीय श्री रोड़मलजी सा. रॉका तथ उनकी धर्मपत्नी सुश्राविका स्वर्गीय श्रीमती कंचनबाई मूल निवासी सारोठ (ब्यावर के पास) हैं। स्व. श्री मेघराजजी रांका के सुपुत्र श्री रोड़मलजी उदार, सरल, धर्मनिष्ठ, सेवाभावी सुश्रावक थे। आपके पाँच पुत्र एवं एक पुत्री हैं। श्री रॉकाजी ने अनेक व्रत-प्रत्याख्यान अंगीकार कर रखे थे नियमपूर्वक 6-6 सामायिक, स्वाध्याय आपकी प्रतिदिन की दिनचर्या में शामिल थे।

आपके ज्येष्ठ पुत्र स्व. श्री बालचन्दजी रांका ने अपना कार्यक्षेत्र दक्षिण में चैन्नई को बनाया। व्यापार में अभिवृद्धि के साथ-साथ आपने धार्मिक, सामाजिक कार्यों में भी अपार यश प्राप्त किया। 'समता-भवन', तण्डियारपेट के निर्माण में आपका मुख्य सहयोग रहा। उनके पुत्र श्री अशोकजी भी उन्हीं के पदचिन्हों पर चल रहे हैं।

आपके द्वितीय पुत्र श्री कन्हैयालालजी राजस्थान में ही रहते हैं। आप सारोठ संघ के पूर्व अध्यक्ष थे। आपके तृतीय सुपुत्र श्री सम्पतराजजी रांका पूर्व में श्री साधुमार्गी जैन संघ तण्डियारपेट, चन्नैई के अध्यक्ष थे। चतुर्थ पुत्र श्री पारसमलजी रांका पूर्व में श्री साधुमार्गी जैन संघ तण्डियारपेट, चन्नैई के मानदमंत्री रह चुके है एवं पुत्री नवरतनबाई रूणीवाल भी धर्मनिष्ठ एवं सद्संस्कारी है एवं सपरिवार चैन्नई में रहते हैं।

आपके पॉचवे पुत्र श्री रतनलालजी रांका अत्यन्त मिलनसार, मृदुभाषी, सुहृदय, उदारमना, सेवाभावी युवारत्न है। आपका धार्मिक-सामाजिक कार्यक्षेत्र विस्तृत है। आपने श्री साधुमार्गी जैन संघ, तण्डियारपेट के पूर्व अध्यक्ष के रूप में समता भवन एवं उसकी गतिविधियों में काफी प्रशंसनीय कार्य किया। आप पूर्व में श्री साधुमार्गी जैन संघ, चैन्नई के मानद् मंत्री रह चुके हैं साथ ही साथ आप श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ, बीकानेर के राष्ट्रीय मंत्री व श्रमणोपासक के सह सम्पादक व साहित्य प्रकाशन के सहसंयोजक पद को सुशोभित कर चुके है, वर्तमान में आप राष्ट्रीय उपाध्यक्ष है। आप श्री साधुमार्गी जैन संघ, चैन्नई के अध्यक्ष के रूप में अपनी सेवाएँ प्रदान कर रहे हैं एवं भगवान महावीर

अहिंसा प्रचार संघ, चेन्नई के आप न केवल उपाध्यक्ष है, बल्कि एक कर्मठ कार्यकर्त्ता भी है। स्थानीय एवं बाहर की अनेक संस्थाओं से आप जुड़े हुए हैं एवं उनमें आपका महत्त्वपूर्ण सहयोग रहता है। आर.आर. ट्रेडिंग कॉर्पोरेशन (प्लास्टिक) आपका व्यापारिक प्रतिष्ठान है। आप केवल व्यापार तथा धनोपार्जन में नहीं, अपितु पारमार्थिक कार्यों में भी पूर्णरूपेण सक्रिय हैं। 'सादा जीवन, उच्च विचार' के आप जीवंत प्रतीक है। धार्मिक क्रियाओं के साथ-साथ आप मानवसेवा के प्रति भी उदात्त भावना रखते है और इसी भावना को साकार रूप प्रदान करते हुए आपने अपने पूज्य माताजी-पिताजी की पुण्यस्मृति में सारोठ में श्रीमती कंचनदेवी रोड़मलजी रांका चिकित्सालय का भी निर्माण करवाया है।

आपकी धर्मपत्नी श्रीमती सन्तोषबाई धार्मिक प्रवृत्ति, संत-सती सेवा एवं आतिथ्य-सत्कार में सदैव अग्रणी रहती है एवं अपने पति को धार्मिक कार्यों में सदा सहयोग देती रहती हैं। सचमुच में यह कहावत यहाँ शत-प्रतिशत चरितार्थ होती है कि 'हर सफल आदमी के पीछे एक महिला का हाथ रहता है'। आपके दो सुपुत्र- श्री मुकेशकुमार, श्री राकेशकुमार भी अपने पिता के पद्चिन्हों पर चल रहे हैं। आपकी पुत्रवधु सौ. दीपा व आरती भी धार्मिक प्रवृत्ति से ओत-प्रोत है। आपके दो सुपौत्र श्री ऋषभ, श्री आदेश व एक सुपौत्री महक है।

आपका परिवार एक धर्मनिष्ठ परिवार है। आदर्शत्यागी, पंडितरत्न, शासन प्रभावक श्री धर्मेशमुनिजी म.सा. एवं आदर्शत्यागिनी, विदुषी महासती श्री जयश्रीजी म.सा. आपके संसारपक्षीय बहनोई व बहन है।

आपका परिवार स्व. आचार्य श्री नानेश एवं वर्तमान आचार्य श्री रामेश के प्रति अनन्य आस्थावान एवं पूर्णरूपेण समर्पित है। आपने श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ को वर्तमान आचार्य-प्रवर श्री रामलालजी म.सा. के प्रवचनों एवं सद्साहित्य को प्रकाशित करने एवं जनसाधरण तक पहुँचाने के लिए अपनी सहमति प्रदान की है, इसके लिए संघ आपका आभारी हैं। हमें अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है कि अब तक श्री राम उवाच के दस भाग निकल चुके है और एकादशम भाग 'बिना कुञ्जी के खुले ना ताला आपके हाथों में है। सुज्ञ पाठक अधिक से अधिक इसका लाभ उठायेंगे, इसी आशा और विश्वास के साथ.....

केशरीचंद सेठिया,

चैन्नई

अनुक्रमणिका

1. बुद्धिर्यस्य बलं तस्य

शुद्ध आलम्बन के स्वरूप की कुछ चर्चा आपके सामने कर चुका हूँ। आलम्बन, आधार (सहारा) को कहते हैं। यह आधार या सहारा यदि शुद्ध होता है तो उस आधार के सहारे हमारी क्रियाएँ, चिन्तन-मनन शुद्धता की ओर बढ़ती चली जाती है। कई भाई-बहिन तीन दिन की तपस्या करते हैं। कई बेला करते हैं, कई पौषध सहित करते है। दीपमालिका का प्रसंग आपके सामने आने वाला है, उस प्रसंग से भी तपस्या होती है, पर क्या कारण है कि बहुत-सी क्रियाएँ अब नही होती। बहुत से भाई इन दिनो में पहले तो रोकड़-बहीखाते बदलते थे, पर अब कहते हैं- बदलने का नही रहा। "स्वास्तिक" आदि बनाकर परम्परा का निर्वाह कर लेते हैं। लिखते हैं- गौतम स्वामी की लब्धि, शालिभद्र की ऋद्धि, अभयकुमार की बुद्धि, भरत की पदवी, बाहुबली का बल कयवन्ना का सौभाग्य.....। सब-कुछ माँगा है। आपने लब्धि, ऋद्धि, सौभाग्य, पदवी, बल ये तो सब माँग लिये, इन सबकी कामना हो गई, पर मूल बिन्दु पर आप केन्द्रित हो नही पाये। जिसकी प्राप्ति की कामना की उसके भी कोई न कोई कारण रहे होंगे। इस स्थिति पर तनिक गंभीरता से विचार करे।

हम कहें अभयकुमार की बुद्धि, तो वह कैसे प्रगट हुई ? उसके इतिहास को देखिये। उन कारणो को ढूंढने का प्रयत्न कीजिये, जिनसे वह स्थिति बनी। वे कारण यदि हमारे भीतर पैदा हो जाये, उन्हे हम आजमा ले, तो हमारी भी अभय जैसी बुद्धि बन सकती है। विचार कीजिये अभयकुमार जैसी बुद्धि से तात्पर्य क्या है ? अक्लमंद तो कई

होते हैं, पर केवल अक्लमंदी से काम नही चलता। अक्लमंद भी इधर से उधर भटकते फिरते दिखाई देते हैं। भारत मे भी अक्लमंद बहुत हैं, पर उनकी अक्ल क्या काम आ रही है ? अक्लमंदी के साथ चाहिये काबलियत भी। यदि अक्लमंद काबिल नहीं है तो उसकी बुद्धि महत्व नहीं रखती। उससे कार्यसिद्धि होनी कठिन है। हम अभयकुमार जैसी बुद्धि की बात करते हैं तो बुद्धि केवल बुद्धि के रूप में नहीं थी, किन्तु उसमें काबलियत भी थी।

काबिल कौन होता है ? काबिल वह होता है जो अपनी बुद्धि का उपयोग करना जाने, शिक्षा का उपयोग करना जाने। पढ़-लिख लिया पर कुछ करने की तरकीब नहीं है तो वह पढा-लिखा भी गंवार है। पर जब उसमें काबलियत आ जाती है, तब वह उससे बहुत कुछ विकास अर्जित कर लेता है। इसलिए बुद्धि की जितनी महिमा नहीं है, उससे अधिक महिमा है यह जानने की कि उसका उपयोग कैसे किया जाये। एक व्यक्ति को बुद्धि मिली है, पर यदि वह उसका उपयोग विनाश या हिंसा में करता है तो कैसी स्थिति बनती है इसका उदाहरण आज विश्व में बढ़ते हुए आतंकवाद में देखा जा सकता है। पूरे विश्व में आवाज उठ रही है कि आतंकवाद को समाप्त किया जाये। क्या आतंकवादियों में बुद्धि नहीं है ? क्या वे बिना बुद्धि के काम कर लेते हैं ? उनके जो सरगना है, जिनके निर्देशन मे वे काम कर रहे हैं, क्या उनकी बुद्धि कम है ? भारत में भी तमिलनाडु व कर्नाटक सरकारें आतंकवाद की मार झेल रही है। आप पढ़ते होगे कि वीरप्पन ने कैसे दोनों प्रांतों को हिला कर रख दिया है। क्या वीरप्पन में बुद्धि नही है ? वह यदि बुद्धि का सदुपयोग करे, उसका सही नियोजन करे तो वह कितनी लाभदायी बन सकती है ! अभयकुमार ने वीरप्पन की तरह बुद्धि का दुरुपयोग नहीं किया, अपितु सदुपयोग किया। इसीलिये कहते हैं- अभयकुमार जैसी बुद्धि। उसकी बुद्धि मे क्या विशेपता थी ? उसकी बुद्धि मे सर्जन था , विसर्जन नहीं। वे सर्जन मे, विकास मे, बचाव में बुद्धि का प्रयोग करते थे। नरसंहार के लिए भी बुद्धि प्रकट होती है, वह बुद्धि की विशेपता नहीं है। नरसहार कोई भी कर सकता है, पर निर्माण या शांति-स्थापना

हर कोई नहीं कर सकता। आतंकवाद फैलाना बुद्धि की काबलियत नहीं है, पर उसे समाप्त कैसे किया जाये, समाप्त करने की बात छोड़िये, आतंकवाद पनपे नहीं इस दिशा मे बुद्धि का उपयोग किया जाये तो वह काबलियत है, वह बुद्धि का तजुर्बा है। उसे ही महत्त्वपूर्ण माना गया है। अभयकुमार के जीवन के एक नहीं अनेक आख्यान आपने सुने होंगे। उन्हें पढ़ते हैं तो लगता है कि हमारे मे भी वैसी बुद्धि होनी चाहिये।

अभय की बुद्धि के पीछे उनके माता-पिता का चारित्र बोल रहा है। मगध सम्राट श्रेणिक कितने चारित्रशील रहे। माता नंदा वैश्य पुत्री थी। संयोग से श्रेणिक की शादी हो गई और श्रेणिक छोड़कर चले गये कि जब राजा बनूंगा तब बुला लूंगा, किन्तु फिर भूल गये। अभय बालक था, किन्तु समझने लगा था। जब भी बच्चों के साथ खेलता था, कहता था राजा मैं बनूंगा। एक दिन बच्चो ने कह दिया- आया राजा बनने के लिए, बाप का तो ठिकाना नहीं। उसे चोट लगी, उसने माता से पूछा। माता ने पहले टालने का प्रयत्न किया, पर नहीं माना। इतने वर्ष बीत गये फिर भी नंदा ने मन में विचार नही किया। ये है माता-पिता का नैष्ठिक जीवन। नहीं तो थोड़ी-सी मन के अनुकूल बात नहीं हो तो महिलाएँ सास-सुसर ही नहीं पति के विषय में भी बोलने लग जायेगी। पर पतिव्रता नारी संकट सहकर भी मुँह पर ऐसा लब्ज नहीं लाती, बोल नहीं लाती, जिससे पति की तौहीन हो। किसी ने कुछ कह भी दिया तो वह कहती है नहीं, खबरदार, और किसी के लिए जो कहो पर पतिदेव के विषय में सुनना नहीं चाहती। कई व्यक्ति पुत्र का नाम हनुमान रख देते हैं, पर नाम रखने से वे हनुमंत नहीं बन जाते। हनुमान की माता का कैसा जीवन रहा है। 12 वर्ष पति ने आँख उठाकर नही देखा, परन्तु फिर भी पतिव्रता धर्म का निर्वहन करते रहना। आज के युग में व्यक्ति हाथाजोड़ी करे तो भी कहेगी मेरा निर्वाह नही होता, मैं तलाक देना चाहती हूँ। कितनी मनुहार करके वह रोकता है। ऐसा चारित्र हो तो हनुमान जैसा पुत्र कैसे बनेगा ? आज स्थिति बदल गई है। लोग पुरानी मान्यताओं को रूढ़ियाँ कहकर छोड़ रहे है और नये को अविवेकपूर्वक अपना रहे है। यह गलत है। पुरानी रूढ़ियो में यदि तथ्य हैं तो उन्हें स्वीकर करना चाहिये। पर ये नहीं कि जो पुराना है वह सब अच्छा है.

नया सब खराब है। पुराने में अच्छाई है तो वह स्वीकार की जानी चाहिये। परन्तु यदि कोई सोचे मुझे नये को ही अपनाना है या मुझे पुराने से ही चिपक कर बैठे रहना है, तो वहाँ मामला गड़बड़ मे पड़ जायेगा।

मैं वर्तमान से संबंधित एक महत्त्वपूर्ण बात कहना चाहता हूँ। वर्तमान युग में मीडिया का प्रभाव तेज रफ्तार से बढ़ रहा है। उसकी शक्ति और प्रभावशीलता के गुण बहुत गाये जा रहे हैं। प्रचार-प्रसार का वह एक प्रभावी माध्यम है। इसलिये कई भाई कहते है- महाराज ! आधुनिक प्रचार-प्रसार के साधनों को स्वीकार करें अन्यथा पिछड़ जाओगे। तो क्या इसीलिये मीडिया के विभिन्न साधनों का उपयोग या प्रयोग आरंभ कर दें ? स्वीकार कर ले ? क्या टी.वी. पर आ जाने से शांति मिल जायेगी ? पक्की बात है ? तब यदि अपनाने से शांति मिलने वाली नहीं तो फिर उसे अपनाने की आवश्यकता कहाँ पड़ गई ? हम मूल लक्ष्य से हट गये हैं। सत्य तो यह है कि मूल्य ही समाप्त हो गये हैं। मूल्यो का आधार ही समाप्त हो जाये तो आगे की अवस्था परिष्कृत कैसे रह सकती है ? आगे से आगे बदलाव आये तो क्या हम बदलते चले जाएँ ? बदलते-बदलते कहाँ पहुँच जायेगे यह सोचा है कभी ? यदि बदलने से शांति मिलती तो कभी की शांति मिल गई होती। हमने बहुत बदलाव कर लिये हैं। पहले के जमाने में धोती पहनने वालो की बहुलता थी। अंग्रेजो के सम्पर्क में आ गये तो बात बदल गई। आज सूट-सफारी आ गई है। पहले जमीन पर गादी बिछती थी, उस पर बैठते थे। सामने बाजोट होता था, जिस पर थाली परोसी जाती थी। अकेले भोजन की परम्परा कम थी, परिवार के साथ बैठकर भोजन करते थे। पर बदलाव आ गया कुर्सी-डाइनिंग टेबल आ गई। भोजन के साधन बदल गये। पहले हाथ से खाते थे, अब चम्मच, छुरी-काँटे भी आ गये। पहले के भोज्य पदार्थों में भी परिवर्तन हो गया, पर क्या इस परिवर्तन से चित्त में शांति आ पाई ? संतोष आ पाया ? यदि सर्वे किया जाये तो लगेगा कि 50 वर्ष पहले व्यक्ति जितने सुखी-संतोषी थे, उतने आज नहीं है। भले ही पैसा/सम्पत्ति बढ़ गई हो किन्तु जितनी सम्पत्ति बढी है, उतनी ही साथ मे हाय-हाय भी बढ़ी है। फिर परिवर्तन से क्या लाभ मिला ? यदि पुराने को छोड़ नया अपनाना है तो पहले देखो कि नये

में भी शांति है या नही ? जो नयेपन में जी रहे हैं वे क्या शांति पा रहे हैं ? यदि नही, तो परिवर्तन से क्या सुख मिलेगा। जब तक मूल पर ध्यान केन्द्रित नही होगा तब तक शांति मिल नही सकती।

पहले बुद्धि वितण्डा पैदा करने वाली नही थी। उस बुद्धि में विवाद नहीं संवाद की सुगंध थी। आज हमारी बुद्धि में वितण्डा और विवाद की भयंकर दुर्गन्ध मिलेगी। यदि हम अभयकुमार जैसी बुद्धि चाहते हैं तो पहले शुद्ध आलम्बन स्वीकार करें-

शुद्ध आलम्बन आदरे, तजी अवर जंजाल रे.....।
तामसी वृत्ति सहु परिहरे, भजे सात्विक सादरे साल रे.....।

यदि बुद्धि के साथ तामसी वृत्ति का संयोग चला तो बुद्धि निर्मल नहीं रहेगी। बुद्धि निर्मल कब होगी ? जब तामसी वृत्ति समाप्त हो जायेगी। भलाई के लिए बुद्धि का उपयोग होता है तो वह तामसी वृत्ति नही है। तामसी वृत्ति उसे कहते हैं जिसमें दूसरों की बढ़ती देख अंदर जलन हो, पाँव खिंचाई की भावना बने कि ये ऊपर कैसे चढ़ रहा है। ऐसे बीज बुद्धि में पड़े है, ऐसी तामसिक अवस्था बुद्धि की बनी है तो वह आलम्बन शुद्ध बन नही पाएगा, बुद्धि शुद्ध बन नहीं पाएगी।

धन को भी लोग आलम्बन मानते हैं। वह है भी। सांसारिक सुखों की प्राप्ति के लिये उसकी आवश्यकता होती है, पर ऐसा सांसारिक आलम्बन भी शुद्ध-अशुद्ध होता है।

आप लोग जानते हैं, मुझे कहने की आवश्यकता नहीं है कि अनीति का आया धन बरकत करता नहीं है। अनीति से धन भले कमा लें, पर बरकत नहीं होगी। ये मानी गई बात है, निश्चित बात है। आज व्यक्ति को शांति न मिलने का एक कारण यह भी है। व्यक्ति यह नही देख रहा है कि मेरे जीवन में धन-प्राप्ति का जरिया क्या है ? क्या नीति है, क्या अनीति ? नीति तो खूंटी पर टॉग दी है। येन-केन-प्रकारेण हथकंडे कैसे तैयार करे, उसमें किसी की जान जोखिम मे पड़े तो पड़े, मुझे उससे लेना-देना नही है, मेरे लिये तो पैसे की प्राप्ति होनी चाहिये। यदि ऐसी स्थिति है तो सुख कैसे मिलेगा ? ऐसी मानसिकता से कई बार

कैसी हास्यास्पद स्थितियाँ बन जाती है, इससे संबंधित एक दृष्टांत देता हूँ।

एक बहुत बड़ा धनाढ्य था, जो ब्याज पर पैसे देता था और ब्याज भी पूरा वसूलता था। ऐसे बहुत से व्यक्ति ब्याज में गड़बड़ी करते हैं। 4 महीने को 5 महीने बताना साधारण बात है। ऐसे पैसे वसूलने वालो का पैसा बरकत नहीं देता। वह सेठ तालाब में गिर गया, तैरना नहीं जानता था, गले तक डूब गया, प्रयत्न करता रहा, पर निकल नहीं पाया। इसे देखकर लोग कहते हैं– "मरने दो।" भीड़ इकट्ठी हो गई। लोगों को काम क्या है ? देखने की रहती है। पर धर्म के नाम पर, ज्ञान के लिए फुर्सत नहीं है। सडक पर नजारा देखने मे दो घंटा लगे तो भी थकान नहीं आएगी। एक दयालु व्यक्ति उधर से गुजर रहा था। पूछा बात क्या है ? पता चला एक धनाढ्य डूब रहा है। दयालु व्यक्ति ने आवाज लगाई– हाथ दे दो। कई बार कहा पर बात 'देने' की थी इसलिये उस धनाढ्य ने हाथ भी नहीं दिया। दयालु व्यक्ति अनुभवी भी था। धनाढ्यों की मानसिकता जानता था, अतः बात बदलकर कहा– "लो मेरा हाथ ले लो। लो पकड़ो।" उसने तुरन्त पकड़ लिया और निकल आया। ऐसा होता है संग्रह बुद्धि वालो का हाल। उससे कहा– "लाओ", तो देने वाला नहीं। कहा– "लो, मेरा हाथ पकड़ो।" तो झट पकड़ लेगा। अंतर क्या है ? बस मनोविज्ञान का ही अंतर है। व्यक्ति की वृत्ति कैसी है, उसका दिग्दर्शन हो जाता है। देने के लिए कौड़ी दे नहीं पाता, हाथ धूजता है, पर "लो" कहो तो तुरन्त ले लेता है। कहने का आशय है कि सपत्ति सुखी नहीं करती। ऐसी मानसिकता रहे तो शांति प्राप्त नही हो सकती। वह आलंबन ही शुद्ध नही है।

अभयकुमार की जैसी बुद्धि की बात चल रही थी। यदि आप उनके जैसी बुद्धि प्राप्त करना चाहते है तो पहले शुद्ध आलबन स्वीकारे, आल-जंजाल दूर करे, तामसी वृत्ति का त्याग करें। उसके त्यागपूर्वक सात्विकता को ग्रहण कर कदम बढ़ाएँ तो जो शांति-संतोष प्राप्त होगा, उसकी आप कल्पना तक नहीं कर सकते।

भगवान महावीर ने कठिन परीषह सहन किये थे, पर उनकी

भावनाओं में कोई उतार-चढाव नहीं आया था।

अनुकूल और प्रतिकूल, दोनों प्रकार के परीषह सहने मे वे अविचलित रहे। अनुकूल किसे कहा जाता है ? जो अच्छा होता है। अनुकूल अर्थात् मन को भाने वाले। दूसरे जो मन को भरते है, वे प्रतिकूल होते हैं। प्रतिकूल परीषह व्यक्ति को मजबूत बनाता है। उसे सहना अधिक मायने नहीं रखता। विरोध होता है तो व्यक्ति को जोश चढ़ता है और कहे- 'करो', तो ठडा पड़ जाता है। क्या करें ? अनुकूल सहना कठिन होता है। ताड़ना-तर्जना को व्यक्ति एक बार सह सकता है, पर स्तुति-गुणगान को सह पाना, पचा पाना बहुत कठिन काम है। थोडी स्तुति-विरुदावली हो जाये तो फूलकर कुप्पा हो जायेंगे, जैसे बैलून में हवा भरें तो फूलकर कुप्पा हो जाता है, पर जैसे ही वह हवा निकाली जाये तो क्या होगा ? इसलिए ऐसी अवस्था में फूलना नही चाहिये। भगवान ने भी कहा है- "समो णिन्दापसंसासु" अर्थात् समभाव रखे। कोई मान-अपमान कर दे तो प्रतिक्रिया न दिखाये। मान हितकर है, न अपमान अहितकर। मान जितना बिगाड़ करता है, शायद अपमान उतना न करे। किन्तु मान को हम गले लगाते हैं और अपमान को भगाना, दूर रखना चाहते हैं। ये मन की कमजोरी है। भगवान की निन्दा की गई हो तो भी वे शांतभाव से सुनते रहे। प्रशंसा की गई तो भी वे निर्लिप्त बने रहे। उन्होंने केवल सुना।

ऐसी ही निर्लिप्त साधना रंग लाती है। अनुकुल-प्रतिकूल दोनों परिस्थितियो में तटस्थ बने रहना चाहिये और अपनी साधना में लगे रहना चाहिये। यह कथन करना जितना सरल है, जीवन मे इस पर आचरण करना उतना ही कठिन है। सम्मान-पत्र मिले तो लेने की तैयारी रहती है, पर अपमान की बात विष-बाण जैसी लगती है। बंधुओं, समभाव बनाये रखने की बात बहुत महत्त्वपूर्ण या यों कहूँ सबसे महत्त्वपूर्ण है। उसके आदर्श हैं भगवान महावीर और संयोग से वीर निर्वाण दिवस का प्रसंग आ रहा है। उस अवसर पर क्या करना है, चिन्तन-मनन करें। कैसे मनाओगे उस प्रसंग को ? खूब दीप-बत्ती करोगे ? खूब पटाखे चलाओगे ? अरे ! कर्मों के खूब पटाखे छोड़ो और ऐसी दीया-बत्ती करो

कि घर–ऑगन का अंधेरा दूर हो जाये। सब ओर उजाला हो ऐसी तैयारी करो। आपने सुना ही होगा अंतिम समवशरण में नवमल्ली नवलच्छी राजा ने बेले के तप में प्रतिपूर्ण पौषध से भगवान महावीर की पर्युपासना की थी और भगवान की अनमोल वाचना श्रवण की थी। परम्परा की दृष्टि से उत्तराध्ययन वाचन का ही प्रसंग रहता है। कैसे क्या मनाना है, इस पर आप सब चिन्तन–मनन करें। ऐसे मनाने की योजना बनायें कि अभयकुमार की ताह बुद्धि निर्मल बने और शांति का मार्ग प्रशस्त हो सके। जीवन की सभी क्रियाओं की परिणति तो उसी की प्राप्ति में होनी चाहिये। भगवान महावीर की तपोगाथा से तो आप सभी परिचित हैं ही। इसलिये समझ लें कि परिवर्तन के लिये ही परिवर्तन कभी सुखद नहीं हो सकता, ध्यान मूल पर, लक्ष्य पर केन्द्रित रहना चाहिये। वृत्ति–परिष्करण की प्रवृत्ति बनी रहनी चाहिये। अनुकूल–प्रतिकूल परिस्थितियों में भी यदि बुद्धि भ्रमित न हो तो कर्मबंध से बचाव भी हो सकता है और शांति का सुखद राजमार्ग भी प्राप्त हो सकता है।

23.10.20(

❖ ❖ ❖

2. सौभाग्य का बीज

शुद्ध आलम्बन साधना का आधार होता है। वह शुद्ध हो तो साधनाएँ भी शुद्ध हो सकती है, परन्तु यदि आधार ही कच्चा हो तो मकान मजबूत नहीं हो सकता। नींव या आधार कमजोर है तो मकान का ढाँचा सहारा किसका पायेगा ?

साधना के चार आयाम हमारे सामने आते हैं। वैसे तो ज्ञान-दर्शन-चारित्र और तप के साथ दान-शील-तप और भावना भी चार आयाम हैं। परन्तु इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता, क्योंकि लक्ष्य तो एक ही है, रास्ता हम कोई भी चुनें। हाँ यह अवश्य है कि जब दान की बात आती है तो उसके शुद्ध स्वरूप पर विचार करना भी अनिवार्य हो जाता है। अतः उस पर विचार कर लें।

दान की अनेक कोटियाँ हैं, पर सुपात्र दान महत्त्वपूर्ण दानों में एक माना जाता है। आप कहेंगे महत्त्वपूर्ण में एक, इसका मतलब है अन्य भी महत्वपूर्ण दान है। जैसे अनुकंपा दान या अभयदान। हाँ ये भी श्रेष्ठदान है। अन्य दान भी गणना में आते हैं। जब हम फल की आकांक्षा लेकर चलते हैं तो कामना बड़ी ऊँची होती है। चाह ऐसी रहेगी भले वैसी के दर्शन भी नही किये हों। पर इतनी ऊँची चाह कभी उड़ान भर भी सकेगी या नहीं, यह भी सोचा है ? भौतिक पदार्थ के प्रति कामना होती है, वैसी ही आत्मिक सुख के प्रति भी बने तो व्यक्ति निहाल हो जाये। पर ऐसा हो पाना बहुत मुश्किल होता है।

इस संदर्भ में अभयकुमार का प्रसंग भी महत्त्वपूर्ण है, अतः उसे सुन ले। अभयकुमार की बुद्धि संसार में उलझने वाली नहीं थी। एक बार भगवान महावीर से पूछा गया- "भंते ! इस आरे में कौनसे अंतिम सम्राट मोक्ष में जाएंगे ? कौनसे अंतिम राजा मोक्ष में जाने वाले हैं ?" भगवान ने कहा- उदायन सम्राट ही अंतिम सम्राट है जो मोक्ष में जाने वाले हैं।"

सुपात्र दान देने वालों की लम्बी सूची है। भगवान महावीर के युग में भी सुपात्र दान देने वालों की कमी नहीं थी। यही स्थिति अन्य तीर्थंकरों के समय की भी थी। इस संबंध में मुख्य बात यह है कि दिया जाने वाला पदार्थ शुद्ध होना चाहिये। भगवान महावीर को वेदना हो गई और सिंह अणगार आर्त्तध्यान में आ गये। अफवाह फैल गई कि भगवान महावीर की आयु कम रह गई है। सिंह अणगार विचलित हो गये। भगवान महावीर ने अन्य मुनियों से कहा कि उन्हें यहाँ ले आओ। उनके आने पर भगवान ने कहा कि सिंह अणगार ! आर्त्तध्यान करते हुए तुम्हारे भीतर ये अध्यवसाय बना कि मेरे धर्म गुरु, धर्माचार्य की आयु कम रह गई है और तुम्हारा ध्यान विचलित हो गया, किन्तु ऐसी बात नहीं है। मैं तो अभी भूमंडल पर विचरण करूँगा। मुझे जो वेदना हो रही है उसकी औषध है- रेवती गाथापत्नि के यहाँ। उसने दो प्रकार के मुरब्बे बना रखे हैं- एक घोड़ों के लिए और एक मेरे लिए। जो मेरे निमित्त बनाकर रखा है उसे नहीं लाना है। बंधुओं ! उस समय भी ऐसे श्रावक होते थे जो भक्ति में बहते थे। जानकारी थी कि प्रभु को बीमारी है तो बना ली औषध। पर सर्वज्ञ-सर्वदर्शी से क्या छिपा रह गया था ? कहा- जो मेरे निमित्त बनी है नहीं लानी, किन्तु जो घोड़े के लिए बनाई गई है, वह बिजौरापाक ले आना। ऐसा होता है शुद्ध भिक्षा का प्रसंग।

शुद्ध दान देने से कैसे कर्मों का क्षय और कैसे पुण्य का अर्जन होता है, इस पर भी विचार करें। दान देने से पुण्यकर्म का उपार्जन करता है। उससे जो सांसारिक सुख के साधन प्राप्त होते हैं, शुद्ध दान देने से उन संसार के सुखों के प्रति व्यक्ति का आसक्ति भाव नहीं रहता। यह है सुपात्रदान की महिमा। व्यक्ति सोचता है दान देना है, किन्तु दान देने की स्थिति में भिन्नता हो सकती है। एक व्यक्ति अनुकंपा से दान देता है, एक पारिवारिकजन को और एक अन्य उल्लास भाव से साधु को दान देता है। पात्र और भाव की भिन्नता से दान में अंतर आ जाता है। विचार-अध्यवसाय से भी अंतर आ जाता है और देकर पश्चात्ताप करें तो काता-पीता कपास एक हो जाता है। कयवन्ना ने पूर्वजन्म मे जो सुपात्र दान दिया था, उसकी बदौलत जहाँ भी गये सौभाग्य निखरा हुआ

रहा। श्रेष्ठी धनदत्त और वसुमति चाहते थे कि उनके घर में पौत्र की प्राप्ति हो जाये, किन्तु कयवन्ना एकदम अनासक्त योगी के रूप मे चल रहे थे। अन्ततोगत्वा गणिका के यहाँ रखने का प्रसंग बना और कुसुमश्री ने अपने हाव-भाव से उन्हें संसार सुख की ओर प्रेरित करने के प्रयास किये। श्रेष्ठी धनदत्त के यहाँ से धन का प्रवाह मुड़ा और वेश्या के यहाँ भरता चला गया, ताकि कयवन्ना को वहाँ कोई कष्ट न हो। ऊपर से दिख रहा था कि वे गणिका का घर भर रहे थे, पर कयवन्ना की पुण्यवानी ही उन पर रक्षा-छत्र बनकर छायी रहने वाली थी। वहाँ गये तो पुण्यवानी भी वहाँ चली गई। धन्नाजी के साथ भी उनकी पुण्यवानी रही।

धन्ना जहाँ गये, वहाँ पुण्य खिलता रहा। पुण्यवान जहाँ जाये- "पदे-पदे निधानानि" पर हमें ज्ञात नहीं हो पाता है। धन्ना ने किसान के खेत में एक हल चलाया तो गड़ा हुआ चरू मिल गया, जबकि वह किसान वर्षों से हल हाँकता रहा था पर कुछ नहीं मिला था। इसलिए कहा जाता है कि पुण्यवान पुरुषों के पग-पग पर निधान है। एक ठोकर लगी तो भरा खजाना पैरों में बिखर गया। वैसे ही कयवन्ना गणिका के घर आये तो पुण्यप्रभा सारी वहाँ पहुँच गई।

यही नहीं कयवन्ना के निश्छल भाव से गणिका का दिल भी पिघल गया। वह गणिका नहीं रही, अंतर से उनके प्रति समर्पित हो गई।

कथा लम्बी है, परन्तु आप जानते हैं कैसे.... ? पुण्यवानी से सारे प्रसंग जुड़ते चले गये। इसलिए कहते है कयवन्ना का सौभाग्य अखंड रहा, फिर भी पुण्य का भोग करते हुए उनमें कभी आसक्ति का भाव नहीं आया। इसका कारण साफ था- सुपात्र दान। सुपात्र दान से ही ऐसी स्थिति बनती है। सदा अखंड सौभाग्य बना रहता है।

अखंड सौभाग्य कोई भी प्राप्त कर सकता है, पर एक शर्त है- अपनी सपत्ति के प्रति ममत्व आसक्ति का भाव नही रहे। यदि आसक्ति-भाव नही है तो संपत्ति दौडी आती है। जब तक व्यक्ति छाया के पीछे दौड़ते है, तब तक वह आगे भागती रहती है, परन्तु यदि व्यक्ति पलट जाये तो छाया पीछे दौड़ती आती है। वैसे ही यदि व्यक्ति संपत्ति

के लिए दौड़े तो वह दूर-दूर जाती है, परन्तु जब उसे पीठ दे देते हैं और व्रत-नियम के प्रति निष्ठावान बन जाते हैं तो संपत्ति चरणों में लोट-पोट हो जाती है। इसीलिये कहा है-

चरण कमल कमला बसे रे
निर्मल स्थिर पद देख....।

ऐसे चरणों में लक्ष्मी चारों ओर बिखरी रहती है। ऐसी एक नहीं अनेक कथाएँ हैं, परन्तु मात्र सुनते रहें पर हार्द्र को न लें तो कलेवर से कोई लाभ नहीं होने वाला है। इसलिये प्रत्येक कथा के भाव को, मन्तव्य को, उसके चेतन तत्त्व को ग्रहण करना चाहिये। उस चैतन्य तत्त्व को हृदयस्थ कर लिया तो कथा हमारे जीवन का अंग बन जाएगी।

कथाएँ तो आप बहुत सुनते हैं, परन्तु क्या कभी आपने यह भी सोचा है कि हमारा जीवन भी एक कथा का रूप है और ऐसी एक ही कथा है ? पर व्यक्ति अपनी जीवन कथा को पढ़/देख नहीं पाता है। उसे पढ़ने/देखने लग जाये तो फिर दूसरे की कथा पढ़ने की जरूरत नहीं रहे। सभी के जीवन में उतार-चढाव की घटनाएँ आती हैं। किसी के जीवन में कम तो किसी के जीवन में अधिक। सभी जीवन गुजारते हैं, पर गुजारने में उसके गुलाम बनकर न जीयें, क्योंकि गुलाम बनकर जीने वालों की दुर्दशा आप इन्हीं कथाओं में देखते हैं। अतः इन कथाओ के हार्द्र को ग्रहण करें।

आज धनतेरस है। धनतेरस का प्रसंग भी लक्ष्मी से जुड़ता है। बताया जाता है कि एक बार दुर्वासा ऋषि इन्द्र पर कुपित हो गये और लक्ष्मी का नाश कर दिया। जब त्राहिमाम् की स्थिति बन गई, तब उन्होंने बताया कि मैने सारी लक्ष्मी का नाश कर उसे समुद्र मे डाल दिया है। फिर समुद्र मंथन किया गया। जिससे चौदह रत्न निकले। जिनमें से धनतेरस के दिन धनवन्तरी निकले थे। रत्न आज से अर्थात् धनतेरस से निकलने प्रारंभ हुए और अंतिम रत्न लक्ष्मी के रूप में तीन दिन बाद निकला। इसलिए कहते हैं कि आज के दिन लोग समुद्र मंथन से जुड़े थे, परन्तु यह तो कथा है, मात्र कलेवर है। हमे तो हार्द्र को पकड़ना है।

हार्द्र यह है कि यदि व्यक्ति लक्ष्मी को प्राप्त करना चाहता हो तो समुद्र मंथन करे, परन्तु समुद्र मंथन करने वाले कितने मिलेंगे ? समुद्र मंथन का तात्पर्य है- संघर्षमय जीवन। संघर्षमय जीवन जीने के लिए कितने तैयार होंगे ? और समुद्र ऐसे ही नहीं मथा जाता है। मौत से संघर्ष करना होता है। तब कहीं जाकर लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। यह दर्शाता है कि लक्ष्मी को प्राप्त करना कितना कठिन है ? उसके लिए किस प्रकार श्रम करना पड़ता है ? इस प्रकार प्राप्त होने वाली लक्ष्मी की प्रकृति को कभी जाना आपने, उसे भी जानें। लक्ष्मी की प्रकृति के बारे मे कवि रहीम ने कहा है-

कमला थिर न रहीम कहि, यह जानत सब कोय।
पुरुष पुरातन की वधू, क्यों न चंचला होय॥

कमला अर्थात् लक्ष्मी चंचल प्रकृति की होती है, वह एक जगह टिककर नहीं रहती। जो उसे पकड़कर रखने की आदत डालता है, वह गलत करता है। वस्तुतः वह आदान-प्रदान करने के लिए है, विनिमय का साधन है। यह भूलकर व्यक्ति यदि उसे तिजोरी में कैद करने की बात सोचता है तो यह गलत ही नहीं असंभव भी है। जब विनिमय के साधन कैद किये जाते हैं तो सम्पूर्ण जीवनचर्या और व्यवस्था चरमरा जाती है। ऐसा आसक्ति के कारण होता है और आसक्ति से सुख भोग नहीं हो सकता। सुख तो देने से मिलता है। जो देने से मिलता है वही असली सुख है, शेष तो छलावा है- मृगतृष्णा के पीछे दौड़ना है। किन्तु जो सुपात्रदान प्रमुदित भाव से देता है, वह धन्य हो जाता है। इसलिए कहते हैं- दान देने का अवसर आये तो, सोचे मेरी भावना प्ररूपणा है, स्पर्शना होगी उस दिन धन्य होऊँगा। यदि स्पर्शना नहीं है, किन्तु भावना है तो भी क्या लाभ प्राप्त होता है, यह जीर्ण सेठ की कथा से समझिये।

जीर्ण सेठ भावना भाते है। उससे कर्मों की क्रोड़ खपा ली। कथा में यहाँ तक बता दिया है कि जीर्ण की भावना एक मुहूर्त्त और बनी तो केवल शान्त हो जाता। इसीलिए कहा जाता है-

भावे भावना भाइये, भावे दीजे दान।
भावे धर्म आराधिये, भावे केवलज्ञान॥

कितनी सहज व सरल बात है, किन्तु ऐसी सहजता-सरलता जीवन में आए तो काम चले। आगम में कहा है-

धम्मो सुहस्स चिट्ठई।

केवल शुद्ध हो जाएँ, पर पता नहीं ऐसा कब होगा ? आवश्यक है कि साधक बने हैं तो ध्यान रखना अन्तर का घट कलुषित तो नही है। केवल कथा सुनते रह गये अपने घट को निर्मल/शुद्ध नहीं किया तो क्या होगा ? दूसरों को देना सरल है, पर स्वयं की उपदेश स्थिति को ध्यान में लेना कठिन है। मेरा लक्ष्य केवल आपको ही सुनाना नहीं है। हमें अपने अध्यवसाय को निर्मल करना है। हमारी साधना की मूल भित्ति वही है। वह अवस्था यदि प्राप्त हो जाये तो आरिसा भवन में या हाथी पर बैठे-बैठे ही मुक्ति हो जायेगी। हाथी पर बैठे हैं हाथी को क्लेश हो रहा है, फिर हाथी पर बैठे रहने से मुक्ति ? लोगों को विचित्र लगता है, पर दुनिया में क्या नहीं है विचित्र ? सुना जा रहा है कि शाकाहारी पदार्थों में भी अभक्ष्य मिलाया जा रहा है। यह विचित्रता नहीं तो और क्या है ? लोग आकर कहते हैं- अमुक में भेल-संभेल है। अखबार में आता है कि अमुक में अमुक चीजें मिलायी जाती हैं। जब आचार्यदेव गुजरात मे थे तब वहाँ जानकारी मिली कि मोल की बेसन की चीजें काम मे नहीं लेना, क्योंकि उसमें मछली का आटा मिलता है। कौन खोज करे ? बहुत पहले गुजरात सरकार ने डेयरी फार्म को अनुज्ञा कर दी थी कि गाय-भैंस के दूध से जो घी बनता है उसमें 15 प्रतिशत चर्बी मिलायी जा सकती है। ऐसी स्थिति यदि बनती है तो आने वाले समय में जीवन कितना दूभर हो जायेगा, यह विचार का विषय है। इसलिए सावधानी से चलने की आवश्यकता है। प्रत्येक पदार्थ के विषय में हम कितने सजग है, हमे यह भी ध्यान रखना है। ऐसी मिलावट की अशुद्ध चीजे हों, न हों, पर खोज की तैयारी किसकी है, यह भी देखना है। क्या साधु जायेंगे ? साधु आपके घर में खोज करते हैं, किन्तु आपके चौके में क्या आ रहा है उसकी पक्की खोज भी होनी चाहिये, जो आप ही कर सकते है। निरामिप भोजी के चौके मे गड़बड़ी की चीजे न पहुँचे। यह देखना स्वयं का दायित्व है, इसके लिये जहाँ उत्पादन होता है उन

स्थानों पर पक्की खोज की जाये। केवल पूछने से पक्की खोज नही होगी।

कहते हैं पान पराग में छिपकली का पाउडर मिलाते हैं, पता नहीं क्या सच है ? फिर भी जैन कुल में जन्म लेने वाले यदि ऐसी संदिग्ध वस्तु को मुँह में डालकर गौरव का अनुभव करते हैं और समझते हैं कि हम बड़े खानदान के है तो यह लज्जा की बात है। आने वाले समय में स्थिति कितनी बिगड़ सकती है, इसे पहले से ही ध्यान में ले लीजिये। यदि चौके-चूल्हे पर भी आक्रमण हो तो धर्म कहाँ सुरक्षित रहेगा ? हम विश्वास करते हैं, क्योंकि भगवान ने कहा है कि मेरा शासन 21,000 वर्ष तक रहेगा। इसीलिए संस्कृति भी शुद्ध रहेगी, इसमें संशय नहीं है। पर संस्कृति में अनुचित एवं अनुपयुक्त बदलाव तो नहीं आ रहा है, यह ध्यान रखना भी हमारा काम है। एक समय क्षत्रिय कौम के श्रावक थे। कालान्तर में वैश्य आये, क्षत्रिय हटे। अब कौन आने वाला है, धर्म कौनसी करवट लेने वाला है। इसके प्रति सचेत रहें।

भाई रामलालजी बावरी के मुँह से सुना है कि उनके आस-पास के भाई व उनकी जाति के लोग पूर्व में खोटा खाना खाते थे, पर वे चाहते हैं कि इस काले तिलक को दूर करें और उनकी जाति का उत्थान हो। विडम्बना देखिये कि वे तो चाहते हैं कि उनका उत्थान हो, पर ओसवाल-पोरवाल इस दिशा में कितने सजग हैं कि चिन्ता करें कि उनका परिवार यदि सुखी है, वे सुखी है तो ये भी देखें कि उनका भाई, उनका पड़ौसी किधर जा रहा है, उनके भाई भूखे तो नहीं सोते, उनकी आँखों में आंसू तो नहीं आते, वे गलत काम में तो नहीं लग रहे हैं ? वे भले कान के कच्चे हों पर साधुओं के कान खुले होते हैं। ऐसी बातें भी सुनने में आती हैं कि उच्च कुल की कन्याएँ और पुत्रवधुएँ कॉल गर्ल्स के रूप में प्रस्तुत होती है तो चिन्तनीय स्थिति उत्पन्न हो जाती है। एक बार एक सेठ के सामने उनकी पुत्रवधू ही पहुँच गई थी। ऐसी स्थितियाँ आये तो क्या समझा जाये ?

यह जौहरियों की नगरी है, यहाँ धन में झूलने वालों की कमी नहीं है। किन्तु धन का सदुपयोग हो रहा है या नही यह सोचने की बात

है। गरीब के आँसू पोंछने की तैयारी तो हो या नहीं, परन्तु दीपावली पर पटाखे छोड़ने मे कितने रुपये लगा देते हैं। इसका हिसाब भी रखते हो या नहीं ? एक तरफ तो जल-संकट की स्थिति है, पर बंगलों की धुलाई में कितना ही पानी व्यर्थ बहाया जा रहा है। हम यह न सोचें कि हम जिन्दा रहें भले दुनिया का कुछ भी हो। ध्यान रखिये दुनिया बदल गई तो बंगले सुरक्षित नही रहेंगे। आपको ध्यान होगा जब बारह वर्ष का दुष्काल पड़ा था, तब साधुओं को भिक्षा दूभर हो गई थी। घर कौड़ियों में बिक गये थे, सोने की अशर्फियो के बदले अनाज के दाने मिलने मुश्किल हो गये थे। यदि पानी का ऐसा दुरुपयोग किया जाता रहा और खेतों को पानी नहीं मिला तो अनाज भी पैदा नहीं होगा। तब क्या हवेली के पत्थरों से पेट भर जायेगा ? तब क्या जिन्दगी बची रह जायेगी ? संपत्ति जीवनदान नहीं देगी, इसलिये समय रहते चेतिये।

एक तरफ कहते हैं भारत कर्ज में डुबा जा रहा है और दुसरी तरफ पटाखों पर इतना पैसा बरबाद कर रहे हैं। एक तरफ विकास कार्यों के लिए कर्ज ले रहे हैं, दूसरी तरफ जो हमारे पास है उसे गुलछर्रों में उड़ा रहे हैं। राजा जीवन जी रहे हैं। कभी चार्वाक ने कहा था-

यावज्जीवेत् सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पीवेत।

जब तक जीना है, घी पीकर जीओ और घी उपलब्ध नहीं हो तो कर्ज लेकर पीओ। कर्ज लेकर डेकोरेशन करो। एक तरफ सरकार कह रही है कि कर्मचारियों के भुगतान के लिए पैसे नहीं है और दीपावली पर डेकोरेशन पर अंधाधुंध पैसा खर्च किया जा रहा है। हम लोक रूढ़ियों पर चलते हैं। यदि यही स्थिति रही तो कहाँ पहुँचेंगे, इस पर भी बारीकी से विचार करें। जब तक वक्त दस्तक न दे तब तक अपने आपको देखने का प्रयत्न करे। यदि हम अपने पास-पड़ौस को देखेंगे तो हमारी आँखों से निश्चित रूप से करुणा स्रोत बहे बिना रहेगा नही। अपने भाईयों की दशा देखकर घाटकोपर मुम्बई संघ ने जो सोचा उसे कहना अप्रासंगिक नही होगा।

घाटकोपर चातुर्मास मे बज्जू भाई ने बताया था कि स्वधर्मी भाईयों के प्रति संघ अपने दायित्व का निर्वाह करता है। कुछ स्वधर्मी

भाई जिनकी हमें जानकारी प्राप्त है, उन्हे राशन से कम मूल्य पर सघ की तरफ से वस्तुएँ दिलाने की व्यवस्था करते है। अन्य वस्तुओ की भी संघ की सहायता से दिलाने की व्यवस्था है। दीपावली पर्व प्रसंग पर संघ मिठाई तैयार करवाता है और जो मिठाई बाजार में 90 रुपये किलो मिलती है, वह संघ सदस्यों को 60 रुपये किलो में उपलब्ध कराता है। प्रसंग आया तो पूछ लिया, इससे संघ को क्या फायदा होता है ? तो बताने लगे कि हम 90 की 60 में बेचते हैं तो भी 125 किलो मिठाई मुनाफे में बचती है। हमारे पास 100 सहधर्मी भाईयों के कार्ड हैं। एक-एक किलो उन्हे पहुँचाते हैं। जब हमारे बच्चे मिठाई को उत्सुक हैं तो उन्हें भी लाभ मिलना चाहिये। संघ के कर्मचारी जो काम करने वाले हैं वे संघ के सदस्य हैं ही। शास्य में इन्हें कौटुम्बिक पुरुष कहा गया है तो उन्हें भी एक-एक किलो मिठाई देते हैं। स्वधर्मी के प्रति रुझान संकेत करता है कि स्वधर्मी के प्रति वात्सल्य भाव कैसा होना चाहिये। अब यदि पटाखे कम हो गये हैं तो समझिये जो पैसा पटाखों में लगता था, वह स्वधर्मी के लिए लगेगा और धुऑ बन रहा था, वह अब करुणा का जल बनकर प्रवाहित होगा। जैसे खेत की सिंचाई करते हैं वैसे ही यदि स्वधर्मी की हृदयभूमि का सिंचन करेंगे तो स्नेह और सौहार्द्र पनपेगा। खुशहाली की भरपूर फसल होगी, साथ ही दीपावली का भी खूब आनंद आयेगा।

सुपात्रदान की कुछ चर्चा आपके समक्ष कर गया। उसके भी तीन भेद माने गये हैं- सम्यग्दृष्टि, श्रावक एवं साधु। अपने-अपने स्थान पर तीनों की सेवाभक्ति कर्मनिर्जरा का कारक बनती है। आत्मा को पवित्र बनाती है। हम अपने जीवन को सुपात्रदान से कैसे जोड़े इस पर चिन्तन करेंगे तो संभव है मार्ग भी मिलेगा व मंजिल भी।

24.10.2000

❖ ❖ ❖

3. स्वप्न और सत्य

प्रत्येक प्राणी सुख चाहता है। छोटे से छोटे प्राणी को भी दुःख इष्ट नहीं है। नारकी के नैरिये जो निरन्तर दुःख में पड़े रहते हैं, वे भी दुःख से बचने के उपाय करते हैं, वे भी दुःख से बचना चाहते हैं। चींटी, मक्खी-मच्छर जैसे लघुतम प्राणी भी बचने का उपाय करते हैं। चित्त की अवस्था से एकेन्द्रिय प्राणी भी दुःख से कतराते हैं, घबराते हैं। आने वाले संकट की आशंका से उनमें भी दुःख की संवेदना में परिस्पन्दन होने लगता है। यह प्रयोग भी करके देखा जा चुका है। इसलिए यह स्पष्ट होता है कि जीव, जिनमे जीवन है, चेतना है, वे सभी सुख के अभिलाषी हैं, दुःख कोई नही चाहता।

सव्वे जीवा वि उच्छंति जीविउं न मरिज्जिउं

प्रत्येक प्राणी में जीने की अभिलाषा होती है और इस जीने के साथ सुख-शांति की कामना भी जुड़ी होती है। कोई नहीं चाहता कि उसका जीवन दुःख में बसर हो। दुःख में जीवन बसर भी हो रहा हो, पर कामना दुःख की कभी नहीं होती।

दुःख तव और बढ़ जाता है जब चारों ओर उल्लास-आनंद का वातावरण हो, जैसा आजकल है। कल धनतेरस थी, आज रूपचौदस है और कल दीपावली का पर्व होगा। इन दिनों में व्यक्ति की भावना अलग-अलग रूपों में प्रकट होती है। धार्मिक व्यक्ति धर्म में पुरुषार्थ करते है तो कई दीप जलाने में, कई पटाखे छोड़ने में और कई मिठाई खाने में सुख की अनुभूति करते है। ऐसे में अलग-अलग व्यक्तियों की की भावनाएँ जाहिर होती है। कई अच्छी पोशाक पहनने में और कई घर की सफाई करने मे समय व्यतीत करते हैं। इससे ध्वनित होता है कि व्यक्ति गंदगी चाहता नहीं है, उसे दूर करना चाहता है। इसीलिये इन दिनो को निमित्त बनाकर घर की साफ-सफाई करने की प्रवृत्ति करता

है। किन्तु ज्ञानीजन भिन्न संदर्भ मे बात कहते हैं। वे कहते है कि घर की जिस गंदगी को दूर कर रहा है, वह शाश्वत घर नही है। जो तुम्हारा शाश्वत घर है उसका लक्ष्य बनाओ, किन्तु उस घर को भुलाकर अशाश्वत घर की सफाई करने में लोगो की कितनी तत्परता होती है।

इस रूपचौदस के प्रसंग से कई घटनाएँ जुड़ी हुई हैं या आज के प्रसंग से उस घटनाओं का कथन किया जाता है। आज के दिन को नरक चतुर्दशी भी कहते हैं। इस प्रकार इस दिन का नरकासुर से संबंध जुड़ जाता है। प्राग्ज्योतिषपुर का राजा नरकासुर था, जिसने रूपवती कन्याओं को कैद कर रखा था। जनता पीड़ित थी, पर कुछ कर नहीं सकती थी। वह सत्यभामा के पास पहुँची और अपनी पीड़ा उनके सम्मुख प्रस्तुत की। सत्यभामा ने कृष्ण को आह्वान किया। कृष्ण ने आज के दिन नरकासुर का वध किया और 16000 रूपसी कन्याओं को बंधन-मुक्त किया। इस प्रकार आज के दिन नरकासुर का वध होने से इस दिन को नरक चतुर्दशी और रूपसी कन्याओं के बंधनमुक्त होने से इसे रूप चौदस भी कहते है।

एक अन्य प्रसंग सनत्कुमार का भी इससे जुड़ा हुआ है। सनत्कुमार के रूप की चर्चा चारों ओर फैली हुई थी। पर क्या देवताओं का रूप कम होता है ? फिर भी इन्द्र का कहना था कि इस समय किसी का रूप ही देखना है तो सनत्कुमार को देखो। एक देव ने विश्वास नहीं किया। कथा में बताया गया है कि वह ब्राह्मण का रूप बनाकर और माथे पर एक टोकरा जूतियों का लेकर गया। यह बताने के लिये कि उनके दर्शन के प्रयास में इतनी जूतियाँ घिस गई है। द्वारपाल ने कहा- "अभी वे मज्जन गृह मे हैं। जब वे राज दरबार में उपस्थित हो जाएँ तब देखना।" ब्राह्मण रूपधारी देव ने कहा- "मेरे तो प्राण निकल रहे हैं। इतनी जूतियाँ घिस गई है, दर्शन की आस मे। मै तो दर्शन के बाद ही जल ग्रहण करूँगा।

ऐसी प्रतिज्ञा करने वाले भी कई हो जाते हैं। बीकानेर के एक स्वर्णकार भक्त प्रति वर्ष आचार्यदेव के दर्शन करने आते थे। गाड़ी में बैठते तब से चौविहार के प्रत्याख्यान ले लेते। जब तक दर्शन न कर लूं

चाहे एक दिन निकले, दो दिन निकले या तीन दिन निकले पानी भी नहीं पियूँगा। वे आते तो कई दलाली करने लगते कि दर्शन कराये अन्यथा ये पानी नहीं पीयेंगे। यदि गुरुदेव काम में होते तो वे कहते- "काम में है तो दखल नही देना। थोड़ी देर इंतजार कर लूँगा।" इसे कहेंगे भक्ति का आदर्श। नहीं तो व्यक्ति दो मिनट भी धैर्य रख नही पाता। अस्तु, उस ब्राह्मण रूपी देव ने कहा- "मैने पानी भी नहीं पीया है, प्यास से छटपटा रहा हूँ। कहीं प्राण न निकल जायें और तुम्हें ब्रह्म हत्या न लग जाये, अतः अवसर प्राप्त होने पर तत्काल दर्शन करना चाहता हूँ।" दर्शन प्राप्त होने पर उसने कहा- "वस्तुतः जैसी चर्चा सुनी उससे भी बढ़कर आपका रूप हैं, ऐसा रूप देखकर मैं कृतकृत्य हो गया।"

सनत्कुमार ने कहा- "विप्रवर ! अभी क्या देखा है, थोड़ी देर बाद आना जब मैं सारे अलंकारों से विभूषित हो जाऊँ, तब दर्शन करना।"

बाद मे विप्र आया और शृगारित रूप देखकर बोला- "अब वो चीज नही रही।" सनत्कुमार ने पूछा- "इतने समय मे क्या हो गया ?" उसने उत्तर दिया- "इतना समय कोई कम नहीं है। इतने समय में तो कई आत्माएँ मोक्ष गमन कर जायें। आपने भी अनुभव किया होगा कि एक व्यक्ति अन्य किसी से मिलकर आ रहा हो और घर पर पहुँचा कि फोन मिला- "दाह-संस्कार की तैयारी हो रही है।" मृत्यु को कितना समय लगता है ? एक क्षण में मृत्यु आ सकती है, तो क्या बीमारी नहीं आ सकती ? फिर भी व्यक्ति सोचता है कि यह एकाएक कैसे हो गया ? इसी एकाएक का ज्ञान हो जाये तो फिर संसार मे कौन रुकना चाहेगा ?

मैं सनत्कुमार की पूरी कथा कहने के भाव से नहीं किन्तु उनके रूप के सत्य का दर्शन कराने के उद्देश्य से कथा कह रहा हूँ। उनके थूक में किटाणु किलकिला रहे थे। शरीर में सौलह महारोग पैदा हो गए। सोलह महारोग को जानकर वे रोये नही, अपितु प्रतिवोधित हो गये। सोचने लगे- जिस शरीर को नहलाने धुलाने में लगा था उसकी एक क्षण

में रौनक गायब ! और दूसरे क्षण में ये हालत ! वे जागृत हो गये और स्वयं की पहचानकर दीक्षित हो गये।

हमें कथा के इसी हार्द्र को समझना है। हमें एक बात यहाँ लक्ष्य में लेनी है कि सनत्कुमार ने जो यह कहा कि "अभी क्या थोड़ी देर बाद देखना" वहाँ थोड़ा-सा भांगा मान का या मोह का रहा होगा। हम इस मूल सत्य को पकड़े कि वह थोड़ा सा अहं या मान का भांगा भी जीवन को विकृत करने वाला होता है। चाहे सनत्कुमार को किसी भी कारण बीमारी लगी हो, किन्तु आध्यात्मिक जीवन में मान का हल्का-सा भाव उसका थोड़ा-सा भी दूषण घातक होता है और वह पतन का कारण बनता है।

रूप चतुदर्शी के प्रसंग में दर्शाण भद्र का प्रकरण भी विचार करने योग्य है। दर्शाण भद्र दर्शन करने जा रहा है। विचार करता है ऐसे दर्शन करूँ, जिसे आज तक कोई भी राजा नहीं कर सका हो। वैसी ही उसने अद्भूत तैयारी ! शकेन्द्र भी आ रहा था, उसने देखा ये क्या ? दर्शन के पीछे भी अहं की छाया कि मैं इस प्रकार की तैयारी करूँ जैसी आज तक अन्य किसी सम्राट ने नहीं की हो ! मैं भी दिखाऊँ ? यह कैसी दशा है ? इन्द्र ने विकुर्वणा की। एक-एक हाथी के दाँत में बावड़ियों-बगीचों की सारी रौनक लगा दी। दर्शाणभद्र ने ये सारी रचना देखी तो अपनी रचना उसके सामने उसे फीकी लगने लगी। वही बात हुई। दर्शाणभद्र के अहं पर चोट लगी। उसने सोचा- ऐसी बराबरी मेरे वश की बात नहीं है, पर मैं ये कैसे सहन करूँ ? भगवान की देशना सुनी और वहीं दीक्षित हो गये। तब शकेन्द्र ने परास्त होकर कहा- "राजऋषि अब बराबरी की क्षमता मेरे में नही है।" कहने का आशय यह बताना है कि एक झटके में व्यक्ति कैसे जागृत हो जाता है। भले ही वह धन-संपत्ति के अंबार में झूल रहा हो, पर क्षयोपशम जगा कि एक झटके में जागृत हो जाता है। सनत्कुमार चक्रवर्ती हों या दशार्णभद्र, एक झटके मे जागृत हो गये।

ऐसा ही प्रसंग भगवान महावीर के साथ जुड़ा हुआ है। प्रसंग है भगवान महावीर के अंतिम चातुर्मास का। हस्तिपाल राजा जिनका ग्रंथों में

दूसरा नाम पुण्यपाल भी दिया गया है, की हस्तशाला में भगवान चातुर्मास कर रहे हैं। हस्तिपाल सम्राट को कई स्वप्न आये। वैसे उन्हें हर समय स्वप्न आते नहीं थे। यद्यपि स्वप्न कई कारणों से आते हैं। कई व्यक्ति ऐसे भी होते है कि जाग न जायें तब तक स्वप्न देखते रहते हैं। तीर्थंकर की माता को 14 स्वप्न आते हैं। आज के व्यक्ति तो सोते-जागते न जाने कितने स्वप्न देखते हैं, पर हस्तिपाल के स्वप्न ऐसे नहीं थे।

स्वप्न आने के कई कारण होते हैं, किसी शारीरिक बाधा अथवा वात-पित्त कफ की अधिकता भी स्वप्न लाने में सहायक होती है। अतृप्त इच्छाएँ, कुण्ठाएँ और कामनाएँ भी स्वप्न में सहयोगी बन जाती है। किन्तु ऐसे स्वप्न भी होते है जो भविष्य की घटनाओं की ओर संकेत करते हैं और जिनके आधार पर भविष्य का कथन किया जाता है। ऐसे ही स्वप्न हस्तिपाल राजा ने पिछली रात्रि में देखे थे। स्वप्न देखकर वे जाग गये। वे स्वयं ज्ञानी थे, इसलिये चिन्तन-मनन में उतरे, फिर भी स्वप्नों के सही अर्थ जानने में सफल नहीं हुए। तब उन्होंने सोचा कि सर्वज्ञ-सर्वदर्शी भगवान महावीर तो यहाँ विराजमान हैं ही, क्यों न उनके मुखारविन्द से ही इनका अर्थ प्राप्त कर लूँ ? वे भगवान के चरणों में पहुँचे। वंदन-नमस्कार किया और अपने स्वप्नों का फल, जानने के लिये अत्यन्त विनम्र भाव से निवेदन किया-

"भगवन् ! मैने आठ स्वप्न देखे हैं। देखने के बाद मन में उल्लास उत्पन्न नहीं हुआ, आनंद की अनुभूति भी नहीं हुई, बल्कि भय का संचार हो गया है। हृदय में सिहरन-सी होने लगी है।" तत्पश्चात् उन्होने स्वप्नों का विवरण दिया।

राजा हस्तिपाल ने कहा- "प्रथम स्वप्न में मैंने देखा कि हाथी कीचड़ मे फंस गया है, निकलने का प्रयत्न कर रहा है, किन्तु निकल नहीं पा रहा है। द्वितीय स्वप्न मे एक हष्ट-पुष्ट परन्तु चंचल प्रवृत्ति का बन्दर देखा, जो उछल-कूद करता हुआ सारे बगीचे को तहस-नहस कर रहा था। तृतीय स्वप्न मे एक कल्पतरू देखा, जिसे चारो ओर से जहरीले जंतुओं ने घेर रखा था। चौथे स्वप्न मे मैंने एक कौवा देखा, जो अच्छे खाने से मुँह मोडकर विष्ठा की ओर दृष्टि लगाये हुए काँव-कॉव कर

कोलाहल फैला रहा था। पाँचवे स्वप्न में मैंने वनराज को देखा। तेजस्वी-बलशाली वनराज की गर्दन पर घने बाल लहरा रहे थे, पर उसके बावजूद भी वे परेशान नजर आ रहे थे। वे बाल शरीर को नोच रहे थे, काट रहे थे और उसमें डंक मार रहे थे, जिससे उन्हें तीव्र वेदना हो रही थी और इस कारण वे परेशान नजर आ रहे थे। छठा स्वप्न अत्यन्त विस्मयकारी था। कमल जल या कीचड़ में पैदा होता है, किन्तु मैने अकरड़ी पर खिलता कमल देखा। सातवें स्वप्न में मैंने देखा कि किसान हल जोत रहे है और ऊसर भूमि मे बीज बो रहे हैं। बीज अच्छे हैं, पर भूमि बंजर हैं। आठवें स्वप्न में मैंने एक अत्यन्त मनोहर कलश कोने में उपेक्षित पड़ा देखा। उसके चारों ओर रज गिरी हुई थी, पर किसी का ध्यान उसकी ओर नहीं जा रहा था।

उसे देखा मेरे हृदय में भय की सिहरन पैदा हो गई और जाग गया। यद्यपि मैंने अशुभ स्वप्न देखकर सोने का प्रयत्न किया, पर मुझे नींद नहीं आई। रह-रहकर वे स्वप्न स्मृति में उभरते रहे। जैसा कि श्रावक के लिए बताया गया है कि रात्रि के पिछले प्रहर में धर्म जागरणा करे सो मैं अनुप्रेक्षा भी करता रहा, पर मेरा मन नहीं लगा। भगवन् ! भीषण ऊहापोह की स्थिति में सारा समय निकल गया। मैंने पर्याप्त चिन्तन किया, पर कुछ अर्थ प्राप्त नही कर पाया और परम असंतुष्ट बना। आपसे अर्थ जानने की इच्छा से आपके सम्मुख उपस्थित हुआ हूँ।

भगवान ने उत्तर देते हुए कहा- राजन् ! पहले स्वप्न में तुमने हाथी को देखा है। इसमें आने वाले विकट समय की एक झलक तुमने पायी है। इसका भाव है कि पाँचवे आरे में क्षणिक ऋद्धि को पाकर श्रावक मूढ़ हो जाएंगे और धर्म से विमुख हो जाएंगे। अभी चौथे आरे मे अंतर यह है कि धन प्राप्त होने के बावजूद श्रावक उसे चित्त पर आरूढ़ नहीं कर रहे हैं। नाक के श्लेष्मा की तरह एक झटके में उसका त्याग कर देते हैं, किन्तु पाँचवें आरे में थोड़ी-सी सम्पत्ति पाकर भी आसमान में उछलेंगे। अह मे मूढ़मति बन धर्म की निन्दा करेंगे। कहेगे- "क्या रखा है धर्म में ? देख लिया धर्म को।" बंधुओं, धर्म में लोग क्या देखते है, क्या पढ़ते है, इस पर विचार किया क्या कभी ? वस्तुतः धर्म

है क्या ? हम उपचार धर्म में जी रहे हैं या हमारे जीवन में धर्म का अवतरण हुआ है ? सामायिक-पौषध करना, ये धर्म है ? आप सोचेंगे कि महाराज सामायिक पौषध पर क्यों प्रहार कर रहे हैं। मैं प्रहार नहीं कर रहा हूँ। मैं केवल सचेत कर रहा हूँ कि यदि इसे ही धर्म मान लिया तो हम उपचार में रह जाएंगे। भगवान ने स्पष्ट रूप से बताया है- गृहस्थ लिंग सिद्ध एवं अन्य लिंग सिद्ध की बात कही है और उत्तराध्ययन में बताया है कि लिंग केवल लोक प्रतीति के लिए होता है। लोग जान सकें कि ये साधु है और ये श्रावक है। पर न तो लिंग मुक्ति दिलाने वाला है, न ही पोशाक मुक्ति दिला सकती है। हाँ, कभी-कभी ये लिंग मुक्ति में साधक बन जाते हैं। इसलिए ये उपचार के धर्म हैं। जैसे प्रसन्नचन्द्र राजर्षि का जब माथे पर हाथ गया उस समय मुंडन किया हुआ था। ऐसे समय में जो द्रव्य की सारी अवस्था होती है वह कभी-कभी सहयोगी हो सकती है। जैसा कथा में बताया है कि आर्द्रकुमार ने मुँहपत्ति, रजोहरण को देखा। काफी ऊहापोह की स्थिति रही, जिससे वैराग्य आ गया।

कई भाई कहते हैं कि अमुक आलम्बन को लो तो भावना निर्मल हो सकती है। पर इतने मात्र से कोई निमित्त वंदनीय-पूजनीय नहीं हो जाता। यदि निमित्त मात्र को वंदनीय-पूजनीय मान लें तो यह पोशाक भी पूजनीय बन जाएगी। करकण्डू को सांड को देखकर वैराग्य आ गया तो फिर क्या उसकी पूजा करनी थी ? कैसे-कैसे विचार लोग कर लेते हैं ? भाव निर्मल होने चाहिये। भाव निर्मल हो गये तो फिर आलम्बन की चिंता करने की कोई जरूरत ही नहीं। पर भाव निर्मल होने मात्र से वह अवस्था पूजनीय नहीं हो जाती। यदि हो सकती होती तो बहिनों की चूड़ियाँ पूजनीय हो जातीं, क्योंकि नमिराजऋषि के वैराग्य का निमित्त भी चूड़ियों की खनखनाहट थी। मानते हो क्या ? यहाँ बैठने वाले कितनों ने चूड़ियो की खनखनाहट नहीं सुनी है ? पर नमि कितने बने ? गलियों मे सांड किसने नही देखे ? पर क्या उन्हे देखकर वैराग्य भाव बनते हैं ?

हम बहुत कुछ देखते है ? पर देखना मात्र हमें प्रेरित नहीं

करता। भरत की अंगूठी गिरी मेरे ख्याल से आज भी कईयो की गिरती होगी, पर भरत जैसे विचार कितनो के बने ? हाथी के हौदे पर सवारी आप भी करते होगे, पर मरूदेवी जैसे विचार कितनों मे आये ? आप भी बड़े-बड़े सघ निकालकर दर्शन करने जाते है, पर दर्शाणभद्र राजा कौन बना ? मै प्रेरणा की बात कह रहा हूँ। आपके सामने भी ऐसे प्रसग आते है। विचार कीजिये कि क्या प्रेरणा मिलती है ? एक सेठ शान-शौकत से चार गाड़ियॉ लेकर जाता है तो आप सोचते हैं मैं भी टैक्सी तो ले ही जाऊॅ। पर यदि एक साधु बन गया तो वह अकेला बना है, क्या आप सोचते है कि मै भी बन जाऊॅ ? यदि भावना आ भी जाती है तो उसकी परिणति नहीं कर पाते हैं। शालिभद्रमुनि कर पाये थे। लगा दिया झटका। लोगो को आश्चर्य हुआ, कहने लगे- इतने धनवान ! ये ले तो लेंगे, पर क्या पाल पायेगे ? चढ़ गया होगा दिमाग में फितूर। पर यह क्या फितूर होता है ? चढ़ता है क्या कभी आप पर ? कभी चढ जाये तो आप भी दिखा देना। भगवान ने तो पहले ही कह दिया है। आप कहेंगे, हम तो भगवान की वाणी पालते है। भगवान ने बता दिया है-

पाकर क्षणिक ऋद्धि का योग....।

घर मे रहकर कितना दुःख देखते हैं ? बेटे-पोतों के दिये सारे दुःख सहन करेगे, पर भीतर दीक्षा के भाव नहीं जगते हैं। एक वृद्ध को पोता बार-बार झटके देता है और वृद्ध सहता है। उधर से नारद निकले और कहा- "ओ बूढे आ मेरे साथ। तुझे स्वर्ग में ले चलता हूँ, यहॉ क्यों झटके खा रहा है ?" तो कहेंगे- "अरे नारद के बच्चे कौन है तू ? क्यों चलूं तेरे साथ ?" नारद कहे- "देख पोता तेरा कितना तिरस्कार कर रहा है", तो कहेगे- "ये मेरा पोता है, मै इसका दादा हूँ। ये मेरे घर की बात है। तुम अपना रास्ता देखो।" कहेगे- "पोता मेरा है, पर चेतने की तैयारी नहीं। विरले ही होंगे जिन्हे ठोकर लगती ओर चेत गए। एक धन्नाजी थे, उन्हे कितनी देर लगी ?" कोई तो धन्ना बनो, जिन्होंने शब्दों को पकडकर संयम जीवन स्वीकार कर लिया था।

आज तो युग बिगड़ ही चुका है। दीक्षा ले लेने के बाद भी बहकावे मे आ जाते है। यह प्रचार-प्रसार का युग है। कहते है- "यु

के साथ चलो, प्रसिद्धि मिलेगी, भीड़ बढ़ जाएगी। मीडिया का सहयोग लो।'' आ जाईये एक बार टी.वी पर हजारो-लाखो सुनेंगे। लाल भवन मे तो इने-गिने ही पहुँचेंगे। हजारो-लाखो सुनेगे तो कितनों का कल्याण होगा ? कितनो का कल्याण होगा यह कहना कठिन है, कभी कल्याण हो भी तो साधु को अपनी झोपडी जलाकर दूसरो के शीत निवारण का कार्य नहीं करना चाहिये। झोपड़ी जलने पर एक बार भभका हो जाएगा। फिर, फिर क्या बचेगा ? अतः साधु को सोचना चाहिये-

तिरिया तेल, हम्मीर हठ, चढ़े ना दूजी बार।

अर्थात् एक बार जो व्रत स्वीकार कर लिये वह उन्हें आजन्म निभायेगा। अन्यथा एक बार तो उसका भभका होगा, पर जब व्यक्ति स्वाध्याय करेगा तो जानेगा कि स्वयं महाव्रतों को खण्डित करने वाले भी दूसरों को कैसी शिक्षा देते हैं। तो ऐसी बातें करने वालो की आगे क्या शान रहेगी ? लोग कहेगे- देख लिया हमने महाराज को।

भगवान ने प्रथम स्वप्न का अर्थ बताते हुए कहा- राजन् ! हाथी उन्मत्ता का प्रतीक है और कीचड़ परिग्रह का। जैसे हाथी कीचड़ में धंस गया, फंस गया वैसे ही क्षणिक ऋद्धि-धन को पाकर श्रावक वर्ग उसी मे फंस जायेगा। आरम्भ परिग्रह का त्याग करना उनके लिए कठिन हो जायेगा। आरम्भ परिग्रह का त्याग तो उनके लिए दुभर होगा, बल्कि वे उसमें ओर अधिक धंसने का ही प्रयत्न करेगे। अपने धन-बल से वे नाम कमाने की चाह से इतिहास बनाने लग जाएगे कि आने वाले समय मे लोगो को प्रमोद होगा। पर हम भूल जाते है कि क्या तीर्थंकर के इतिहास को पूरा याद रखे है ? भगवान महावीर का इतिहास क्या है और अपना क्या इतिहास बनाने जा रहे है ? क्या तीर्थंकरो के इतिहास पूरे मौजूद हैं ? यदि नही तो हमारा इतिहास मिलेगा ? आज बना लेगे पर आने वाले समय मे नही मिलेगा। जीवन तो आज चौपट हो जाएगा और इतिहास भी कुछ वर्षों बाद चौपट हो जाएगा। न इधर के रहेगे, न उधर के। न जीवन को सुरक्षित रख पायेंगे, ना ही इतिहास को। भगवान कहते है- ऐसी नामवरी या लोकेषणा यदि श्रावक किंवा संतो मे घर कर गई तो उनकी वैसी भावना कीचड का रूप होगी। उसमे यदि गिरकर रह गये तो फिर निकल नही पाएंगे।

क्या बताऊँ अभी तो एक स्वप्न का भाव ही स्पष्ट कर पाया हूँ। वे स्वप्न मार्मिक हैं, एक-एक गुत्थी सफलझाने वाले और ज्ञानचक्षु खोलने वाले हैं, इसलिये उनकी विवेचना आपके सामने अपेक्षित है। आप भी कान खोलकर ही नहीं, दिल खोलकर सुनिये तभी पता पड़ेगा कि हम कितना धर्म कर रहे हैं और कितनी धर्म की आड़ में पोल चला रहे हैं। इक्कीसवीं सदी में क्या ऐसी ही तैयारी से पहुँचना है ? भगवान ने आगे कहा- राजन् ! आपने दूसरे स्वप्न में देखा था बंदर, जो बगीचे को तहस-नहस कर रहा था। बंदरियों के पूरे टोले में बंदर कितने होते हैं ? आप जानते हैं क्या ? एक ही होता है। एक नायक का प्रतीक है। बंदर की तरह नायक चंचल प्रकृति के होंगे तो सघ रूपी बगीचे को तहस-नहस कर देंगे। अपने स्वार्थ की पूर्ति मे समय नियोजित करेंगे। वे यदि व्रत लेंगे तो उसका बराबर पालन नहीं करेंगे। यदि किसी निश्छल धर्मधारी को देखेंगे तो कहेंगे- "अरे भाई पाँचवा आरा है, अभी तो धर्म ऐसे ही पाला जायेगा। ऐसा कहकर उसे शिथिल करने का प्रयत्न करेंगे।

जिस समय श्रमण संघ बनने की तैयारी थी। अनेक गच्छों के साधु इकट्ठे हुए थे। तब आचार्यदेव नानालालजी म.सा. मुनि अवस्था में थे। तब कुछ शब्द कमरे में प्रवेश करते समय उनके कानो में पडे, उन्हें सुन उनके कान खडे हो गये। शब्द थे- "ये जैनधर्म गाजर की पूंगी है, जब तक बजेगी, बजाएंगे नहीं तो तोड़ खाएंगे। गाजर ही तो है।" "जब तक बजे, बजाएंगे नही तो तोड़ खाएंगे।" ऐसी भावना और ऊपर से श्वेत पोशाक ! तो ऐसे लोग धर्म की क्या स्थिति बनाएंगे ? ऐसी स्थिति है तो क्या धर्म की प्रवृत्ति कर पाएगे ? जीवन में धर्म क्या रम पाएगा। कोई निश्छल भाव से धर्म की आराधना करना चाहेगा तो लोग कहेंगे- "अब तो शुद्ध पालना संभव नहीं है, जितना पल जाये वही सही है।" ऐसे लोग भगवान की बात भूल गये है। भगवान कह गये हैं- 21,000 वर्ष तक जैन शासन चलेगा और साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका होंगे और वे सोचे कि ये तो पाँचवा आरा है, स्वयं शिथिल हो जाये और कहें ये तो धक्के की गाडी है। हकीकत मे हमने इसे धक्का गाड़ी मान लिया है। हमारे जैसो ने प्रवेश पाया तो हमने धक्का गाडी बना लिया। चलाएगे तो चलेगी।

इस स्थिति में यह आवश्यक है कि हम अपना रूप पहचाने। जैसे सिह शावक भेड़ों के बीच हो, कहीं ऐसा ही रूप तो हमने अपना नहीं बना लिया है ? एक गर्जना होगी तो उसे भान हो जायेगा कि वह गर्जना कर सकता है तो मैं क्यों नहीं ? यदि सोच लें कि हमें तो समन्वय रखना है, तो समन्वय क्यो नहीं हो पायेगा ? पर यह भी तो समझ लें कि समन्वय है किस चिड़िया का नाम ? गुड़-गोबर को एक मान लिया न तो लीपने के काम आएगा न खाने के काम आयेगा। आचार्यदेव ने बताया कि समन्वय का रूप गुण-कर्म के आधार पर संघ, समाज, परिवार मे विभागीकरण के आधार पर हो तो पूरा समन्वय चलता है। पर समन्वय की धुन में आज क्या स्थितियाँ बन रही हैं ?

मैं थोड़ी कठोर और कड़वी बात कर रहा हूँ, पर यह समय का तकाज़ा है कि हम वर्तमान स्थितियाँ समझें और उनकी सम्यक् समीक्षा भी करें। बात आरक्षण की नीति से संबंधित है।

डॉक्टरों का आरक्षण हुआ तो 80 प्रतिशत अंक वाला सवर्ण तो सड़को पर घूमेगा और 40 प्रतिशत अंको वाला शान से कुर्सी पर बैठेगा। वह हॉस्पीटल का सर्वेसर्वा बन जायेगा। तब अखबार में ऐसी खबरे भी पढेंगे कि उसने रिक्शे वाले का ऑपरेशन किया तो दो कैंचियाँ अंदर ही रह गईं। ऐसे डॉक्टर मिल जायेगे तो हो जाएगा जनता का कल्याण ? किन्तु हालात यह है कि-

अंधेर नगरी, चौपट राजा
टके सेर भाजी, टके सेर खाजा।

सारी व्यवस्था चौपट हो रही है। सब चाहते हैं हमारी कुर्सी सलामत रहे। कोई सिद्धान्त नहीं है। यदि कोई सिद्धान्त है तो एक कि मेरी कुर्सी किसी भी तरह कायम रहे। आपराधिक छवि वाले भी राजनैतिक प्रश्रय पा रहे हैं। उनका सहयोग भी तो चाहिये, ताकि कुर्सी बची रहे। राजनीति के गन्दे खेल धर्म और समाज में न घुस पायें, यदि घुस गये तो वही स्थिति इन क्षेत्रो की भी हो जायेगी। यदि ऐसे लोग संघ अध्यक्ष बने तो संघ को तहस-नहस करके रख देंगे।

एक जगह की बात सुनी। एक व्यक्ति ने अच्छे पैसे कमाये, पर सघ मे अपनी पैठ नहीं बना पाया। दूसरे धुरन्धरो की चलती थी। वह सतों के पास चला गया। थोड़ी विचारणा चली। उसने प्रस्ताव रख दिया था कि कुछ धन काम मे लगाना चाहता हूँ। लाखो की घोषणा कर दी। संतों ने विरुदावली कर दी। देखा दुहती गाय है, दुह लो। उदीयमान है सो बना दिया अध्यक्ष। वह तो णमो अरिहंताणं भी नहीं जानता था और वह योजनाएँ बनाने लगा। कहा- "स्मृति भवन में दूब लगानी है, यहाँ फव्वारे होने चाहिये।" अब आप ही सोचिये कि ऐसे व्यक्ति जो सिद्धान्त भी जानते नहीं, यदि संगठन में आयें तो क्या हमे निहाल करेंगे ? भगवान ने स्पष्ट बताया है कि उस स्थिति में कोई धर्म मे उद्यत भी होगा तो उसे भी शिथिलता की शिक्षा देंगे। विरल व्यक्ति ही सिद्धान्तों के प्रति समर्पित रहेंगे, पर लोग उनकी भी खिल्ली उड़ायेंगे।

तीसरे स्वप्न के अर्थ को स्पष्ट करते हुए भगवान ने बताया कि संघ में श्रावक जो कल्पतरु की तरह इच्छित फल देने वाला है, उसके भी चारों तरफ जहरीले सर्प रहेंगे। जो लिंगी हैं, धर्म की पूरी आराधना नहीं करने वाले हैं वे उस संपत्ति का स्राव अपनी ओर मोड़ने का प्रयत्न करेंगे। कोई बिरला ही होगा जो संभल पाएगा।

भगवान ने कहा- "चौथे स्वप्न में आपने कौवा देखा। कौवा दुष्ट प्रकृति का प्राणी होता है, तो वह इस स्थिति की ओर संकेत करता है कि आने वाले समय में यदि कहीं समन्वय की स्थिति बनी तो व्यक्ति उसे छोड़ विघटन की ओर जाएंगे। कुछ नहीं हुआ तो काँव-काँव करके जमावड़ा इकट्ठा करेगे और अपना बहुमत प्रस्तुत करेंगे तथा कहेंगे कि जो बहुमत की बात है वह माननी पड़ेगी।

भगवान ने आगे स्पष्ट किया कि पाँचवें स्वप्न मे आपने वनराज सिह को देखा, जिसके शरीर को कीटाणु नोच खा रहे थे। वनराज जैनधर्म की तेजस्विता के प्रतीक थे। पर धर्मपालन करने वाले नाम तो जैनी का धराएंगे, लेकिन वे संघ को खोखला करने का यत्न करेगे। कीड़ो की भाँति धर्म-शरीर को नोच-नोच कर विक्षिप्त करेगे और गच्छ के रूप मे ले तो गच्छ मे ऐसी स्थिति बनाकर उसे धूमिल करेंगे। लोग

पूछते हैं कि अमुक धर्म फैल रहा हैं, पर हमारा जैनधर्म आगे क्यो नहीं आ रहा है ? तो उत्तर सुन लीजिये- हमारे जैसे कीड़ों के कारण ही वह स्वस्थ नहीं रह पाया है। सारे जैन मिलकर संघ को उठा लो तो स्थिति ही बदल जाये। साधु-साधु तो अपनी मर्यादा में हैं, पर श्रावक-श्रावक भी तो एक हो जाएँ। साधु एक हो गये, श्रावक नहीं हुए तो फिर वे क्या करेंगे ? मैंने पढ़ा था कि ईसाई मिशनरियों का सार्वजनिक संस्थाओं, हॉस्पीटल आदि मे 12,000 करोड़ अर्थ सहयोग बनता है, जबकि जैनियों का 14,000 करोड़ रुपया लगता है। पर बोलबाला किसका है ? क्या यह जैनियो के लिये विचार करने का विषय नही है ?

छठे स्वप्न में आपने कमल उकरड़ी पर खिला देखा। यह प्रतीक है इस बात का कि ऊँचे घराने के लोग पता नही किधर जा रहे हैं, पर नीचे कुलो मे उन्नति होगी, फूल विकसित होगे।

राजन् ! सातवें स्वप्न मे आपने जो किसान अच्छे बीज बजर भूमि पर बोते देखा, वह स्पष्ट करता है कि जैसे अच्छे बीज भी ऊसर भूमि पर बोये जाने पर व्यर्थ हो जाते हैं, वैसे ही श्रावक का दान सुपात्र के काम में नहीं बल्कि ऐसे कामों में जायेगा, जिससे मोक्ष रूपी फल की प्राप्ति नहीं हो सकेगी। उनकी प्रवृत्ति ऐसी होगी जैसे एरंड की चोरी करे, करें सुई का दान। ऐसे लोग जहाँ पर नाम लिखा जाये वहाँ तो देने को तैयार हो जायेगे, पर जहाँ प्रशसा या ख्याति की संभावना न हो, वहाँ दान देने से बचेंगे। वे यह नही सोचेंगे कि यदि लोगो के कलेजे पर नाम लिख दिया तो वह अक्षुण्ण रहेगा। अन्य प्रकार से लिखे गये नाम तो मिटते रहते हैं इसलिये उनकी कोई महिमा नही है, जबकि दिल पर लिखा तो उसकी प्रतिष्ठा बनी रहेगी। परन्तु यह भूलकर जो लोग क्षणिक ख्याति के लिये दान देते है, वे ऊसर भूमि मे अच्छा बीज बोने जैसा काम करते हैं, जो स्वतः ही नष्ट हो जाता है। इस प्रकार सपत्ति भले सही हो पर निष्पत्ति सही नहीं होती।

आठवें स्वप्न में आपने कोने मे उपेक्षित पडे मांगलिक कलश को देखा। उसका प्रतीकात्मक अर्थ है- जैसे कलश मांगलिक होता है, वैसे ही व्रत-नियम-त्याग-प्रत्याख्यान भी मांगलिक हैं, पर उनकी उपेक्षा

होगी। आज के युग में लोग व्रत-नियम आदि मे छूट की माँग करेंगे। ऐसे युवक धर्म मे आगे आयेगे जो कहेगे कि धर्म को विज्ञान से जोड़कर देखा जाना चाहिये। अब आप ही बताईये कि यदि महाराज को विज्ञान पढाने लगेगे तो कितने वर्ष लग जायेंगे ? फिर तो बुढापा आ जाएगा। वे विज्ञान पढ़ेंगे तो मुॅह से विज्ञान की बाते निकलेंगी, धर्म पढ़ेंगे तो धर्म की बातें निकलेगी। विचार करें कि तब धर्म की क्या स्थिति होगी ?

शास्त्र की बात सुनाने वाले तो विरले मिलेंगे, किन्तु सुनने वाले और भी अधिक विरले होंगे। कभी पुण्य का योग होता है तो सुनाने-सुनने वाले मिलते हैं, नहीं तो सुनने वाले भी नही मिलते यो ही समय निकल जाता है, कर्मों के कारण कोई लाभ उठा नही पाता।

भगवान से अपने स्वप्नों का अर्थ और संकेत समझकर हस्तिपाल नरेश प्रतिबोधित हो गये। उनकी सभी जिज्ञासाओ का समाधान हो गया और भगवान महावीर के पास प्रव्रज्या स्वीकार करके, रूप का दर्शन करके वे कृतार्थ हो गये है।

हस्तिपाल नरेश के स्वप्नों के सदर्भ से मैने आगे आने वाले विकट समय का थोड़ा-सा हवाला दिया है और जो वास्तव में भगवान का कथन था वह आपको सचेत करने के लिये पर्याप्त होना चाहिये। रूप चौदस का प्रसंग भी आपके सम्मुख उपस्थित है। आप सुन भी रहे हैं, अतः निज स्वरूप को पहचान कर जिन्दगी मे कुछ बदलाव लाने का प्रयास करे, नही तो हाथ मे कुछ रह नहीं पाएगा। वीतराग वाणी का संबल लेकर बढेंगे तो जीवन को धन्य बना पाएंगे। आने वाले छठे आरे का रूप कैसा भयानक होगा इसका अनुमान कर धर्म आराधना मे प्रवृत्त हों तो ऐसे क्षेत्र मे जन्म नही लेना पड़ेगा। इसलिये जागिये और आत्मकल्याण के मार्ग पर आगे बढ़िये।

25.10.2000

❖ ❖ ❖

4. घट-आंगन में दीप जले

शांति का स्वरूप कैसा है और शांति के सोपान कौन-कौनसे हैं ? यह प्रश्न आज का नहीं, सदियो का है, युगो-युगों का है। जब से ससार अस्तित्व मे आया है, तब से चला आ रहा है। पर ऐसा भी नहीं है कि किसी ने इसका उत्तर न पाया हो, यह अनुत्तरित ही रहा हो। इसका समाधान पाया गया है। समाधान ही नहीं पाया गया है, बल्कि अपने को शांतिमय बनाया भी गया है। ऐसी आत्माएँ एक नहीं, दो नहीं, अनंतानंत हो चुकी है और आने वाले समय में इस शांतिमय स्वरूप को उजागर करने वाली आत्माएँ अनंतानंत होने वाली भी है।

अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि हमने अब तक उस शांति के स्वप्न को पाया है या नहीं और उसे प्राप्त करने की कितनी और कौनसी विधाएँ हमारे सामने प्रस्तुत हैं। इस संबंध में तीन बातें मुख्य रूप से आई हैं- देव, गुरु, धर्म पर विश्वास करना। पहले देव पर विश्वास की बात करें।

हम अरिहंत व सिद्धदेव पर विश्वास करते हैं, उन पर श्रद्धा भी करते है, किन्तु अरिहंत के वचनों पर पक्का विश्वास भी करते हैं या नही ? यदि करते हैं तो कही विश्वास के विपरीत आचरण तो नही करते हैं ? यदि विपरीत आचरण है तो शांति कैसे मिलेगी ? कैसी विडम्बना है कि विश्वास तो हम करें, किन्तु विश्वास के अनुरूप आचरण नहीं करे। विश्वास करे कि शक्कर/मिश्री मीठी होती है, किन्तु खाऊँगा नहीं या पहले से मुँह मे नमक की जो डली पड़ी है, उसे निकालूँगा नही। वह निकले नहीं तो मिश्री मुँह मे जाये कैसे ? जब तक हम नमक की डली न छोड़े तब तक मिश्री का स्वाद हमे प्राप्त नहीं हो पाएगा, भले हम मिश्री की मिठास पर विश्वास करते रहे। ऐसी ही स्थिति कतिपय अशों मे हमारी बनी हुई है। हम तीर्थंकर देवो पर

विश्वास करते हैं, उनकी वाणी पर भी हमारी निष्ठा-आस्था है, किन्तु क्या आचरण भी उनकी वाणी के अनुकूल है ? कौनसे शास्त्र मे कहा गया है कि क्रोध करना अथवा ईर्ष्या-द्वेष करना ? किन ग्रंथो में बतलाया गया है कि राग-द्वेष करने से आत्मा का उत्थान हो जायेगा ? किसने बतलाया है कि मान-सम्मान प्राप्त करने से आध्यात्मिक साधना संभव हो जायेगी ? ऐसा कुछ बतलाया नहीं गया है, फिर भी हमारी प्रवृत्ति उधर हो जाती है ? विचार कीजिये कि यदि प्रवृत्ति उधर है तो फिर शांति कैसे मिल पाएगी ? शांति की तरफ तो हमने पीठ कर रखी है। मुँह से उच्चारण हो रहा है, पर कदम शांति की तरफ बढ़ नहीं पा रहे हैं।

कई व्यक्ति कहते हैं- 'तमसो मा ज्योतिर्गमय', अंधकार नहीं, मुझे प्रकाश की ओर ले जाओ। ले जाने या पहुँचाने के लिए कहा जरूर जाता है, किन्तु पहुँचने की तैयारी उतनों की हो नहीं पाती। आज आपसे कोई कह दे कि यदि आप शांति पाना चाहते हैं, तो मैं कहूँ वैसा आचरण करो शांति मिल जाएगी। तो हम दो मिनट सोचने लगेगे- इनकी बात माने या नहीं ? न जाने कैसे आचरण की बात कह दे ? हम चिन्ता या चिन्तन में लग जाएंगे, पर साहस नहीं हो पाएगा कि वह जैसा कहे, वैसा करने को तैयार हो जाये। जब तक इतनी तैयारी नहीं तब तक शांति का संचार जीवन में हो नहीं सकता।

जिसने तीर्थंकर देवों की वाणी के साथ ही गहराई में उतरने का प्रयत्न किया है, वह अपने आपको कषाय से बचाकर चलेगा। वह कषाय का वातावरण देखेगा तो उसे छोड़ शांत स्थान पर पहुँचने का प्रयत्न करेगा, क्योंकि शांति का प्रभाव पड़ता है। यदि वह कषाय में निरन्तर उलझता रहे या जिस वातावरण में निरन्तर कषाय हो उसमे रहे तो उसके भी मन में उतार-चढाव आ सकता है। इसीलिये हमारे आगमो में स्पष्ट कहा गया है कि जो सांसारिक शय्या है, जहाँ स्वय गृहस्थ पूरी गृहस्थी के साथ बसा है, वहाँ साधु को नही रुकना। वह साधु के निवास योग्य क्षेत्र नही है। क्या कारण है ? क्या भगवान महावीर अपने साधु पर विश्वास नहीं करते थे, इसलिए मना कर दिया ? या वे जानते थे

कि ये कच्चे मस्तिष्क के है, इसलिए मना कर दिया ? बात ऐसी नही
है। अनादिकालीन संस्कार कब कहाँ हावी हो जाये, कहा नही जा
सकता। चरम शरीरी की भी जब कैसी-कैसी अवस्था बन जाती है, तब
सामान्य साधक की क्या कहें ? इसलिए भगवान ने कहा- घर में रहते
हुए बच्चो के क्लेश, सास-बहू की बोलचाल या वचनों की कुरती कानों
मे आ सकती है। वे सास-बहू आ जाये कि आप साक्षी बनकर निर्णय
कर दो, कौन गलत है कौन सही ? तो क्या करे साधु उस समय ?
उनका निपटारा करे ? ऐसे झझट में साधु को नहीं पड़ना है। गृहस्थी के
घर रुकेगा तो एक नही अनेक झझट आएंगे, शिकायते आएंगी। मन में
भी आएगा कि ये कैसी सासू है ? झगड़े करती है, ये बहू कैसी है ?
तो उसकी चित्त धारा मे भी चंचलता-उतार-चढाव की स्थिति आ
जायेगी। ऐसी अवस्था में एक-दूसरे के प्रति लगाव या द्वेष के भाव पैदा
हो सकते हैं। इसलिए कहा है- ऐसे स्थान में नहीं रुकना। क्योंकि
साधक शांति, आनंद, प्रकाश की प्राप्ति के लिए निकला होता है। ऐसी
बाते उसे प्रकाश की ओर नही, अंधकार की ओर ले जाने वाली ही बन
जायेंगी। कोई सोचे कुदाली हाथ में लेकर गड्ढा खोद लू, पर गड्ढा
खोदने मात्र से पानी नहीं मिलेगा। उसे तरीके से खोदना पडेगा। केवल
हल खेत मे चलता रहे तो इतने मात्र से जरूरी नही कि पूरी मिट्टी
व्यवस्थित हो जाये। हल चलाने वाले जानते हैं कैसे दबाव देना। जमीन
के भीतर तक जब हल का फाल पहुँचाता है, तब जाकर नीचे की
मिट्टी ऊपर हो पाती है। जैसे केवल कुदाली से खोदने मात्र से काम
नही होगा, वैसे ही हमें बोलने/सोचने मात्र से शांति प्राप्त नही होगी।
उसके लिए द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव को भी महत्त्व दिया गया है।

आगम उठाकर देखिये, अधिकांश स्थानो पर मिलेगा कि साध
कहाँ रुकते थे ? उद्यानो मे रुकते थे ? कारण क्या था ? वहाँ का क्षे
शुद्ध होता था। साधना के लिए अनुकूल होता था। किन्तु ऐसी बात भ
नही थी कि शहरों मे नही रुकते थे। रुकने के अनेक स्थान बताये गए
है। 18 प्रकार के स्थानो मे रुकने का सदर्भ मिलता है- प्याऊ,
लुहारशाला और धर्मशाला जैसे अनेक स्थान बताये गये हैं। यदि ...
मिले तो पेड़ के नीचे भी रुकते ...

के बीच में रुकने का भी प्रावधान है। बृहत्कल्प सूत्र मे बतलाया गया है कि ऐसे उपाश्रय में ठहरना, किन्तु इसके पीछे इतना अवश्य बताया गया है कि क्षेत्र शांतिमय हो। शांतिमय होगा तो साधना में बाधा नहीं आयेगी। क्षेत्र शांतिमय नहीं होगा तो वहाॅ साधना का प्रयत्न तो करेगा, किन्तु बीच मे व्यवधान आ सकते हैं। इसलिए क्षेत्र शुद्धि को भी महत्त्वपूर्ण बताया गया है।

भगवान महावीर ने अंतिम चातुर्मास कहाँ किया था ? उन्होने बहुत से चातर्मास उद्यानों में किये होंगे, किन्तु अंतिम चातुर्मास हस्तीपाल राजा की कचहरी में किया, इसका उल्लेख मिलता है। उनकी गजशाला में संपन्न किया। क्या हस्तीपाल महाराज के पावापुरी के बाहर उद्यान नही था ? फिर वे चातुर्मास कचहरी में क्यों कर रहे थे ? वह क्षेत्र भी उन्हें अनुकूल लगा होगा। साथ ही कोई यह भी न सोच ले कि भगवान तो बगीचे में ही ठहरे तो आज के साधु शहरों मे क्यों ठहरते हैं ? यदि शहर मे अनुकूल स्थान है, कल्पमर्यादा सुरक्षित रह सकती है तो वैसे स्थान का चयन भी कर सकते हैं और वैसे स्थान में शेषकाल या चातुर्मास करने में बाधा जैसी बात नहीं लगती।

प्रभु महावीर का अंतिम चातुर्मास और वहाॅ भगवान के द्वीप से ज्योति ले अपनी आत्मा को ज्योतित करने नवमल्ली, नवलच्छी नरेश पहुँचे हैं। वे पौषध व्रत स्वीकार करते हैं। कितना शांत वातावरण होगा । साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका प्रभु के समीप हैं और प्रभु अपनी साधना मे तन्मय है। भगवान के भी बेले की तपस्या हो जाती है। लगभग सभी व्यक्ति यह जानते हैं कि यह भगवान का अंतिम समवशरण है। उस दिन अमावस्या की रात्रि थी। उसी रात्रि में भगवान महावीर की ज्योति जो तब तक शरीर में आबद्ध थी, उस शरीर से अलग होकर ज्योतिर्मय स्थान मे पहुँचने वाली थी। ऐसे समय में सभी चाहते थे कि हम सेवा, उपासना कर ले और भगवान महावीर जो फरमा रहे है वह सुन लें। हस्तीपाल राजा ने अपनी जिज्ञासाओं का समाधान लिया, समाधान हुआ वे क्या बन गये, यह आप जानते हैं।

प्रभु महावीर ने हस्तीपाल राजा के प्रश्नों का समाधान देते हुए एक बात और कही- "राजन् ! पागल नगरी।" नगरी पागल नहीं थी, नगरी तो सही थी, किन्तु उस नगरी में एक नैमित्तिक पहुँचा था। उसने कहा था कि आने वाला समय विचित्र है। इस बार जो बारिश होगी, जो पानी बरसेगा, उसे पीने वाले पागल हो जाएंगे। राजन् ! इसलिए आप पहले से ऐसी व्यवस्था करवाईये जिससे लोगों को वर्षा का पानी नहीं पीना पड़े। नहीं तो जनता खतरे में पड़ जाएगी।" सम्राट ने आज्ञा शिरोधार्य की।

ऐसी अनहोनी-सी बात सुनकर आज हम भले आश्चर्य करें, पर इसमें आश्चर्य जैसी कोई बात नहीं है। परमाणु परीक्षणों के कारण मौसम में कैसे परिवर्तन हो गये हैं, हम जानते हैं। जहाँ परमाणु विस्फोट हो वहाँ क्या हालत होती है। यह आज हमसे छिपा नहीं है। हम जानते हैं कि जहाँ परमाणु विस्फोट होता है वहाँ का जन-जीवन बुरी तरह प्रभावित होता है। वहाँ भी ऐसी बात सामने आई। सम्राट ने प्रयत्न किया, प्रबंध किया। अन्ततोगत्वा पानी बरसा। पर लोग भी तो अविश्वासी और संदेह करने वाले होते हैं। उन्होंने सोचा कि लोग तो ऐसे ही कह देते हैं। ऐसा होता थोड़ी है। उन्होंने चेतावनी को दरकिनार कर पानी पीया। पानी मीठा लगा। कहने लगे, लोग तो गप्पे ठोंक देते हैं। कैसा मीठा पानी है। शायद इससे वंचित रखने के लिए ही हमें मना किया गया है। पीने वालों ने दूसरों को भी प्रेरणा दी। बस, लोग पीने लगे पानी और दूसरों को प्रेरणा देने लगे। परिणाम तो सामने आना ही था। जिन्होंने पीया वे थोड़े समय बाद पागल हो गये। अधिकांश व्यक्तियों ने पानी पी लिया था।

भगवान ने कहा कि जनता इकट्ठी होकर सम्राट के पास पहुँची। सम्राट व दीवान सभा मे शांत भाव से बैठे हुए थे। वे पागल बने व्यक्ति हाव-भाव व्यक्त करते अपनी बात कह रहे थे, परन्तु सम्राट व दीवान माथा नहीं हिला रहे थे। उन पागलो ने सोचा- ये कैसे मनुष्य हैं, ये पागल दिखते है। करो इनकी धुनाई। राजा ने खतरा भाँपकर दीवान को देखा- "क्या बात है ?" दीवान ने कहा- "राजन् ! समय देख लो।

हा हूँ शुरू कर दो'' और वे राजा व दीवान भी थोड़ी देर के लिए पागलपन दिखाने लगे। इस पर उन पागलो ने व्यग्य किया- मार का भय लगा तो दिमाग ठिकाने आ गया।

तब भगवान ने आगे कहा- हस्तीपाल नरेश ! आने वाले समय में लिंग धारण करने वालों का यही हाल रहेगा। आचरण शुद्ध नहीं होगा। वे कहेगे समन्वय का युग है, समन्वय होना चाहिये। हमारी मर्यादा हमारे साथ है, दूसरों से व्यवहार रखने में कंजूसी क्यो हो ? सामने वाले का आचरण कैसा है, इससे हमे क्या लेना-देना। अपनी करणी पार उतरणी। हमें सबका स्वागत करने में क्या दिक्कत है ? बात सुनकर लोग कहेंगे- वाकई इन संतों की सहज चर्या है, ये कट्टर नहीं है। कट्टरपंथी किसे समझा जाये ? जो अपनी मर्यादा में चुस्त है, जिन्हें संयमी जीवन से अनुराग है। जो संयमी चर्या में सजग है, उन्हे कट्टरवादी का फतमा मिलता है। जो मात्र व्यवहार में जी रहा है, वास्तव में वह सरल नहीं है, बल्कि अपनी कमजोरी को ढंकने का मायाजाल रच रहा है। ऐसा मायाचरित करने वाला व्यक्ति शांति प्राप्त नहीं कर पाएगा, न ही अपनी शांति प्रकट कर पाएगा।

प्रभु ने आगे कहा- राजन् ! आने वाले समय मे यदि अणगार दिखावे का व्यवहार करेगे तो सच्चे संत कहलाएंगे और सच्चे सतो की, जैसे कुंभ कलश कोने में पड़ा है, वैसे ही उपेक्षा होगी। कोई जाये तो जाने नहीं देंगे। जहाँ कट्टरपंथी होगे, वहाँ क्या धर्म आराधना होगी ? इस प्रकार कहकर सच्चे संतो के पास जाने से रोकने का प्रयास करेंगे। यह सुनकर हस्तिपाल प्रतिबोधित हो गये। उन्होने संयम जीवन स्वीकार कर लिया और कर्मों की बेड़ियो को तोडकर शिवसुख को प्राप्त कर लिया।

इसी संदर्भ मे भगवान ने पॉचवे आरे का विस्तार से वर्णन किया। उन्होंने बताया कि आने वाला युग अवसर्पिणी काल है। उसमें प्रत्येक क्षेत्र और अवस्था में ह्रास होगा। उत्थान की जगह केवल मनोरजन की बात रह जाएगी। शरीर का बल, आयु, लक्ष्मी घट जायेगी। लोग कहेंगे कि आयु दर बढ़ गई है, पर चौथे आरे की दर पचम आरे मे प्राप्त नहीं होगी। उस अपेक्षा से घट जायेगी और घटते-घटते पॉचवें

आरे के अंत तक केवल 20 वर्ष की उम्र रह जायेगी। 20 वर्ष में ही व्यक्ति सारा ससार देख लेगा। 6 वर्ष में शादियाँ होगी। 20 वर्ष की उम्र में 6 वर्ष की जवानी होगी। अभी लगभग 100 वर्ष की उम्र है तो 20 वर्ष की उम्र जवानी की मानते हैं। भगवान ऋषभदेव के समय 20 वर्ष मे जवानी नहीं आती थी। लगभग 5 लाख वर्ष पूर्व की वय मे शादी-विवाह का प्रसंग बनता था। ये तो आयु दर के हिसाब से जवानी की स्थिति बनती है। बतलाया गया कि पाँचवें आरे के प्रारम्भ में जो 100-125 वर्ष की उम्र है, वह 20 वर्ष में आ जाएगी। जहाँ पाँचवे आरे के प्रारंभ में उत्सेध अंगुल से 7 हाथ तक की लम्बाई है, किन्तु समाप्त होते-होते वह एक हाथ की लम्बाई रह जायेगी। शरीर की शक्ति मे भी अंतर आ जायेगा। महाराणा प्रताप लगभग 500 वर्ष पहले हुए थे। 500 वर्ष पहले वे जिस भाले को एक हाथ से उठाते थे, उठाते ही नहीं, बल्कि संग्राम में चलाते भी थे आज उसे 5-7 व्यक्ति मिलकर ही उठा पाते हैं। 500 वर्षों में ही शारीरिक बल की कितनी क्षति हुई है। जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति में बताया है कि पहले आरे में जमीन का रस कैसा था और पाँचवें आरे मे कैसा रह गया। कहाँ तो मिश्री, दूध, घी के समान था और कहाँ पानी का भी पता नहीं। भूमि को खोदते ही चले जाईये। आज से 50 वर्ष पहले के लोग जानते हैं कि गेहूँ की शक्ति और ऊर्जा मे कितना अंतर आ गया है। पुराने लोग इन बातों को जानते हैं, नये लोग क्या बताएंगे जो कागजी जवान हैं। आज कहते हैं अन्न मे मिठास नही है। इन सबका कारण यह है कि भूमि का रस धीरे-धीरे घटता जा रहा है। पाँचवा आरा समाप्त होते-होते छठा आरा लगते-लगते तो भूमि से अनाज मिलना ही बंद हो जायेगा। फिर भूमि को सरसब्ज होने में कितना समय लगेगा ? छठा आरा, फिर पहला आरा 42,000 वर्ष तक। फिर जब वापस खाद मिलेगी, तब उर्वरता पैदा हो पायेगी। आज जो अनेक प्रकार की खाद दी जा रही है वह सारा का सारा छठे आरे के नजदीक ले जाने का कार्य है। कहते है- 4-6 फसल देने के बाद खेत खाली न छोड़ें तो वे फसल नही देंगे। खाद देकर हम जमीन का रस सार खीच रहे है। सब रस खीच लिया तो फिर सार रहेगा नही। फिर छठे आरे मे शाकाहारी ही नही रह पाएगे। कैसी जिन्दगी जीयेगे ? हम भी बहुत बार

गये हैं। अब नहीं जाये तो बात बड़े पते की हो जाये। पर ये दुःख हमने भी बहुत भोगे हैं। इस प्रकार के दुःखों से संतप्त आत्मा कर्मबंध कर चतुर्गति में भ्रमण करने की स्थिति में रहेगी।

इस प्रकार दुःख का वर्णन सुन बहुत से राजाओं, सेठों एवं नर-नारियों ने प्रभु के चरणों में संयम स्वीकार करने की तैयारी कर ली। नवमल्ली, नवलच्छी राजा, चेड़ा, उदायी आदि भूपाल पहुँचे हुए थे। एक-एक शब्द कर्ण कुहरों में डालने की तैयारी में थे। ये अंतिम समवशरण है। फिर ये देशना हमें मिलना संभव नहीं है। सुन लें। जितना गागर को भरना है, भर लें, नहीं तो समवशरण पूर्ण हुआ नहीं, अमावस्या की यह अंधेरी रात्रि गई नहीं कि फिर ये अनमोल वाणी जो निरन्तर प्रवाहित होती रही है, मिल नहीं पाएगी। इसी भाव से सभी उपस्थित जन प्रभु की अमृतवाणी शांत भाव से सुन रहे थे। प्रभु महावीर ने सुखविपाक एवं दुःखविपाक के एक सौ बीस अध्ययनों का वहाँ विवेचन किया और फिर उसी के आगे उत्तराध्ययन सूत्र के 36 अध्ययनों की विवेचना भी की। 36 अध्ययन प्रारंभ करने से पूर्व भगवान महावीर दुनिया को यह बताना चाहते थे कि मैं जा कहाँ रहा हूँ ये उसमें यथार्थता है। ये बातें शास्त्रों की ही नहीं, जीवन व्यवहार के लिए भी हैं, ये केवल प्रचार के लिए नही है। तीर्थंकरो की आकांक्षा नहीं थी कि वे केवल शोभा के लिये सिद्धान्त के रूप मे बातें कहें। इसीलिये उन्होने विनय की महिमा के प्रतिपादन से अपनी देशना प्रारम्भ की।

भगवान ने प्रारंभ करते हुए कहा-

संजोगाविप्पमुक्कस्स, अणगारस्स भिक्खुणो।

विणयं पाउकरिस्सामि, आणुपुव्विं सुणेह में॥

मैं साधु के विनय को कहूँगा। विनय कैसा होता है ? भगवान ने उसका प्रयोग करके दिखाया। यहाँ भी यद्यपि पुरानी परम्परा से थोड़ा मतभेद है। पुरानी मान्यता की बात अपनी जगह पर है कि जब भगवान महावीर ने देखा कि गौतम का मेरे प्रति धर्म-स्नेह है, राग भाव है, इसलिए राग भाव को दूर करने हेतु उन्हे देव शर्मा ब्राह्मण को प्रतिबोध

देने भेजा। हालांकि यह भी सही है कि उनका गुरु के प्रति अनुराग था, पर गुरु के प्रति अनुराग भाव ऊपर उठाने वाला होता है। उस राग मे भी वैराग्य होता है। नही तो छठे गुणस्थान में कोई वैरागी नहीं हो पाएगा। जबकि छठे गुणस्थान मे प्रत्याख्यान भी होते है, वैरागी भी होता है, किन्तु राग भी होता है। वह होता है देव का, गुरु का, धर्म का। वह राग हमारे भीतर त्याग-वैराग्य जगाता है, जबकि संसार का राग-विषय-कषाय जागृत करता है। इसलिए ऊपर के गुणस्थान मे वह मोह का राग नहीं है, जो विषय-वासना जागृत करे। यहाँ जो राग है वह त्याग-वैराग्य प्राप्त कराता है।

बंधुओं ! इसे ऐसे समझें। जैसे भूमियॉ भूमि के रूप मे सारी समान होती है, पर उनमे भी द्रव्य की अपेक्षा अन्तर होता है। कोई रेतीली भूमि होती है, तो कोई पथरीली काली मिट्टी रूप में भी होती है। जहॉ रेतीली भूमि होती है वहाँ बाजरा-मोठ पनपेगा और जहाँ काली चिकनी मिट्टी है वहाँ धान पैदा होगा। जमीन से जैसे पैदावार मे अतर पड़ता है, वैसे ही राग-राग में जो अंतर होता है उससे परिणाम मे भिन्नता आती है। एक राग बंधन का कारण बनता है, दूसरा राग मधुर रस पैदा करता है, जिसे चखने पर व्यक्ति ऊपर बढता है।

साधु जीवन खजूर का पेड़ है,
चढ़ने वाला प्रेम रस की अनुभूति करता है।

वह राग भाव एकदम त्याज्य नहीं कहा गया है। जैसे-जैसे आत्मा का उत्थान होता है, जैसे-जैसे वह ऊपर चढ़ता है, वैसे-वैसे नीचे की पगतियाँ घटती जाती हैं और जैसे ही 12वें गुणस्थान को प्राप्त करता है, आत्मा वीतराग बन जाता है और आगे बढ़ता है तो सर्वज्ञ-सर्वदर्शी बन जाता है।

पहले की परम्परा रही थी कि गौतम स्वामी को राग था, इसलिए भगवान ने देव शर्मा को प्रतिबोध देने के लिए कहा। गौतम स्वामी पधार गये। ज्ञानियो के ज्ञान मे कितनी गहराई होती है यह हम जान नहीं पाते है। हमारा उतना क्षयोपशम नहीं होता, किन्तु हम चिन्तन करते हैं कि उन महापुरुषो का यह चिन्तन रहा होगा कि जब वे विनय

धर्म का विवेचन करते हैं तो वे बताना चाहते हैं कि विनय क्या होता है और कैसे की जाती है विनय की साधना ? विनय की साधना नहीं हुई तो धर्म पैदा कैसे होगा ? यदि विनय नहीं होगा तो मोक्ष फल की प्रतिपत्ति भी नहीं होगी। विनय नहीं है तो कितनी ही औपचारिकताएँ निभा लो, कितनी ही कठोर साधना कर लो, कुछ नहीं फलित होने वाला है, क्योंकि शास्त्र में स्पष्ट कथन है और सबसे पहले कहा गया है कि विनय धर्म का मूल है। धर्म पेड है। उसका फल मोक्ष है। मैंने बताया था कि मोठ-बाजरी के लिए जमीन अलग प्रकार की होती है तथा अन्य फसलो के लिये अलग प्रकार की होती है। अन्नों में सबसे श्रेष्ठ चावल को माना गया है। उसके लिए जमीन कोमल होनी चाहिये। आसाम वाले चावल या धान की खेती के बारे में ज्यादा जानते हैं। दो बार उसकी बुवाई करते हैं। एक बार बीज डालते हैं फिर बाद में गीली-गीली भूमि में उन बीजों से निकले पौधों को वापस व्यवस्थित ढंग से रोपते है। तब जाकर श्रेष्ठ अन्न पैदा होता है। जैसे श्रेष्ठ अन्न के लिए कोमल भूमि चाहिये, वैसे ही धर्म के लिए संवेदनशील मनोभूमि की आवश्यकता होती है। उसे बनाने के लिए-

चरम समयं जाणी भगवंत
विनय धर्म है महिमावंत।
उसको पाले उत्तम संत....।

कथनी करनी हो इकरूप - प्रभुजी भाखियाजी हर एक के लिए विनय की पालना संभव नही है। नंगी तलवार पर चलना फिर भी सरल है, पर विनय की धार पर चलना बडा टेढा काम है।

विनय :- **'विगतः नयः यस्मात् इति विनयः।'**

'नय' कहते हैं विचार के प्रवाह को। हमारे भीतर अनेक विचार प्रवाह हैं, वे सारे विचार प्रवाह जहाँ नष्ट हो जायें वहाँ विनय प्रकट होता है। दशवैकालिक सूत्र में कहा गया है-

कहण्णु कुज्जा सामण्णं, जो काभे न निवारए
पए पए विसियंन्तो, संकप्पस्स व संगओ.....।

संकल्प-विकल्प में पड़कर साधु-जीवन की आराधना हो नही सकती। संकल्प-विकल्प हैं तो विनय नही है। जहाँ विनय है, वहाँ संकल्प-विकल्प सारे समाप्त। वे उठते ही नहीं है। ये है विनय की उत्कृष्ट परिभाषा। इस विनय धर्म को उत्तम जातिवान ही प्राप्त करने में समर्थ होता हैं। यदि कोई कहे कि सारे विचार का नष्टीकरण हो गया तो धर्म मोक्ष कैसे होगा ? तो उसकी दूसरी परिभाषा बनती है-

विशिष्टा नया यस्मिन् इति विनयः।

विनय में विशेष विचारों का प्रादुर्भाव होता है। क्लेश कंकास के विचार दफना दिये जाते हैं। दफना ही नहीं, बल्कि भस्मीभूत कर दिये जाते हैं। फिर जो नया प्रवाह प्रवाहित होता है, वह मोक्ष की ओर ले जाने वाला होगा। उससे धर्म पौध विकसित होगी और मोक्ष फल प्राप्त होगा। ऐसे धर्म के लिए भगवान महावीर कहते हैं- "गौतम ! देव शर्मा को प्रतिबोध देना है।" क्या करना चाहिये ऐसे समय में ? कहना सरल है, हम झट कह देंगे- आज्ञा शिरोधार्य। पर कहना जितना सरल है, उस पर चलना उतना ही मुश्किल होता है। मुझसे कैसे कह दिया ? मैं तो पाटवी चेला हूँ। उसे तो प्रतिबोध कोई भी दे सकता है। इस अन्तिम वेला में अलग कैसे कर रहे हैं। पर गणधर गौतम के मन मे आये क्या ऐसे विचार ? यदि आये होते तो भगवान, गणधर गौतम से कहते ही नही, नहीं मानने वाले को कहकर क्या वे राग-द्वेष फैलाना चाहते थे ? संकल्प-विकल्प पैदा करना चाहते थे ? वे जानते थे कि यह वीर ऐसा है कि कही जाना हो तुरन्त तैयार। वे तुरन्त तैयार हो जाते हैं। कोई नानुनच नही। मन मे कोई उतार-चढ़ाव नही। रवाना हुए तो लोग देखते रह गये। वस्तुतः उनका यह प्रयोग था अपनी ही प्रयोगशाला में और इस प्रयोग को भगवान महावीर ने पूरी जनता के सामने सफल करके दिखा दिया।

ज्योतिर्धर जवाहराचार्य ने शांतक्रांति के अग्रदूत गणेशाचार्य से जब वे संत के रूप मे व्याख्यान दे रहे थे, तब किसी प्रसंग से कहा- यह बात ऐसी नही है, उन्होंने तुरन्त कान पकड़कर उस बात को स्वीकार किया। कोई अन्यथा भाव मन मे नहीं आया। यह नही सोचा कि

ऐसा कैसे कह दिया। इतने लोगों के बीच मेरी इनसल्ट कर दी। यदि अपनी इनसल्ट मानते तो फिर विचारणीय यह भी होता है कि प्रतिष्ठा कब थी? प्रतिष्ठा देने वाले/प्रतिष्ठा दिलाने वाले कौन थे ? जो दिलाने वाले हैं वे इनसल्ट कैसे कर सकते हैं ? हमारी बुद्धि थोथी है। हम सार की बात पकड़ नहीं पाते हैं। इसलिए आनन्दघनजी कहते हैं-

तामसी वृत्ति सहुपरिहरे।

इन वृत्तियों को दूर करना होगा। ये दूर होंगी तभी धर्म की आराधना-साधना कर पाएंगे। नहीं तो हम केवल रेत में नाव चलाने की क्रिया कर रहे होंगे। पर रेत में नाव चलती नहीं है। हमें शांति प्राप्त करनी है तो हम किसी से तू-तू मैं-मैं में नहीं पड़ेंगे। शांति का इच्छुक बीच की प्रवृत्तियों में लगेगा नहीं।

पूज्य गुरुदेव एक दृष्टांत दिया करते थे- एक व्यक्ति को ज्ञात हो गया कि अभी अमुक जगह पहुँचे तो एक करोड़ प्राप्त हो सकते हैं और यदि एक सेकंड की भी देर की तो कुछ नहीं मिलेगा। वह रफ्तार से चला, सोचता जा रहा था कि यदि एक सेकंड भी लेट किया तो पहुँच नहीं पाऊँगा। ऐसी मानसिकता से यदि व्यक्ति जा रहा है और कोई उसके साथ गाली-गलौज करे, उस पर कीचड़ डाले तो क्या वह झगड़ा करने के लिए रुकेगा ? बताओ तो सही उसे क्या करना चाहिये ? आप कहेंगे चलते रहना चाहिये। किन्तु आप क्या कर रहे हैं ? क्या आप वीतरागता की ओर नही बढ़ रहे हैं। यदि बढ रहे हैं तो बीच में कोई आपके साथ अभद्र व्यवहार करे तो आप रुकेंगे या बढ़ते रहेंगे ? विचार आपको करना है।

भगवान ने क्या कहा है ?

समयं गोयम मा पमायए।

क्या गौतम स्वामी बहुत प्रमादी थे ? यदि नहीं थे तो उनसे क्यो कहा ? इसे समझिये। उनके कथन में गूढ दर्शन छिपा है। 'गो' अर्थात् इन्द्रियाँ और तम अर्थात् अंधकार। तो जो इन्द्रियों के अधकार मे पड़े है वास्तव में उनसे कहा है- प्रमाद में मत पड़ो। उनके कहने का अभिप्राय

यह है कि पहले से ही तुम इन्द्रियों के विषयों में पड़े हो, फिर प्रमाद मे भी पड़ गये तो स्थिति चिन्ताजनक हो जायेगी। जैसे बंदर स्वभाव से ही चंचल है, फिर उसे शराब पिला दे और ऊपर से उसे बिच्छू काट जाये तो उसकी उछलकूद की जो स्थिति होगी वह दयनीय ही होगी। फिर वह हर किसी को परेशान करेगी। वैसे ही हम इन्द्रियों के अर्थों में मशगूल हो फिर प्रमाद की चादर भी ओढ़ ले तो चेतना का विकास कहाँ से होगा ? इसलिए भगवान का उपदेश ऐसी आत्माओ के लिए रहा है, "जागो ! ऐसे समय में न जगे तो फिर पश्चात्ताप ही रह जायेगा।" जैसे एक करोड़ पाने का कामार्थी मिट्टी फेंकने वाले का प्रतिकार नहीं करता, वैसे ही वीतरागता की कामना रखने वाला दुनिया की छल-छंदों मे नही फँसता। अतः माया में उलझो मत। अर्जुन गाली-गलौज में नहीं उलझा, तब तो भगवान महावीर भी मौजूद थे। किसी ने पत्थर फेंके, पर उन्होने शिकायत नहीं की। नही कहा- "भगवान ! आपके राज मे ये कैसा अंधेर ! हमारी सुरक्षा नहीं है। ये कैसे सहन होगा ?" उन्होने कोई शिकायत नहीं की। मैं अपने कर्मों का क्षय करूँगा, यदि ऐसी समभाव की स्थिति हो तो शांति कहाँ दूर है। तब तो मुक्ति हमारे लिए तैयार है, पर हमारी दृष्टि भी एकाग्र होनी चाहिये।

गुरु द्रोणाचार्य परीक्षा ले रहे थे। अर्जुन से पूछा- क्या देख रहे हो ? अर्जुन ने जब कहा- सिर्फ अपने लक्ष्य को। तब जाकर लक्ष्यवेध कर पाया। गौतम को लक्ष्य तक पहुँचना था। आज्ञा सुनते ही शिरोधार्य कर ली। उस विनय की उत्कृष्टता ने ही गौतम को उसी रात मे केवलज्ञान प्राप्त करवा दिया।

मै आपको भगवान के अंतिम समवशरण की बात बता रहा था। इधर गौतम स्वामी प्रतिबोध देने पहुँचे, उधर-

कार्तिक अमावस्या, पिछली रात।
स्वाति नक्षत्र शशि के साथ।

कार्तिक अमावस्या की रात्रि आ गई और चन्द्रमा के साथ स्वाति नक्षत्र का योग। आप कहेंगे अमावस्या और चन्द्रमा ? अमावस्या को चन्द्रमा दिखता है क्या ? नहीं। पर होता है। उसके साथ स्वाति नक्षत्र

का योग है। भगवान उत्तराध्ययन का 36वाँ अंतिम अध्ययन प्रदान करने की स्थिति में हैं। शकेन्द्र वंदन-नमस्कार कर निवेदन करता है- "भस्मक ग्रह का योग जन्म नक्षत्र से जुड़ रहा है। उत्तराफाल्गुनी के साथ भस्मक ग्रह का योग बन रहा है, उसके कारण 2000 वर्ष तक संघ की हालत बेहाल बन जाएगी। जो ज्ञान-दर्शन-चारित्र की ज्योति प्रज्वलित होनी चाहिये, वह छिन्न-भिन्न अवस्था में रहेगी। हालांकि पूर्णतः समाप्त नहीं होगी, पर छिन्न-भिन्न अवस्था में रहेगी। अनेक हानियाँ होंगी। भगवान आपके नाम-स्मरण से रोग-शोक-दुःख दूर हो जाते हैं। उपासना से वांछित फल सिद्ध हो जाते हैं। हमारी विनती है दो घड़ी के लिए ठहर जाईये।

ठहरना ? कौन कह रहा है ? इन्द्र। "दो घड़ी विश्राम ले लीजिये", ताकि वह योग निकल जाये ! संघ की क्षति की स्थिति न आये। भगवान कहते हैं- "इन्द्र ! तुम्हारा तीर्थ प्रेम है, इसलिए तुम यह कह रहे हो। पर आयु जो बंधा हुआ है उसे बढ़ाने की क्षमता किसी में भी नहीं है। तीर्थंकर में चाहे जितनी भी क्षमता हो कितना भी सामर्थ्य हो, कहने को तो यहाँ तक कहा गया है कि लोक को गेंद बनाकर उछाले तो अलोक में कहाँ जाकर गिरे पता न लगे, पर आयु बढ़ाने की क्षमता तीर्थंकर में भी नहीं है। तीर्थंकर भी आयु न घटा सकते हैं, न बढ़ा सकते हैं। जो संबंध जुड़ा हुआ है वह सामने आने की स्थिति है।" भगवान इन्द्र को ऐसा उत्तर देकर तत्काल पर्यंकासन में आरूढ़ होते हैं। बादरकाय योग से बादर मन-वचन योग को रोकते हैं, फिर सूक्ष्म काय में स्थित हो बादरकाय को रोकते हैं। शरीर की हलन-चलन क्रिया को समाप्त कर योग को एवं सूक्ष्म योग मन, वचन को रोककर सूक्ष्म काया को भी रोकते हुए शुक्लध्यान के तीसरे भेद सूक्ष्म क्रिया प्रतिपात ध्यान को प्राप्त होते हैं। उसके पश्चात् वे अयोगी गुणस्थान को प्राप्त होते हैं। यही सर्व सवर की स्थिति है। वहाँ शेष कर्मों का क्षय करने के लिए शुक्लध्यान के चौथे भेद व्युत्परत क्रिया प्रतिपाति को करते हुए मात्र अ, इ, उ, ऋ, लृ इन पाँच लघु अक्षरो के उच्चारण करने जितने समय में सभी कर्मों को समाप्त कर एरंड के बीज के समान, बधन तोडकर

भगवान की आत्मा शिवपुर को प्राप्त हो जाती है। काया से आत्मा ऐसे जाती है जैसे बंदूक की गोली पूर्ण प्रयोग से जाती है। वैसे ही एक समय में ही सिद्ध-बुद्ध-मुक्त हो जाते हैं। परिनिर्वाण को प्राप्त कर सभी दुःखो का छेदन कर देते हैं। अब कभी भी उनके साथ कर्म/दुःख जुड़ नहीं सकते, यदि अनंत भग को प्राप्त कर लेते हैं।

यत् गत्वा न निवर्तन्ते तत् धाम परम मम्।

64 इन्द्र, देव आदि आये। उनके विमानों की जगमग से रात उजली बन गई। भगवान के निर्वाणोपरान्त छोटे कछुए भूमि पर छा गये। जो चले बिना नजर नही आये, इतने छोटे-छोटे। साधु-साध्वी भी बहुत से अनशन की स्थिति में आते है कि आने वाले समय मे पूर्ण अहिंसा की पालना दुष्कर है। कितना ही देखेंगे, भाव से विराधना नहीं चाहेंगे, पर विराधना बन जाया करेगी। भाव दीप के बुझने पर भूपतियों ने द्रव्य दीप का प्रसंग उपस्थित किया। तभी से यह दीपावली पर्व कहलाने लगा। केवलज्ञान का दीप बुझा तो ये दीप जलाकर मन की संतुष्टि करते है।

ऐसी बात भी आती है कि आज के दिन राम, रावण पर विजय पाकर अयोध्या लौटे थे। खुशियों में पटाखे छोड़े गये थे, दीपक जलाये गये थे। तभी से यह पर्व चला आ रहा है। चाहे भगवान के प्रसंग से पटाखे की अवस्था नहीं रही हो।

वाल्मीकि रामायण के अनुसार कहा है कि चैत्र मे राम ने रावण पर विजय प्राप्त की थी और वे बैशाख मे आये थे। स्वामी रामतीर्थ की आज के ही दिन जन्म, ज्ञान प्राप्ति व स्वर्गवास की स्थति बनी थी। बुद्ध को आज के दिन बोधि प्राप्त हुई थी। आप कहेंगे फिर ये लक्ष्मीजी बीच में कहाँ से आ गई ? लक्ष्मी के लिए मैने बताया था कि दुर्वासा ऋषि को क्रोध आया, तब उन्होंने लक्ष्मी को नष्ट कर दिया और जब समुद्र मंथन हुआ तो आज के दिन लक्ष्मी रूपी रत्न की प्राप्ति हुई थी। ऐसा वैदिक ग्रंथो मे बताया गया है। पुराण में बताया गया है कि कार्तिक अमावस्या के दिन काली एक हजार योगिनियो के साथ प्रकट होती है। अनेकों का मर्दन कर तीनो लोको को नष्ट करना चाहती है, तब शिव

प्रकट होते हैं। काली ने मदोन्मत्त रूप में शिव को भी नहीं छोड़ा। उनकी छाती पर चढ़ गईं, पर उनसे टकराने से ऑखो से दिख नही पाया और वह शिव में समाहित हो गई। काली बल का प्रतीक है, लक्ष्मी धन का और सरस्वती बुद्धि का। ये देवियॉ बताई गई है। बंगाल मे काली की विशेष उपासना करते है, क्योंकि उन्हें बल चाहिये। महाजन को बल नहीं, अर्थ चाहिये। पैसे है तो हाथ लंबे हैं।

अर्थ का बल मिला तो हाथ लंबे रहेगे। इसलिए महाजन लक्ष्मी पूजा करते हैं। बुद्धिमान व्यक्ति सरस्वती की आकांक्षा करते हैं। पर आप निश्चित मानिये कि भाग्य के दरवाजे से लक्ष्मी प्रवेश नहीं करतीं। लक्ष्मी प्रवेश करती है पुरुषार्थ के दरवाजे से। आप तो केवल आरती उतार लेंगे-

ओऽम् जय लक्ष्मी मैय्या....।

पर पूजा अर्चना से भारत का कोई व्यक्ति अमीर नही बन जायेगा। यदि भारत के व्यक्ति 6 घंटे के बजाय 18 घंटे परिश्रम करने लग जायें, 18 नहीं 16 घंटे भी परिश्रम करें, बुद्धि व शक्ति का उपयोग करें तो देखो भारत भूमि का कैसा रूप निखरता है। किन्तु हम यह करते कहाँ है ? पुरुषार्थ कर देश को उन्नत बनाने के लिए कितने व्यक्ति कार्यरत होते हैं ? हमें फुर्सत नही है। इसके लिए नेतागण तैयारी करे पर वे बेचारे तो पंगु है। उन्हे तो अटल कुर्सी चाहिये। लेकिन कुर्सी पर बैठने वाला तो हिलता-डुलता सक्रिय रहना चाहिये। मात्र कुर्सी से चिपके रहने से तो देश समृद्ध नहीं बनेगा, लक्ष्मी प्रकट नहीं होगी। प्रत्येक व्यक्ति यदि अपनी शक्ति को लगाएगा तो ही यह अभीप्सित स्थिति बन पायेगी-

मेरे देश की धरती सोना उगले
उगले हीरे मोती......।

इस धरती मे कितने ही खनिज रत्न भरे पड़े हैं, प्राप्त करने वाला चाहिये। तैयारी होगी तब तो कुछ कर पाएंगे, नही तो आरती उतारकर सोचते ही रहेंगे कि लक्ष्मी आ जाये। तब तो रीति-रिवाज का पालन मात्र ही कर पायेगे। काली बिल्ली आ जायेगी तो सोचेंगे कि

लक्ष्मीजी आ गईं। काली बिल्ली क्यों ? क्योंकि लक्ष्मीजी उजाला नही चाहती। पहले एक दिन अक्षयमुनिजी कह गये है- उनका वाहन है उल्लू। वह रोशनी देखकर भागेगा। वह तो वहीं जायेगा जहाँ अंधेरा होगा। धर्मस्थान मे अंधेरा देखकर उल्लू लक्ष्मी को धर्मस्थान मे ले आएगा। पर यहाँ प्रवेश करेगी तो श्रावकजी तो पौषध में होंगे और साधुजी को लक्ष्मी चाहिये नहीं। श्रावकजी के पौषध आने पर पौषध पालकर लक्ष्मीजी को भर-कर ले जायेंगे। अतः ध्यान रखिये, ऊपरी चमक-दमक रोशनी में नहीं, किन्तु जहाँ सत् की प्रतिष्ठा है वहाँ होगी। वहाँ ही लक्ष्मी प्रवेश करेगी। इसीलिये कहा है-

सत् मत छोड़ो ओ नरा, लक्ष्मी चौगुनी हो जाय........।

अतः जो नियम लिये हैं उन्हें दृढ़ता से अपनाईये, उनका पालन कीजिये। ये नहीं कि कहे पाँचवां आरा है और आपत्ति काले मर्यादा नास्ति। ऐसी प्रवृत्ति मत बनाइये। धर्म पर अटल रहना चाहिये। दृढ़ता रहती है तो लक्ष्मी आपके चरण चूमेगी। तब जिसकी पूजा की तैयारी कर रहे हैं भले उसे रौंदते चले जाएँ तो भी वह पीछा नहीं छोडेगी। चिन्तन-मनन करें- प्रभु-निर्वाण के प्रसंग से। उस महान् आत्मा ने पाथेय दिया है, जीवन उत्थान करने की बातें बताई हैं। उनके सिद्धान्तों को समझें और उन पर चिन्तन करें। यदि ऐसा कर सकें तो जीवन की कला प्राप्त कर राग-द्वेष से ऊपर उठकर वीतरागता प्राप्त करने की दिशा में बढ़ पायेंगे। वीतरागता कोई भी प्राप्त कर सकता है, बशर्ते राग-द्वेष की गलियों को छोड़कर दृढ़ता से धर्म साधना के राजमार्ग पर अग्रसर हो। दृढ़ता तो रॉकेट बनकर ऊँचाई पर भी ले जा सकती है। उसी से जीवन धन्य बन पाएगा। अतः व्रतों को स्वीकार करें। मन-वचन-काया-इन्द्रियो पर संयम रखकर आप रागी से वीतरागी बनें, यही भावना है।

26.10 2000

❖ ❖ ❖

5. अपुट्ठ बागरणा माहात्म्य

आज का प्रसंग सुविदित है। इस संप्रदाय की ये परम्परा रही है कि वीर निर्वाण के पश्चात् उत्तराध्ययन सूत्र का मूल रूप से वांचन किया जाता है। इसी उत्तराध्ययन की अर्थ रूप से प्रभु देशना देते हैं और जैसे ही ये पूर्ण होती है, प्रभु अपने अयोग अवस्था का रूप उपस्थित करने में लग जाते हैं। यहाँ वह अंतिम देशना थी, जिसे अपुट्ठ बागरणा भी कहा जाता है। अन्य शास्त्रों की प्रवृत्ति भिन्न रूप में हुई है कि गौतम ने पूछा और भगवान ने विवेचन किया। किन्तु इसके विषय में न तो प्रश्न पूछने की स्थिति रही, न ही जिज्ञासा प्रकट करने की। फिर भी समस्त शास्त्रों का निष्कर्ष निचोड़ भरकर ऐसी अपुट्ठ बागरणा प्रस्तुत की गई। इसमें द्रव्यानुयोग भी है, गणितानुयोग भी है, चरण-करणानुयोग भी है और धर्मकथानुयोग भी है। अनुयोग अर्थात् पूरे शास्त्रों को चार भागों में विभाजित किया गया है-

द्रव्यानुयोग- 6 द्रव्य, जीव-अजीव का विवेचन।

गणितानुयोग- सागरोपम, पल्योपम, जम्बूद्वीप, विमानों की लम्बाई, चौड़ाई आदि का विवेचन।

चरणकरणानुयोग- कैसा आचरण किया जाये, पाँच समिति, तीन गुप्ति और समाचारी का विवरण।

चरितानुयोग- जिसमें किसी चारित्र के माध्यम से उपदेश दिया गया हो। जैसे- नमिराजऋषि, ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती आदि के चरितानुयोग से सहज ही बोध प्राप्त हो सकता है। चरित को इनमें अत्यन्त सरल रूप मे प्रस्तुत किया गया है। नमि व शकेन्द्र का संवाद प्रमाणित करता है कि एक-एक महापुरुष कैसे विचारों से युक्त है। हरिकेशी श्वपाक-चाण्डाल कुल मे जन्मे थे। पहले सभी उनसे नफरत करते थे। कारण, उनमे क्रोध था, परन्तु जब वे साधना पथ पर चल पडे तो उच्च शिखर पर पहुँच

गये। देव सेवा में रहे, फिर भी मन में अहं या गौरव का भाव नही आया। तन्मय रहे। चित्त संभूत का प्रकरण तो स्पष्ट करता है कि साधना करके संसारी भोग-वासना के प्रति यदि आकर्षित हो तो विराधना करके सारी साधना का विक्रय कर देता है। इस तरह से साधना करने वाला अन्ततः दुःख पाता है। इक्षुकारीय अध्ययन में यह भी स्पष्ट किया गया है कि ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होने और वेद पढ़ने मात्र से कल्याण नही होता। वैदिको का तर्क है कि वेद पढ़े बिना मुक्ति नही। उसका उत्तर भृगु के पुत्र देते है। इस अध्ययन में आचरण संबंधी बहुत से गुण उपलब्ध होते हैं। संयतीय अध्ययन में मुनि कहते है- "राजन् ! मै अभय दे रहा हूँ, किन्तु तू भी दे अन्यथा अभय हो नहीं पाएगा।" मृगा-पुत्र कहता है- "मैने नरक में कैसे-कैसे दुःख देखे हैं।" अनाथीमुनि की अक्षिवेदना, पारिवारिक सदस्यों एवं अन्य जैनो की मनौतियों पर उनमें एक भाव जगा-

खंतो दन्तो निरारम्मो पव्वए अणगारियं

मैं क्षान्त, दान्त और निरारम्म अनगारता में प्रव्रजित हो जाऊँगा।

यहाँ तो कोई बीमार नहीं है। भावना भा लीजिये कि हम भी दौड़ने लगे तो संसार में नहीं रुकेंगे, साधु जीवन स्वीकार कर लेंगे। ऐसी भावना बनती है तो चमत्कार घटित हो जाते है। चमत्कार घटित हुआ, उनकी वेदना शांत हो गई। वे कहते हैं मै साधु जीवन स्वीकार करूँगा। मगध सम्राट उनके रूप-लावण्य पर मुग्ध हो गये। जहाँ एक तरफ भगवान के समवशरण मे कई साध्वियो ने उन्हे देख निदान कर लिया। हालांकि भगवान ने आलोचना, शद्धिकरण करवा दिया। तो सोचा जा सकता है कि मुनि का कैसा रूप रहा होगा। राजा ने कहा- "ये जवानी भोग के लिए है, योग के लिए नहीं।" उत्तर मिला- "राजन् ! मै अनाथ था।" पर आज भाई कहाँ जान पा रहे हैं। वे तो सनाथ है। कंपनी सरकार के सामने भले अनाथ बन जायें। बाकी तो मूंछों पर ताव देगे। राजा कहता है, मैं आपका नाथ बनूंगा। आप चले मेरे साथ। मुनि ने कहा- "तू स्वयं अनाथ है तो तूं क्या नाथ बनेगा ?" देखिये स्पष्टवादिता। सम्राट् ने कहा- "मैने सुना है मुनि असत्य भाषण नही करते। आपको

कहीं मृषा भाषा का दोष नही लग जाये। आप नहीं पहचाने हों तो बात अलग है।" मुनि ने उत्तर दिया- "तुमने वस्तुतः अनाथ-सनाथ का रूप नही पहचाना है।" उन्होने विषय को स्पष्ट किया और सुन्दर चित्रण द्वारा बताया कि साधु को जीवन में कैसे दृढ़ रहना चाहिये ? केशी-गौतम संवाद में बताया गया है कि वहाँ यह गौरव नहीं कि मैं दीक्षा पर्याय मे बड़ा हूँ। गौतम ने ये नहीं सोचा कि मैं क्यों मिलू। दोनो महापुरुष पहुँचे। प्रश्न का समाधान हुआ। समाधान होने पर केशी दीक्षा मे बड़े होते हुए भी छेदोपस्थापनीय चारित्र में आरूढ़ हुए। गौतम को नमस्कार किया-

साहु गोयम ! पन्ना ते छिन्नो में संसओ इमो।
नमो ते संसयाईय ! सव्व सुत्त महोयही॥

हे गौतम ! श्रेष्ठ है आपकी प्रज्ञा। आपने मेरा ये संशय भी दूर किया। हे संशयातीत ! हे सर्वश्रेष्ठ महोदधि ! आपको मेरा नमस्कार है। पद-प्रतिष्ठा का गौरव नहीं। समन्वय-समरसता का रूप प्रस्तुत किया। ऐसे ही अन्य अध्ययनो मे भी गंभीर आध्यात्मिक ज्ञान भरा हुआ है।

आपको चिन्तन करना है कि आज के दिन मात्र मूल पाठ का उच्चारण क्यो किया जाता है ? मन में यह विचार भी बने होगे कि जल्दी-जल्दी बोलने का क्या मतलब है। अर्थ तो समझ मे नहीं आता है। यह जिज्ञासा हो तो इसका समाधान पूज्य गुरुदेव आचार्य श्री नानालालजी म.सा. के इस दृष्टांत से हो जाता है। पूज्य गुरुदेव फरमाते थे- सर्प के काटने पर गारूड़ी को बुलाकर मंत्र उच्चारण करवाते है और जहर उतर जाता है। यही विशेषता तीर्थंकर देवो की वाणी की है। वह वाणी मत्र है। वह विषय-वासना का जहर उतारने वाली है। निरन्तर स्वाध्याय कर अर्थ करे तो गाथा का अर्थ भी ज्ञात हो जाता है। जैसे- गारूड़ी मंत्र से विष उतरता है, वैसा ही यहाँ प्रसग है। आवश्यकता है, श्रद्धा भाव से श्रवण करे। श्रद्धा से श्रवण करे तो आत्मशुद्धि का प्रसंग बनता है। अशुद्धि का विष-लेप उतरता है।

हम चिन्तन-मनन करे। प्रभु की तो आलोकित ज्योति थी, शरीर से भले बिछोह हो गया, पर तीर्थंकर की वाणी के माध्यम से हम उन तक पहुँच सकते हैं। यह सशक्त माध्यम है उन तक पहॅचने का। हम

चाहें तो प्रभु महावीर को पुनः चर्मचक्षु से नहीं, अंतरचक्षु से प्रत्यक्ष कर सकते हैं। जैसे गौतम स्वामी ने प्रत्यक्ष किया था। वे देव शर्मा के यहाँ पहुँचे, पर अध्यवसाय की निर्मलता से महावीर से गौतम दूर नहीं हुए, न गौतम से महावीर दूर हुए। यही अवस्था हमें प्राप्त करनी है। सुधर्मास्वामी को आचार्य बनाया गया। वह प्रतिपदा कल का दिवस है। कल आचार्य सुधर्मा का आचार्य-पद दिवस है। वह भी जानने का विषय है। भाई दूज से नंदीवर्धन का प्रसंग संबंधित है। फिर तीज के बाद चौथ को आचार्य पूज्य जवाहरलालजी म.सा. की जन्म जयन्ती का प्रसंग जुड़ जाता है। 126वीं जन्म जयंती का जैसा कि बोल रहे हैं। उसके बाद ज्ञान पंचमी आयेगी। यदि देखें तो धनतेरस से लेकर आठ दिनो के पर्युषण की तरह इन दिनों में शास्त्र सुनकर जीवन को निर्मल बनाने का प्रसंग बनता है। उत्तराध्ययन सूत्र के वाचन से इसे जोड़कर देखिये। आप लोगों को उसके माध्यम से मोक्ष-सूत्र के वाचन से जोड़ा जाता है। अपने जीवन को सार्थक करने के लिये, कर्मों के क्षय के लिये तथा सुयोगों के संयोगों से जुड़ने के लिये, शास्त्र श्रवण की परम्परा को सार्थक करें।

27.10.2000

❖ ❖ ❖

6. आद्याचार्य का अनुपम प्रदेय

आचार्य सुधर्मा पद महोत्सव

शांति जिन एक मुझ विनति।

शांति प्राप्त करने का अभिलाषी मनुष्य अनादिकाल से रहा है। लगातार अशांति के झूले में झूलते रहने के बाद भी उसकी शांति प्राप्ति की कामना कभी धूमिल नही हुई है। मनुष्य को अशांति से राहत दिलाने के लिये ही प्रभु महावीर ने केवलज्ञान और केवलदर्शन की प्राप्ति के बाद साधु-साध्वी तथा श्रावक-श्राविका के चार तीर्थों की स्थापना भी की। ताकि अशांति से उबरने के लिये शान्ति के मार्ग पर चलता हुआ साधक यदि कभी डाँवाडोल मनःस्थिति का शिकार बने तो उसको सहारा मिल सके। साधना व्यक्तिगत भी होती है और समष्टिगत भी। अपनी साधना व्यक्ति कहीं भी कर सकता है, किन्तु साधना का परीक्षण अकेले में तब तक हो नहीं पाता, जब तक दूसरी परिस्थिति सामने न आ जाये। संघ में व्यक्ति साधना भी करता है तथा परीक्षण की स्थिति भी उपस्थित पाता है, क्योंकि तब वह सामुदायिक अवस्था मे रहता है, जिसमे अनेक उतार-चढाव भी सामने आते हैं। कभी निन्दा, तो कभी स्तुति की स्थिति सामने आती है। तब यह अपेक्षित होता है कि साधक निन्दा में गमगीन न हो और स्तुतिपरक शब्द सुनकर मन मे गौरवान्वित न हो। यदि निन्दा सुनकर खिन्नता और स्तुति सुनकर गौरव की अनुभूति होती है तो वह साधक जान सकता है कि अभी उसकी साधना में कितनी न्यूनता है। जो अकेले में साधना करने वाला है, कैसे जान सकता है कि कौन स्तुति कर रहा है और कौन निन्दा कर रहा है। जो विशिष्ट प्रतिज्ञा लेकर चलते है उनका कहीं कोई संबंध नही होता। उन्हे निन्दा स्तुति से कोई अन्तर नही पड़ता। वे हर जगह साधना मे निमग्न रहते है। पर हर एक व्यक्ति वैसी साधना कर नही सकता। संघ मे रहते

हुए आबाल-वृद्ध साधना कर सकते हैं। वहाँ बालक का भी प्रवेश है, वृद्ध का भी। वहाँ सभी शांति का अनुभव कर सकते हैं।

प्रमोदमुनिजी म.सा. पंजाब संप्रदाय में दीक्षित हुए थे। 50 वर्ष तक संयम पाला। जब 70 वर्ष की अवस्था हुई तब शरीर स्थूल होने से कठिनाई आने लगी। सेवा करने वाला कोई रहा नहीं। सम्यक् सेवा हो नहीं पा रही थी। एक शिष्य भी बनाया पर वह टिका नहीं, चला गया। काफी परेशानी होने लगी। उनके भाई बहुत बड़े चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट थे। उन्हें ज्ञात हुआ तो वे पहुँचे। उनकी स्थिति देख, गाड़ी मे बिठाकर घर ले आये। कहा- घर में रहिये, हम सेवा करेंगे। भोजन की थाली-कटोरी सामने आई। वे कहने लगे- क्या थाली में भोजन करूँगा ? 50 वर्ष पातरों में भोजन किया है, अब थाली-कटोरी में भोजन कर नहीं सकता।" भाई ने कहा- "वहाँ कोई सेवा करने वाला नहीं है और मैं साधु बन नहीं सकता।" वे जिनका पहले नाम प्रकाशमुनि था, कहने लगे- "मै ऐसी अवस्था में रह नहीं सकता।" वकील साहब धर्मपालजी ने इधर-उधर दृष्टि दौड़ाई। आचार्यदेव के पास पहुँचे। कहा- "मैंने आपके संघ की व्यवस्था देखी है। मेरे भाई की ऐसी स्थिति है। वे संयम पालन करना चाहते हैं। उनसे सेवा नहीं होगी, बल्कि उनकी सेवा करनी पड़ेगी।" आचार्यदेव ने कहा- "उनसे बातचीत करने पर ज्ञात होगा।" वे भाई को लेकर पहुँचे। उनकी भावना देखी। आचार्यदेव ने कहा- "मेरे साथ रहें तब तक तो मैं संभाल लूं, पर इनकी विहार की स्थिति नहीं है। इधर बीकानेर में मेरे गुरुभ्राता कर्मठ सेवाभावी श्री इन्द्रचन्दजी म सा. है। वहाँ कुछ समय रखिये। अभी संत सेवा कर नही पाएंगे। अभी तो आप सभाले, पर इन्द्रचन्दजी म.सा. इनकी वृत्ति जान लेगे और यदि इनका संयम के प्रति अनुराग है तो विचार किया जा सकेगा।"

कर्मठ सेवाभावी श्री इन्द्रचन्दजी म सा अनोखे सेवाभावी थे। बालमुनि हो, वृद्ध हो, जवान हो, अध्ययन करने वाले हों, सबकी सेवा मे उन्हे आनद आता था। वे कहते थे- जो भी वृद्ध हो, मेरे पास छोड़ दीजिये, मैं सबको सभाल लूंगा और वस्तुतः अनेक वृद्ध संतो को संभालने का दायित्व उन्होने उत्साह और लगन से पूरा किया। मेरे ख्याल

से साधुमार्गी संघ में और दूसरे संघों में भी कर्मठ सेवाभावी श्री इन्द्रचन्दजी म.सा. को नहीं जानने वाले बहुत कम होंगे। उनके साथ वे कुछ समय रहे। फिर जब आचार्यदेव भीनासर पधारे तब वे बहुत मुश्किल से वहाँ पहुँचे और तब नई दीक्षा देकर उन्हें संघ में सम्मिलित किया गया। ऐसा कार्य संघ में ही हो सकता है। जब ऐसी अवस्था आ जाये और व्यक्ति कुछ कर सकने की स्थिति में न हो, ऐसे समय में सेवा और सहायता की आवश्यकता होती है और वह समष्टि में ही संभव है। भगवान ने चार तीर्थों की स्थापना की है। जो समष्टि रूप है। प्रत्येक साधक संघ में रहकर आनंदपूर्वक साधना कर सकता है।

जब तक स्वयं भगवान थे तब तक ग्यारह गणधरों के माध्यम से चतुर्विध संघ की सारणा-वारणा-धारणा होती रही। जब प्रभु ने देखा कि उनके प्रस्थान का समय नजदीक आ रहा है, तब चतुर्विध संघ की बागडोर उन्होने समर्थ हाथों में सौंपने का निर्णय लिया। उसके लिए उन्होंने गणधर गौतम का नहीं, आर्य सुधर्मा का चयन किया। उस चयन से एक बात और स्पष्ट होती है, वह यह कि उस समय राजाओं का राज्य था और राजाओं के स्तर पर परम्परा इस प्रकार बनी हुई थी कि राजा का बड़ा पुत्र ही राजा के बाद राजा बन सकता था। भगवान महावीर ने इस परम्परा में यह संशोधन किया कि कोई आवश्यक नहीं कि राजा का बेटा ही या बड़ा बेटा ही उत्तराधिकारी हो। इसी प्रकार गुरु का बड़ा शिष्य ही उत्तराधिकारी बने यह आवश्यक नहीं। गुणकर्म के धरातल पर उन्होने नई व्यवस्था दी। गणधर गौतम उस समय केवली नही हुए थे। उनके रहते हुए भी आर्य सुधर्मा को पद पर नियुक्त किया गया। ऐसा उल्लेख ऐतिहासिक विवरणों से प्राप्त होता है कि भगवान महावीर ने अपनी उपस्थिति में सुधर्मा स्वामी को गणाधिप/तीर्थाधिप/गण संघ के राजा आचार्य के रूप मे नियुक्त किया। गणधर सत्तरी मे यह उल्लेख मिलता है-

मज्झिमाए वीरेण सुहम्मो तित्थाहिवो संठविओ

मध्यम पावा के अन्तर्गत भगवान महावीर ने अग्निवेश्यायन

सुधर्मा को चतुर्विध संघ के आचार्य के रूप में, नेता के रूप में, आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया।

इसके अतिरिक्त वीर वंश पदावली मे भी उल्लेख मिलता है-

भवियजणेपडिबोहिय, बावत्तरि पालिऊण वारिखाइं,
सोहम्म गणहरस्स य पटटं दाउं सिवं पत्तो।।

भगवान महावीर ने भव्यजनो को प्रतिबोध देकर 72 वर्ष की आयु पालकर सुधर्मा को अपने पाट पर प्रतिष्ठित कर सिद्धि प्राप्त की।

यदि किसी की जिज्ञासा हो कि क्या भगवान महावीर ने स्वय उन्हें आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया था या बाद में संघ ने उन्हें वह पद दिया ? परन्तु इन ऐतिहासिक तथ्यो में स्पष्ट कहा गया है कि भगवान महावीर ने अपनी उपस्थिति में ही सुधर्मा स्वामी को आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया। तीर्थंकरों के समय मे ही गणधरों की व्यवस्था होती है। कभी कोई यह भी कहते हैं कि गणधर को ही आचार्य नहीं माना जाये। यदि गणधर ही आचार्य होते तो फिर भगवान महावीर को सुधर्मा को गणाधिप पद पर प्रतिष्ठित करने की कहाँ आवश्यकता रहती ? इससे स्पष्ट होता है कि गणधर आचार्य नही होते, किन्तु तीर्थंकरों के समय में गण की सार-संभाल करने वाले होते है। इसलिए उन्हें गणधर कहा जाता है। आचार्य सघ के स्वामी के रूप में होते हैं। इसलिए भगवान महावीर ने आर्य सुधर्मा को अपनी उपस्थिति में आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया। वह आचार्य पद की क्रियान्विति प्रभु निर्वाण के पश्चात् प्रतिपदा को होती है।

इस बार थोड़ा-सा अंतर पड़ गया, चतुदर्शी-अमावस्या का, इसलिए कल सूत्र वांचन हुआ, जबकि प्रतिपदा को ही वह वाचन होता है। तब उसी दिन आचार्य सुधर्मा के पद की बात कही जाती है। किन्तु इस बार हमे सहज ही अलग-अलग दिन मिल गये हैं, इसलिए विस्तार से उस प्रसंग का कथन करने में कुछ सुविधा बन गई। अस्तु, ये आचार्य परम्परा उनके समय से ही चलती रही है।

आचार्य सुधर्मा स्वामी का चतुर्विध संघ पर परम उपकार है।

उन्हीं के आधार पर हमे आज वीतराग वाणी शास्त्र रूप में उपलब्ध है। उन्होंने ही आर्य जम्बूस्वामी को उसकी वांचना दी थी। आर्य जम्बू ने वही वांचना अपने शिष्यों को दी। इस प्रकार यथाक्रम से वांचना चलती आ रही है और इसीलिये आज भी वे आगम सुरक्षित हैं और हमें साधना के लिए प्रेरणा देने वाले बने है। हम उनसे प्रेरणा ले सकते हैं।

इस संदर्भ में कुछ लोग जिज्ञासा प्रकट कर रहे हैं कि गणधर गौतम को आचार्य क्यों नहीं बनाया, जब जगह-जगह गौतम का नाम आ रहा है ? इसका समाधान यह है कि पृच्छा उन्होंने की, इसलिए नाम उनका आया वे प्रधानता से रहे इसलिए उनकी पृच्छा रही। फिर प्रभु महावीर के ज्ञान के सामने हमारे ज्ञान की कोई महत्ता नहीं है। हम अपने ज्ञान/क्षयोपशम के आधार पर ही विचार कर सकते हैं। एक अन्य बात यह थी कि गणधर गौतम को उसी रात को केवलज्ञान होने वाला था। दूसरी बात यह भी है कि भगवान महावीर परम्परा पुरुष नहीं थे, वे क्रांति पुरुष थे। जहाँ उन्होने आवश्यकता समझी, वहाँ परम्परा का निर्वहन भी किया, किन्तु अनावश्यक परम्परा का बोझ ढोकर वे नहीं चले। उस समय की कई परम्पराओं पर उन्होंने अपने उपदेशो से प्रहार किया। तो इसे भी इस परम्परा पर प्रहार मानें कि राजा का बड़ा बेटा ही उसका उत्तराधिकारी होता है और वही अगला राजा बनता है। उन्होने स्थापित किया कि राजा का बड़ा बेटा ही राजा नही बनता, बल्कि गुण-कर्म के आधार पर बड़े पुत्र के बदले किसी अपरिचित को भी गद्दी पर बिठाया जा सकता है।

उस समय दास के हाथ का ग्रहण करना भी वर्जित था। दास परम्परा की एक जटिल प्रथा थी। राजाओं में युद्ध होते थे। धन-माल-जन सबकुछ समेट लिया जाता था। व्यक्ति को बंदी बनाकर दूसरे स्थान पर बेच दिया जाता था। बंधुआ मजदूर से भी उनकी हालत बदतर हो जाती थी। बिकने वाले के माथे पर घास का पुला रखकर उसका विक्रय किया जाता था, फिर जो उसे खरीद कर ले जाता था, वह उसके साथ चाहे जैसा सलूक कर सकता था। दास को बोलने का कोई अधिकार नही था। भगवान महावीर ने इस प्रथा पर भी कडा प्रहार किया।

उस समय एक अन्य मान्यता यह भी प्रचलित थी कि शुद्र व स्त्री, धर्म के अधिकारी नहीं होते। जैसे- शूद्र को धर्म ग्रंथ पढ़ने व धर्म करने का अधिकार नहीं था। वैसे ही स्त्रियों को भी नहीं था। किन्तु भगवान महावीर ने चंदना के हाथ से, जो एक प्रकार से दासी थी और स्त्री भी थी, भिक्षा ग्रहणकर, बड़े-बड़े धार्मिक लोगों के अहकार पर चोट की थी। मानवीय मूल्यों की रक्षा की ऐसी एक नहीं बहुत-सी शिक्षाएँ भगवान महावीर के जीवन व दर्शन में हम सहज ही प्राप्त कर सकते हैं।

आर्य सुधर्मा स्वामी गण को संभालते थे और संभालते हुए भी उन्होंने एक साथ 527 जनों को दीक्षा दी। आज लोग कहते हैं- इतिहास बनाओ। अरे ! क्या इतिहास बनाओगे ! ऐसा कहने वाले इतिहास नहीं जानते। कितनी सीधी-सी समझने की बात है कि चलते जाईये पगडंडी अपने आप बन जाएगी, बनाने की आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी। रॉकेट चलता है तो धुएँ की लकीर स्वतः बनती चली जाती है, बनानी नही पड़ती। धुएँ से कैसे बनी ? वहाँ जो ईंधन जला, जलने से वह लकीर बनी। वैसे ही हमारा आचरण ऐसी रेखा बना देता है, जो इतिहास बन जाता है। इसीलिये कहा जाता है-

महाजनो येन गता स पन्था।

महाजन जिस मार्ग पर चले वह मार्ग बन जाता है और लोग उस पर चलने के लिए कटिबद्ध हो जाते हैं।

जम्बू स्वामी ने सुधर्मा स्वामी के चरणो में बैठकर उपदेश सुना और भावना ऐसी प्रबल बनी कि कहा- "मैं माता-पिता से अनुमति लेकर पहुँच रहा हूँ।" लौट रहे थे, जल्दी मे। कहते है इधर सेना का प्रशिक्षण चल रहा था। अलग-अलग कथाओ में अलग-अलग बाते हो सकती है। कही कहते है द्वार का बुर्ज गिरा, कही कहते हैं कि गोला पैरो के बीच से निकला। किन्तु ऐसा प्रसंग बन गया। ऐसे प्रसग से विचारो को झटका लगा। विचार आया कि अभी प्राण संकट मे पड जाते और मै साधना मार्ग प्राप्त कर नही पाता। कथा में बताया गया है कि

वे वहीं से लौट गये। आर्य सुधर्मा स्वामी से निवेदन किया- मुझे जीवनपर्यन्त श्रावक के बारह व्रत की प्रतिज्ञा करवा दीजिये।" जब पुनः पहुँचे तब बहुत कुछ चर्चा हुई। लावणी मे आप गाते हैं-

इजाजत दे माता, लेसूं संयम भार
इस्यों कांई दुःख लाग्यो, जम्बू राजकुमार।

आज की बात नहीं है, ये बाते बहुत पुरानी हैं। कौन-सी बातें ? यही बातें कि साधु कुण बने, दुःखी होवे वह संयम लेवे। ये बात पुरानी है।

अरे भाई ! जम्बू के जीवन में ऐसा क्या दुःख आ गया था ? क्या खाने के लाले पड़ गये थे ? धन-सम्पत्ति की कमी नहीं थी। पिता का लंबा-चौड़ा व्यापार था। उनसे कहा गया- "अभी तो तुम्हारे व्यापार करने का प्रसंग भी उपस्थित नहीं हुआ है और कौनसे तुम्हारे पिता के 5-10 बेटे हैं ? एक तू ही तो है। ये इतनी सम्पत्ति किसके काम आएगी ? लोग इसके लिए रोते है। हमने कमाया है तो खाने वाला भी तो होना चाहिये।" पर कई ऐसे होते हैं जो कहते हैं कि सम्पत्ति तो विनिमय का साधन है। इसका जितना उपयोग विनिमय में होगा वही इसकी सार्थकता होगी। ऐसी ही संपत्ति वस्तुतः संपत्ति होती है। पड़ी हुई सम्पत्ति विपत्ति पैदा करने वाली होती है।

जम्बू का दृढ़ उत्तर था- "मातेश्वरी यह कोई जरूरी नही कि जो दुखी होता है, वही साधु बनता है और यदि दूसरी दृष्टि से देखें तो दुनिया मे कोई ऐसा व्यक्ति नही है, जिसके जीवन में कोई दुःख नहीं हो। भगवती सूत्र मे कहा गया है-

दुक्खेण वा भंत केण कडे

किसने दुःख किया ? दुःख को यहाँ कर्म की भाषा मे लिय है। कर्म चाहे साता वेदनीय हो या असाता वेदनीय, उसे दुःख का कारण बताया गया है। वेदनीय का स्वरूप कैसा है ? शहद लिपटी तलवार के जैसा। ऐसी तलवार को यदि जीभ पर लगाये तो कैसा लगता है ? मीठा-मीठा स्वाद लगता है। पर कितनी देर ? फिर तलवार का तीखापन

लगे तो क्या होता है ? जीभ कट जाती है। साता वेदनीय का स्वरूप है कि जो थोडी देर साता फिर मशगूल हो गये तो जैसे तलवार से जीभ कटने की स्थिति पैदा हो जाती है, वैसे ही जीवन मे दर्द भी पैदा होने वाला है। इसलिए भगवान ने कर्म मात्र को दुःख की संज्ञा दी है और संसार मे रहने वाले कर्म से स्वतः ही जुड़ जाते हैं, मुक्त नहीं रह पाते। इसलिए जम्बू कहते हैं- ''माता ! एक दृष्टि से विचार करें तो मैं इतना दुःखी हूँ कि जिसकी तुलना नहीं की जा सकती।'' मृगा पुत्र ने क्या बताया- ''माता मुझे वे बाते नजर आ रही हैं जैसे बहिने साग-तरकारी सुधारती है तो उनके टुकड़े-टुकड़े करती है। वैसे ही नरक में परमाधर्मी देव शरीर के टुकडे-टुकड़े करते हैं। जैसे कपडों को धोने के लिए धोबी पत्थर पर उन्हें पछीटता है। वैसे ही परमाधर्मी देव नैरयिक के पाँवो को पकड़कर शिलाओं पर पटकते हैं। तेल के कढाह में जैसे पकौडे तले जाते है, वैसे ही उन्हे तला जाता है।'' मृगापुत्र को तला, हमें थोड़ी तला ? हम तो स्वर्ग की यात्रा करते रहे। हमने ऐसे कौनसे कार्य किये है, जो हमें नरक में जाना पडेगा। पर भूलना मत भगवान ने यह बात भी कही है कि ससार मे रहने वाली ऐसी कोई आत्मा नही है, जिसने नरक गति के दुःखों का भोग नहीं किया हो और जिसने छठा आरा और निगोद मे दुःख नहीं देखा हो। कैसी-कैसी योनियों में भ्रमण किया है इन आत्माओं ने ? ऊँची-ऊँची हवेलियाँ बनाकर मन में गौरव का अनुभव करे तो उनसे कहा जाता है- ''ऊपर क्या मिलेगा ? उन विमानो में रहकर आये हो जो रत्नों के बने हुए है ?'' जयपुर के मकान किसके बने है ? ईंट, पत्थर, चूने से। क्या ऐसे मकान भी है जो सोने की ईंटों से बने हों और जिनमें रत्न जड़े हुए हो ?

कहते है- शालिभद्र का मकान वैसा था। देखने वाले मानते थे कि हम स्वर्ग मे आ गये है। पर इस संपत्ति को देख गौरव किया तो ज्ञानी कहते है ऊपर देख ले। सूर्य, चन्द्र, तारे तो देख ही रहे हो। इन विमानों में भी गये हो। क्या काम आये वे विमान। वे तो शाश्वत हैं, पर हम घूमते रह गये। कई बार इन विमानो में गये और इन बनाई गई हवेलियों में कितनी बार निवास होगा ? मुश्किल है, क्योंकि शरीर का काल सीमित है। ये हवेलियाँ रह जायेगी। पता नहीं कहाँ जन्म हो। कई बार कहा जाता है- धन-जन से ममत्व रहा तो कुतिया बनकर आ

जायेंगे। उस प्रकार आत्मा आ जाये तो बात अलग है। पर उसे यह बोध नही होगा कि इसी हवेली से रवाना हुए थे और इसी में आ गये। पर देवलोक को देखकर बोध हो सकता है कि पहले यहाँ रहकर गया हूँ। इसीलिये कहते हैं- ये चार दिन की चमक चाँदनी, फिर अंधेरी रात। जैसे ही आँख बंद हो जायेगी, कुछ नजर नही आएगा। जम्बू कहते है- ''माता ! स्वर्ग में गया या नरक में, दुःख हर जगह रहा। नरक की याद से दुःख हुआ। देवलोक मे गया, वहाँ से च्यवन का समय आ गया तो मन मे बहुत दुःख हुआ कि हाय ! ऐसा विमान छोड़कर जाना पड़ेगा। इसलिए दुःखी हो गया। मैने दुःख का बहुत वेदन किया है। यदि यहाँ भी ऐशो-आराम में लगा रहा तो आने वाला समय दुःखदायी होगा।

बंधुओं ! प्रेरणा हर समय मिलती है, पर हम नहीं लेते हैं, आँखें बंद कर लेते हैं। प्रतिदिन सूर्योदय होता है, फिर काली रात भी आती है। वैसे ही कहा है- चमक चाँदनी मे उलझे हो काली रात भी बितानी पड़ेगी। यहाँ प्रकाश में हो, किन्तु फिर नरक मे गये तो नरक-निगोद में काली रात है। किन्तु कभी-कभी हम कहते हैं- शुक्ल पक्ष भी होता है। जैसे- चाँदनी रात में चाँदनी रहती है, वह बताती है शुभ कर्म करें तो आने वाली जिन्दगी भी कैसी होगी ? ये बातें रोजमर्रा की हैं। जैसे इन्हें देखते हो वैसे ही शुक्ल पक्ष में चाँदनी है। पर ये नही जानते हैं कि पाँचम-छठ की चाँदनी कब तक ? जैसे पाँच-छः घंटे की चाँदनी, फिर अधेरी। वैसे ही जब तक पुण्यप्रभा है तब तक प्रकाश, फिर अंधेरी। वैसे ही कहें कि दिन तो सूर्य की तरह तेजस्वी होता है, पर जैसे ही अस्त हो तो पूर्णिमा का चंद्र प्रकट हो जाये कि वहाँ भी प्रकाश रहे, जिन्दगी मे अंधेरा आये ही नहीं। यदि ऐसा साधना का पुरुषार्थ कर लें तो ऐसी स्थिति भी बन सकती है।

जम्बू कहते हैं- मैने बहुत दुःख देखे है और कुछ नहीं है तो-

जम्म दुक्खं जरा दुक्खे, रोगाणि मरणाणिद...।

इनसे कोई मुक्त कर नहीं सकता। जन्म दुःख हुआ है, बुढापा भी आएगा। शरीर है तो बीमारी भी आएगी। जब पाँवों में दर्द होगा, तब बड़ी कठिनाई से डंडा लेकर चलना पड़ेगा। ये औदारिक शरीर की परिणति है। जम्बू कहते है- ''माता । ये शरीर की प्रक्रियाएँ हैं जो देखते

ही देखते आ जाती हैं। लगता ही नही कैसे आ जाती है ? हमें भी लगता है कि जयपुर में कल ही तो प्रवेश किया था और इतना समय निकल गया ? पौने चार महीने बीत गये और पता ही नहीं चला। ऐसे ही जिन्दगी बीतती है, पर पता ही नहीं लगता है। जवानी के जोश में गुलछर्रे उडाते रहते हैं और समय बहुत जल्दी निकल जाता है। फिर जब वृद्धावस्था आ जाती है, तब समझ में आता है कि वैसे ही खो दी। औदारिक शरीर को ऐसी परिणति होने वाली है। तुम पूछती हो कि क्या दु:ख आ गया ? इसलिए समय रहते धर्म आराधना कर लेनी चाहिये, समय का सदुपयोग कर लेना चाहिये। अभी नहीं किया तो-

परिजूरइ ते सरीरयं, केसा पंडुरया हवंतिते।
से सोयबले य घयई, समयं गोयम मा पमायए॥

कान का, ऑख का एव सभी इन्द्रियो व शरीर का बल समाप्त हो जाएगा। फिर कहोगे ओहोऽऽ ! क्या ही अच्छा होता, दीक्षा ले लेता। अब कब क्या हो ?

अब पछताये क्या होत, जब चिड़िया चुग गई खेत।
फिर पश्चात्ताप के अलावा कुछ रह नहीं जायेगा।

जम्बू व माता का संवाद लम्बा है। बहुत से भाई जानते भी होंगे। बहुत से नवयुवक न भी जानते होंगे।

माता-पिता का बहुत आग्रह रहा कि एक बार शादी तो कर ले। 8-8 कन्याओं के साथ विवाह किया, एक-एक प्रत्येक देवलोक की अप्सरा के तुल्य। ये नही कि काली-कलूटी, लूली-लंगड़ी से कि कुंवारापना उतार दे। ऐसा भी होता है। लोगो के दिमाग में क्या-क्या बाते घर की हुई होती है। यह भृगु पुरोहित व उनके पुत्रो के सवाद से जाना जा सकता है। भृगु ने पुत्रो से कहा कि यदि शादी न हो, पुत्र न हो तो मुक्ति नही हो पाएगी। जम्बू की माता-पिता का भी आग्रह था तो मौन रह गये। शादी हो गई। हवेली की सातवीं मंजिल पर बैठे है। वे रमणियाँ तर्क दे रही है और जम्बू उन्हे ऐसे तर्क देते है कि वे निरुतर हो जाती है और वे पतिव्रत धर्म का पालन करती हुई कहती है कि जो आपकी मर्जी है, वही हमारी मर्जी है। वही पर प्रभव भी था, जो 500 चोरो के साथ आया हुआ था। उसके पास अस्वपीति विद्या थी, जिसके बल पर

वह लोगों को सफला देता था। उसने विद्या प्रयोग से सभी को सफला दिया, पर जम्बू पर विद्या का प्रभाव नहीं हुआ। वे जागृत थे। जम्बू के इस चिन्तन से कि "धन आज की रात्रि न जाये तो अच्छा" चोरों के पैर चिपक गये। प्रभव विचार में पड़ गया कि मेरे भाईयों के पैर किसने चिपका दिये ? लगता है कोई जरूर मंत्र जानता है। वह खोज करता हुआ जम्बू के पास पहुँचा। उसने कहा- "आप जो पैर चिपकाने की विद्या जानते हैं, वह मैं भी सीखना चाहता हूँ। जंबू ने कहा- "मैं ऐसी कोई विद्या नहीं जानता। न ही चिपकाना चाहता हूँ। मैं तो उन्हें भी गति देना चाहता हूँ।

पैर चिपकाना क्या होता है, आप जानते हैं ? यह पैर चिपकना ही मोह-माया है, जिससे हमारा छूटना आवश्यक है। आप इस गूढ़ अर्थ को समझें। अभी तो हालत यह है कि कहीं खबर मिल जाये कि दो दिनों की छूट है, जो चाहे जितना चाहे ले जाये तो पता नही कितनी धक्का-मुक्की और मारपीट होगी। ये पुद्गलों के प्रति आसक्ति है, वह चिपकाने वाली है।

प्रभव जम्बू के पास पहुँचा। जम्बू के एक उपदेश ने प्रभव को अंदर तक हिला दिया। प्रभव सहित पाँच सौ चौरो ने श्लेष्म की तरह सब छोड़ दिया। जम्बू के साथ ही दीक्षित होने को तैयार हो गये। माता-पिता, सास-ससुर, आठ रमणियो व पाँच सौ चोरों सहित वे पहुँचे सुधर्मा स्वामी के पास। निवेदन किया- "प्रभो ! संसार में आग झुलसा रही है। हमारी आत्मा विषय-वासना-कषाय मे झुलस रही है। आप ही एकमात्र रक्षक हैं, आप ही एकमात्र आश्रय है, जो हमारी जलती हुई आत्मा को शात-प्रशांत कर सकते है। इसलिए भते ! हमे शरण दीजिये। सुधर्मा स्वामी ने उन्हे दीक्षित किया। कालान्तर मे जंबू आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए और 64 वर्ष पश्चात् मुक्ति में गये।

जम्बू स्वामी अंतिम केवली रहे। उनके पश्चात् पंचम आरे का जन्मा हुआ भक्ति मोक्ष की योग्यता हासिल कर नही पाता है। मोक्ष मार्ग बंद हो गया है ये मै नही कहता। मोक्ष तो भरत से पाँचवे आरे में जाने मे बाधा नही है। महाविदेह से कोई देव किसी संत को द्वेषवश लाकर यहाँ रख दे तो वह मोक्ष चला जाएगा। पर यहाँ का जन्मा इतनी योग्यता

हासिल नही कर पाता। इसलिए हमे मुक्ति प्राप्त नही होती और हम कह देते हैं कि जंबू ताला जड़ गये, पर चाबी किसे सौंप गये ? क्या वे वापस आयेगे, वे न आये तो फिर ताला कैसे खुलेगा और मोक्ष मे जायेंगे कैसे ? पर ये कवियों की अलंकारिक कल्पना है। कही ताला नही लगा है, पर हमारी साधना वैसी बन नहीं पाती है, जो हमें मोक्ष का अधिकारी बना सके। परन्तु जम्बू शास्त्रों की जितनी प्रवृत्ति हुई उसमें उद्‌बोधन करने वाले के रूप में सुधर्मा स्वामी और ग्रहण करने वाले के रूप मे जम्बू हैं। यदि ग्रहण करने वाला नहीं होता तो भी ये शास्त्र नहीं मिलते, क्योंकि लेने वाला न हो फिर कितनी भी थप्पियाँ लगा दें, कितना ही प्रचार कर दें कि माल ले जाओ, जितना ले जाना चाहो, ले जाओ, तो भी कौन ले जायेगा ? सुधर्मा स्वामी के पास अगाध ज्ञान था, पर लेने वाला जम्बू जैसा मौजूद नही होता तो वह ज्ञान प्राप्त होना कठिन होता। क्योंकि प्राप्त कौन करता ? सत्य तो यह है कि पाँचवें आरे पर इन दोनों विभूतियों का यह परम उपकार है कि सुधर्मा स्वामी ने खुले दिल से दिया और जम्बू ने भी पूरा का पूरा जितना परोसा गया, हृदयंगम कर लिया। कितना सामर्थ्य जम्बू मे था कि वे सारे को हासिल कर आत्मसात् कर पाये। भद्रबाहु स्वामी तक चौदह पूर्वों का ज्ञान रहा। उसके बाद ज्ञान, धीरे-धीरे सीमित होता गया और हमारे सामने जो ज्ञान बचा है, वह भी कम नही है। आज हमारे पास समग्र ज्ञान नही है, फिर भी चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि आज भी जितना पाथेय है उससे भी हम बहुत कुछ कर सकते है। हम सोचें कि पूरे शास्त्र हैं नही, चाहें तो भी क्या कर पाएंगे तो यह हमारी नादानी होगी। विचार तो आगे का करना चाहिये, जब पाँचवें आरे के अंत मे एक भवातारी होंगे। उस समय दशवैकालिक के केवल चार अध्ययन रह जायेंगे, तो आज तो आचारांग, सूयमडांग, ठाणांग. .... आदि की लाईन लगी है। पर जितनी प्रतियाँ बनी है, उतना ही ज्ञान का ह्रास भी हुआ है। आज सोचते हैं, वहाँ शास्त्र मिल जायेगे। देख लेगे। पर पहले के संत कण्ठ मे इन्हें कम्प्यूटराइज्ड कराते थे। आज कण्ठाग्र ज्ञान की प्रवृत्ति समाप्त हो रही है। इन पोथो मे भले दीमक लग जाये, पर इस कण्ठ कम्प्यूटर में दीमक नहीं लगती। पुरानी कहावत है-

पैसा अंटे, ज्ञान कंठे।

पैसा पास में नहीं है, तिजोरी में है तो वहाँ काम नहीं आएगा। ज्ञान कंठ में नहीं है, पर लाइब्रेरी में सजाकर रखें और प्रसन्न हों कि 100 नहीं, 200 नहीं, 20,000 प्रतियाँ इकट्ठी कर ली हैं, तो वह भी काम में नहीं आयेगी, बल्कि यदि पूँजना पलेवण नहीं की तो दीमक उन्हें खाकर समाप्त कर देंगी। आपके पास एक भी सूत्र है तो कम से कम उसका पारायण कीजिये नहीं तो हजार इकट्ठे करने से क्या फायदा होगा ? जितना उपलब्ध हो उतने का सदुपयोग अधिक अच्छा है बजाय ढेर भर रखकर उसका उपयोग न करना। आचार्य सुधर्मा भगवान महावीर की शासन परम्परा के आद्य पुरुष हुए हैं। प्रथम पुरुष हुए हैं। उन्होंने निर्ग्रन्थ संस्कृति को जो अवदान दिया है, वह अमूल्य है। ऐसे महान् आचार्य का स्मरण कर उनके प्रति सम्पूर्ण समर्पणा भाव से श्रद्धा व्यक्त करना जन-जन का कर्त्तव्य है। उपकारों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन हमारा नैतिक कर्त्तव्य भी है। उस महापुरुष के लिए यदि हम और कुछ न कर सकें तो श्रद्धा के साथ चंद शब्दों के द्वारा वाचिक कृतज्ञता तो प्रकट कर ही सकते हैं। कृतज्ञता प्रकट करने का सबसे अच्छा तरीका यही हो सकता है कि प्रत्येक व्यक्ति यह संकल्प ले कि वह कम से कम आधे घंटे तक अवश्य स्वाध्याय करेगा। आज कोई भी ऐसा नहीं रहे जो एक घंटे-आधा घंटे स्वाध्याय न करे। आधे में आधा सही पर उसमें चूक नहीं हो। इसके लिये यह संकल्प भी लें कि जिस दिन स्वाध्याय न हो उस दिन चाय नाश्ता बंद। पहले आत्मा को खुराक देंगे, उसके बाद शरीर को खुराक देंगे। मैं यह नहीं पूछूंगा कि कौन तैयार है और कौन नहीं ? आप स्वयं प्रत्याख्यान ग्रहण करें।

आचार्य सुधर्मा स्वामी ने हमारे प्रति जो अनंत उपकार किया है, उसके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन के लिये कम से कम इतना तो हम कर ही सकते हैं। शेष आप सभी प्रबुद्ध एवं धर्मपरायण श्रावक हैं, आप स्वयं निर्णय ले लें।

28.10.2000

❖ ❖ ❖

7. सच्चा रक्षा-सूत्र

मात्र साता सुख हो, दुःख नहीं हो, द्वंद्व नहीं हो, द्वेष नहीं हो और राग भी नहीं हो, ऐसा बहुत कम होता है। परन्तु ऐसा होना बहुत संभव है कि रागात्मक भाव व्यक्ति को प्रिय लगने लगें। यदि कोई व्यक्ति प्रेम से या स्नेह से बोलता है तो मन प्रफुल्लित हो जाता है। यह भी राग का ही एक रूप है। जहॉ हम राग से खुश होते है तो वहाँ उस रागांश में सुख का अनुभव भी करते हैं। तब यह भी मान ले कि हमे द्वेष का भी सामना करना पड़ सकता है, क्योंकि इनका जोड़ा होता है। जैसे रात है तो दिन है, दिन है तो रात है। जैसे रात आने पर व्यक्ति विचार नही करता है कि रात है, क्योंकि वह जानता है यह सृष्टि का नियम है कि रात आयेगी और रात जायेगी तो दिन आयेगा। वैसे ही राग होने पर यह चिन्ता न करें कि द्वेष भी आयेगा। जब यह स्वाभाविक है तो फिर द्वेष, गाली-गलौज मे दुःख क्यो करते है ? दिन, राग का रूप है और रात, द्वेष का रूप है। जब रात नही रहती है तो दिन भी कहाँ रहता है। यदि व्यक्ति इस एक सत्य को स्वीकार कर ले तो फिर दुःख-द्वंद्व में दुःखी न हो।

इस सदर्भ मे यह बात भली प्रकार से समझ लेने की है कि दुःख कहीं बाहर से नही है, अतः हमारे ही विचार हमे दुःख और हमारे ही विचार हमे प्रसन्नता प्रदान करने वाले बन जाते हैं।

आज कहते हैं- भाई दूज है तो कोई ऐतिहासिक या धार्मिक-पौराणिक परम्परा इसके पीछे रही होगी। कुछ प्रसंग रहे होंगे, जिन्हें बाद में भुला दिया गया और लकीर पीटने की स्थिति रह गई। प्रसंग जिस भावना और जिस प्रकार से बने हम आज उस भावना और प्रसग के अनुसार आचरण नही कर रहे है। वर्तमान मे तो एक परम्परा का निर्वाह ही हो रहा है। भाई को बहिन बुलाएगी या भाई-बहिन को

याद कर जाने का उपक्रम करेगा। इस संदर्भ में सामने आता है- नदीवर्धन का प्रसंग।

प्रभु महावीर के प्रति नंदीवर्धन का अनन्य अनुराग था। माता-पिता के स्वर्गवास के पश्चात् उन्होंने अपने स्नेह बंधन से प्रभु को दो वर्ष रोकने का प्रयत्न किया। प्रभु रुके भी। पर यह मत समझ लेना कि उनके रोकने से भगवान महावीर रुक गये। प्रभु महावीर ने अपने ज्ञान के आलोक में देखा कि अभी उपयुक्त समय आया नहीं है। हालांकि वे संसार से उदासीन थे, किन्तु सयमी जीवन मे प्रवृत्त होने का समय तब तक उपस्थित नही हुआ था, इसलिए प्रभु रुके रहे। दीक्षित होने के बाद साधना के क्षेत्र मे चले, केवलज्ञान हुआ, फिर तीर्थ के प्रवर्तन की स्थिति बनी। नंदीवर्धन ने बीच में भी अनेक बार दर्शन किये होंगे। अंतिम समवशरण में भी वे पहुँचे और महावीर की चरण-उपासना में तल्लीन हो गये। सम्राट होने के बावजूद बेले की तपस्या और प्रतिपूर्ण पौषध करते रहे और जब प्रभु महावीर का निर्वाण हुआ तब अन्य-अन्य राजा तो पारणा कर गंतव्य की ओर प्रस्थित हुए, किन्तु नदीवर्धन, अपने शोक को भुला नहीं पा रहे थे। पुनः-पुनः गमगीन हो जाते थे। उन्हें आत्म-ग्लानि हो रही थी। भाई का अनुराग और अपार स्नेह भुलाये भूल नहीं पा रहे थे। पुनः-पुनः प्रभु की स्मृतियॉ जागृत हो जाती थी और वे एकदम अवसादग्रस्त हो जाते थे। ऐसे में वे आर्त्तध्यान की स्थिति में आ जाते थे।

जब इस बात की जानकारी सुदर्शना को मिली तो सुदर्शना ने नदीवर्धन को बुलाया। वे सुदर्शना के यहॉ पहुँचे और सुदर्शना ने पारणा कराया। पर पारणा ऐसी स्थिति में कैसे हो जब खाना गले के नीचे उतर नही पाए। अतः सुदर्शना ने पहले शोक भाव को दूर कराया। उसने स्नेहपूर्वक कहा- "भैया । आप और इस अवस्था मे । कहॉ आपके भाई जिन्होंने राग-द्वेष पर विजय प्राप्त की, भय-शोक जिन्हे छू नही पाये और कहाँ आप ? आप उनके बड़े भ्राता है, आप ही गमगीन होगे तो सामान्य व्यक्ति की क्या अवस्था बनेगी ? इस प्रकार शोक-विलाप करके आप क्या प्रभु की आज्ञा का पालन कर पाओगे ? आपके शोक

करने से या आर्त्तध्यान से क्या पुनः प्रभु अवतरित हो जाएंगे ? उन्होंने सम्पूर्ण कर्मों का क्षय किया है। वे जन्म-मरण रहित हो गये हैं। ऐसी शुभ परिणति पर तो हमें प्रसन्नता होनी चाहिये। हमारे में वह ताकत नहीं है, पर हमारे ही भाई ने जन्म-मरण के बंधन को तोड़कर शुद्ध स्वरूप को प्राप्त किया है, ये हमारे लिये गौरव की बात होनी चाहिये। आप आर्त्तध्यान कर रहे हैं यह आपको शोभा नहीं देता। शोक करते वक्त व्यक्ति को बोध नहीं होता, किन्तु शोक करने वाला असाता वेदनीय का बंधन करता है। आप ऐसे श्रावक होकर ऐसा आचरण करें, यह किसी भी दृष्टि से आपके लिये उचित नहीं है।

सुदर्शना के ऐसे ज्ञानपूर्ण वचनों को सुनकर उस ज्ञानामृत से नंदीवर्धन के हृदय को ढाढस मिला। शोक का आवेग कुछ थमा। वे शांत हुए और कहने लगे- "बात तुम्हारी सत्य है, किन्तु मोह अनुराग ऐसी चीजें हैं जो पुनः-पुनः उत्तेजित करती है।" तब सुदर्शना ने उन्हें पुनः संबोधित किया- "भैया ! इस सारे राग पर ही तो विजय पानी है। यही तो संसार में रुलाता है।"

उत्तराध्ययन सूत्र के छठे अध्ययन में इस प्रकार के विचार व्यक्त है कि भाई-बहिन, पति-पत्नी, माता-पिता, पिता-पुत्र के संबंध के विचार ही तो मोह के कारण हैं। प्रसन्नचन्द्र राजऋषि ने मुनिवेश में पुत्र मोह के कारण नारकी के दलिक इकट्ठे किये या नहीं ? किसलिये किये ? बेटे के मोह से। आप बेटे का मोह मत करना। पता नहीं बेटे पर है या नहीं, पर पोते पर ज्यादा हो जायेगा। पोता आकर गाल पर चाँटा लगाये तो प्रमोद होता है। दादाजी बन गये, ये कम बात है क्या ? ये चाँटे सामान्य नहीं, मोह के चाँटे हैं। अभी तो खा रहे हैं, पर इनमें अनुरक्त हुए तो जन्म-मरण के चक्र मे घूमना पड़ेगा। आप कहेंगे- क्या संसार व्यवहार का उच्छेद कर दे। उच्छेद की बात नहीं है। संसार में रहे तो दायित्व का निर्वाह करना होता है। संसार में रहते हुए दादाजी गोद मे न ले तो कहेगे ये कैसे दादाजी ? परन्तु अंदर से अपने आपको निर्लिप्त रखने की अवस्था होनी चाहिये, क्योंकि इस नेह पाश के बारे में कहा गया है-

नेह पाशा भयंकरा

दूसरे बंधन इतने भयंकर नहीं। स्नेह/राग का पाश याने बंधन/स्नेह के धागों का बंधन भयंकर है। आर्द्रकुमार पहले दीक्षित हुए। योगावली कर्म उदय मे आये। तो संसारी बनना पड़ा। फिर वापस वैराग्य जगा। पत्नी ने कहा- "मैं रोक नहीं सकती, पर मुझे चरखा ला दें तो मैं अपना जीवन उसके सहारे चला पाऊँगी।" वह चरखा लेकर सूत कात रही थी कि बच्चे ने पूछ लिया- "क्या कर रही हो ?" कहने लगी- "तुम्हारे पिता साधु बनना चाहते हैं, तो मैं अकेली जीवनयापन कैसे करूँगी ? मैं हाथ करघे के सहारे जीवनयापन करूँगी।" कहा जाता है, माता ने जो सूत काता था, वह बच्चे ने उठा लिया। पिता सोये थे, उनके पैरों में सूत के ऑटे लगा दिये- "मैं जाने नहीं दूंगा।" वे स्नेह पाश मे इतने आबद्ध हो गये कि मन में प्रतिज्ञा कर ली कि जितने आँटे पड़े हैं, उतने वर्ष और रहूँगा और आँटे गिने तो कितने निकले ? बारह ऑटे। ये है राग-भाव। ऐसे राग-भाव में हमारी आत्मा कितनी निमज्जित हुई है, विचार करें। किन्तु आचार्य पूज्य श्री श्रीलालजी म.सा ने जब दीक्षा की तैयारी की तो माँ ने कहा- "किसी भी हालत मे आज्ञा नही दूँगी।" बडे लाड़ले थे। माता का इतना प्यार, आज कई भाई कहते हैं कि "भावना तो है पर माता का मोह है। मॉ को कितनी पीड़ा होगी। इसलिए हिम्मत नही होती।" हिम्मत होना भी एक मायने रखता है। श्री श्रीलालजी म. सा मे हिम्मत थी। काफी समय तक समझने का प्रयत्न किया। नही मानी, तब अंततः चले गये और स्वयं दीक्षा ले ली।

अभयकुमार प्रभु महावीर की देशना से प्रतिबोधित हुए, श्रेणिक से कहा अनुमति दो। श्रेणिक ने कहा- अभी तो मेरा समय है। लेकिन नही माना तो कहा- जिस दिन मेरे मुँह से निकल जाये, "अभय यहाँ से चला जा, तब दीक्षा ले लेना।" और ऐसी घटना भी घट गई।

श्रेणिक चेलना के साथ निकले। एक साधु को शीत परिषह सहते देखा। रात को रजाई ओढ सोयी थी, उन्हे मुनि का स्मरण हुआ कि कैसे सर्दी सहन कर रहे होंगे ? उसके शब्द सुने तो श्रेणिक को लगा कि ये तो दुराचारिणी है, मैं इसे पतिव्रता समझता था। पर कोई ओर

पुरुष है, जिसके विषय में सोच रही है। अकारण ही कैसे-कैसे फितूर दिमाग में आ जाते हैं। ये नहीं सोचा- कितने वर्षों से मेरे साथ है और अविश्वास कर लिया। ऐसा अविश्वास हो तो पतिव्रता के लिए मरण जैसा हो जाये। दूसरा करे तो बात और है, पर स्वयं के पति मन में अविश्वास ले आये तो एक प्रकार से मरण की स्थिति बन जाती है। राजा को उफान आ रहा था और सुबह-सुबह जब दरवाजे खोले तो देखा वहाँ अभय सेवा में उपस्थित था। कहा- "अभय, अंतःपुर में आग लगा दो, मैं उसका मुँह नहीं देखना चाहता।" अभय ने देखा अभी कुछ कहने में सार नही। आवेश में व्यक्ति को भान नहीं रहता। स्थानांग सूत्र में उसे अनात्मा कहा गया है। उसमें चेतना तो होती है, पर आत्मा का जागृत रूप नहीं होता। इसलिए उसे अनात्मा कहा गया है। आज भी आप देखिये अदालत में भी यदि व्यक्ति अत्यन्त क्रोध या भय से ग्रस्त हो जाये तो उस समय वह जो बात कहे उसे मान्य नहीं किया जाता है। इसीलिये उसे अपने कथन के साथ शपथपूर्वक यह भी कहना होता है कि मैं अपने पूर्ण होश-हवास में यह कह रहा हूँ। किसी को दण्ड देना है तो भी भारतीय संविधान ने उसके अंतर को छुआ है। अन्य में हो या न हो, पर भारतीय संविधान को अध्यात्म से जोड़ा गया है। एक अपराधी हत्या करते पकड़ा जाये और बचाव के बयान में वह कहे कि हत्या करने की मेरी भावना नहीं थी, मैंने तो अपने बचाव के लिए शस्त्र का प्रयोग किया था और उसमें मौत हो गई। तो भारतीय दंड संहिता उसे निर्दोष मान सकती है। अपराध करने की भावना न हो तो व्यक्ति को अपराधी न माना जाये। यह जैन सिद्धान्त से जुड़ा हुआ सिद्धान्त है। भगवती सूत्र मे कहा गया है- पृथ्वीकाय की हिंसा का त्याग नही, पर त्रसकाय की हिंसा/त्रस की हिंसा का त्याग है। पर पृथ्वीकाय का आरंभ करते हुए त्रसकाय की हिसा हो जाये तो भगवान से पूछा गया कि क्या उसकी प्रतिज्ञा टूटी ? इस पर भगवान ने कहा- 'वो इणट्ठे समट्ठे' अर्थात् भंग नही हुई। त्रस जीव मरा कि नही ? त्रस जीव तो मरा, किन्तु मारने की भावना नही थी। ये जैन सिद्धान्त बोल रहा है। ये आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व भगवान महावीर कह गये है और यहॉ उससे पूर्व के अनत तीर्थंकरो की भी प्ररूपणा रही है। भारतीय संविधान कहता है कि

मारने के भाव से नहीं, पर अपराधी ने हमला किया तो उससे बचाव के लिए यदि शस्त्र का प्रयोग किया है तो शस्त्र प्रयोगकर्त्ता को अपराधी नहीं माना जा सकता।

मैं बता रहा था कि आवेश में दिये गये बयान को कोई मंजूर नहीं करता, क्योंकि वहाँ आत्मा चेतना के रूप में नहीं रहती है। वैसे ही यह भी कहा गया है कि कोई आत्मा आवेश में बात करे तो वह अनात्मा की आवाज मानी जायेगी, चेतना की नहीं। अभय सोचने लगे, अभी मैं पूछूँगा तो सार नहीं निकलने वाला है। वे चुप रहे।

इधर मालूम पड़ा कि भगवान महावीर पधारे हैं, तो श्रेणिक पहुँचे भगवान की सेवा में। मन में खलबली थी पूछा- "भगवन् ! चेलना मेरी महारानी जिसका नाम गोत्र श्रवण करना दुर्लभ है, पतिव्रता है या ओर पुरुष से उसका संबंध भी है ?" भगवान ने उत्तर दिया- "चेडा महाराज की जितनी भी पुत्रियाँ हैं, वे सभी पतिव्रता हैं। तुम्हें संशय नहीं करना चाहिये।" तब उन्हें अपने आदेश पर पश्चात्ताप हुआ। भय भी हुआ कि कहीं अभय ने आग लगा न दी हो। वे उठकर महलों की तरफ रवाना हुए। बीच में ही अभय मिल गया तो उन्होंने अभय से पूछा, उसने उत्तर दिया- "आपकी आज्ञा हुई थी तो मैंने लगा दी।" बस, राजा श्रेणिक को क्रोध आ गया और क्रोध में उनके मुँह से निकल गया "यहाँ से जा, मैं तेरा मुँह देखना नहीं चाहता।" उधर आवेश के क्षणों मे उन्होंने अपने द्वारा रखी गई शर्त स्वयं ही पूरी कर दी थी। फिर तो अभय गया और भगवान से निवेदन कर दिया- "प्रभो, मुझे तो दीक्षा दे दो।" अब तो श्रेणिक ने मन मे पश्चात्ताप भी किया कि मैंने ऐसे शब्द क्यों कहे ? पर प्रसंग बना था, बन गया।

सुदर्शना और नंदीवर्धन से संबंधित प्रसंग मे आपको सुना चुका हूँ। राग की कील निकालने के लिये ही नंदीवर्धन से सुदर्शना ने कहा था- "प्रभु महावीर की आराधना मोह से नहीं होगी। मोह को शांत करना होगा। उसे शात नही किया तो मोह का रेशा भवो-भवो तक दुःख देता रहेगा।"

पुराने समय मे अनछना पानी पीने से नारु की बीमारी होती थीं। नारु का एक भी रेशा भीतर रह जाये तो वह फिर भीतर पनपता है। इस प्रकार नारु निकलता है और फिर धागा बना रह जाता है, वैसे ही स्नेह का तागा है। काटकर भले अलग कर दो, पर रेशा फिर पनप जाता है। यदि उसे पूरा निकाल दिया, तो जरूर बीमारी पूरी तरह से समाप्त हो जाती है।

कभी फोड़ा हो जाता है, पर जब तक उसकी कील साफ न कर दी जाये और लापरवाही की जाये कि स्वतः थरेगा, किन्तु जब तक बीच की कील को निकाल न दिया जाये तो उस फोड़े के सूखने की स्थिति नहीं बनती है। जैसे वहाँ कील होती है, वैसे ही राग-स्नेह होते हैं। उन्हें यदि आत्मा से हटाया न जाये तो जैसे फोड़ा या नारू पुनः पनप जाता है, वैसे ही स्नेहपाश के रेशे यदि रह गये तो पुनः अपना फैलाव कर लेते हैं। ऐसे घाव ऊपर की मरहम-पट्टी से सूख नहीं पाते। एक बार सूख भी जाये, किन्तु फिर पनप जाते हैं। ऊपर के आचार से उनसे छुटकारा नहीं पाया जा सकता। सुदर्शना ने पहले नन्दीवर्धन को पारणा नहीं कराया, किन्तु पहले उन्हें शोक रहित किया। ज्ञानदृष्टि का उपदेश दिया। वस्तुतः दृष्टि का बदलाव होना चाहिये। उसी के बदलाव से मानसिकता में भी बदलाव आता है। शोक किस कारण होता है ? जब तक दृष्टि मे मोह बना रहता है, तब तक आर्त्तध्यान होगा। जैसे ही दृष्टि बदली तो मनोदशा भी बदल जायेगी। यह मानव मनोविज्ञान का सत्य है। नंदीवर्धन का शोक धीरे-धीरे कम हुआ। बहिन ने केवल पारणा ही नहीं कराया, किन्तु भाई को प्रभु महावीर की आज्ञा आराधना के रूप से परिचित होने का उपदेश व बोध भी दिया। भाई के प्रति आत्मीय स्नेह प्रदर्शित कर कर्त्तव्य का स्मरण भी कराया। उन्हें अनुभव कराया कि यदि वे भगवान की आज्ञा का पालन करेंगे तो परमात्मा से दूरी भी समाप्त होगी। यही परमात्मा के प्रति सच्ची प्रीत होगी। वह प्रीत तो मोह बढ़ाने वाली है। अतः आप जागिये ! अब आप स्वयं तय कर लीजिये कि आज की बहिन भाई को बुलाती है तो मोह को बढ़ाती है या घटाती है ? बताया जाता है कि ब्राह्मी व सुन्दरी बाहुबली के पास गई थी।

वीरा म्हारा गज थकी नी उतरो.......

बाहुबली को आश्चर्य हुआ। मेरे पास हाथी ! हाथी-घोड़ा कुछ भी तो नही है। ये क्या कह रही है ? पर दृष्टि का परिवर्तन हुआ। ओहो । मै समझ नहीं पाया। संज्वलन मान भी हाथी का रूप है। संज्वलन कितने समय रहता है ? दो माह तक। बाहुबलीजी को कितने समय तक रहा ? कुछ लोग कहते हैं उनका बारह महीने से संज्वलन रहा। पर बाहुबली के लिए ऐसा नहीं कह सकते कि 12 महीने उनके संज्वलन मान बना ही रहा। यदि ऐसा माने तो सिद्धान्त से विरोध आता है। इसलिए मानना चाहिये कि वह बदलता रहता है। उस स्थिति से उसमें अंतर होता है। मेरा कहने का आशय है कि संज्वलन मान भी हाथी जैसा मोटा है। छोटा मत समझना। दसवें गुणस्थान का लोभ सूक्ष्म बहुल होता है, पर जब 11वे गुणस्थान में आत्मा पहुँच जाये तो वह लोभ खीच लाता है। ये है राग-मोह का होना। आज हम भाई दूज के नाम से राग को बढ़ा रहे है। उस परम्परा का पोषण किस रूप मे कर रहे है। यह भी न समझें। बहिने बोध की बात भूल गईं है और मोह बढ़ा रही है। आज का दिन राग से ऊपर उठने का दिन है। सही मायने मे वीतराग आज्ञा के प्रति कटिबद्ध होने का दिन है। पर ऐसे मनाने वाले कितने भाई-बहिनें है।

पौराणिक बाते तो और भी कई बतलायी जाती है। जैसे- आज के दिन यमुना को यम ने (भाई ने) बुलाया था। पौराणिक बाते है। यथार्थ कितनी हैं, कह नहीं सकता, किन्तु किंवदती के रूप मे भी चल रही है। वैदिक संस्कृति मे बताया गया है कि यमुना यम के यहॉ पहॅुची आज के दिन। यम ने कहा- "कुछ माँग ले।" यमुना ने कहा- "आप जैसा भाई है फिर क्या मांगू ?" यम ने कहा- "नही, आज तो तू कुछ मांग ही ले।" यमुना ने कहा- "कुछ देना ही चाहते हो तो आज के दिन आप एक वचन दे दीजिये कि आज के दिन आप अपनी छाया किसी पर नही डालोगे। जो यमुना स्नान करेगा, उसे मृत्यु के मुॅह मे नही ले जाओगे। आज कोई मर जाये तो उसे नरक का मेहमान नही बनाओगे।" इस प्रसग की महिमा इसमे नहीं है कि वहॉ क्या लिखा है। हमे इससे

यह शिक्षा लेनी है कि आज का दिन कैसा है ? आज का दिन अभयदान का दिन है। भयभीत करने का नहीं। बल्कि हम यह सोचे कि आज का दिन प्रत्येक का भय दूर कर उसे अभय देने का दिन है। हमे मूल बात लेनी है। कथाएँ किसी भी रूप में घड़ दी जाये, पर हमें तो भाव देखना है। लेकिन हम कलेवर घसीटते हैं, भाव को भूल जाते हैं। पर्वों की महिमा को समझिये, उनमें निहित चेतना को पहचानिये। इस संदर्भ में एक कथा इस प्रकार भी मिलती है।

एक भाई जिसकी शादी होने वाली थी, बहिन को लेने गया। लेकर आ रहा था कि रास्ते में शारीरिक शंका निवृत्ति के लिए गया। बहिन से कहा– तुम आगे खड़ी रहना। बहिन खड़ी थी, वहाँ एक बहिन के रोने की आवाज आई। वह उसके पास पहुँची, पूछा– क्यों रो रही हो ? उसने कहा तुम जिस उमंग से जा रही हो, वह उमंग लंबे समय तक नहीं रहेगी। तुम भाई की शादी में जा रही हो, पर भाई पर वज्रपात होने वाला है। बहिन ने पूछा– "क्या होगा ?" उसने बताया कि वह चंवरी पर बैठेगा और फेरा लेने की तैयारी करेगा कि भूतेलिया आएगा। उड़ाकर ले जाएगा। एक बार बचाव हो गया तो प्रथम रात्रि मे जब शयन करेगा उस समय एक कालिन्दर सर्प निकलेगा और भाई को डस लेगा। कदाचित् उस समय बचाव हो जाये तो तीसरी बार घर लौटेगा तो जब बचाव के समय मोढ़े मे प्रवेश करेगा तो मोढ़े के ऊपर का भाग गिरेगा और वह डूबकर मर जायेगा। इसलिए मैंने कहा– उमंग थोड़े समय की है।" बहिन ने कहा– "पहला, दूसरा, तीसरा इसका मतलब बचाव भी है।"

यह बात विश्वास करने की है कि यदि उपेय है तो उपाय भी है। बीमारी है तो इलाज है। कोई बीमारी भले लाइलाज हो, पर उसका इलाज जरूर मौजूद होता है। यह बात अलग है कि इलाज की खोज न हुई हो। कई कहते हैं कि कैसर का इलाज नही है, पर ऐसे व्यक्ति भी हैं जिसे बम्बई के डॉक्टरो ने कैसर बताया था, वह इलाज से कीटाणु समाप्त कर 27 वर्षों तक जीवित भी रहा। डॉक्टर विश्वास नही कर रहे थे। पर कोई भी बीमारी लाइलाज नही होती है। उस भाई के लिए तो डॉक्टरो ने कह दिया था कि हमारे वश की बात नही है और जो वश

की नहीं थी उसका भी इलाज हो गया। जैसे देवता किसी को बोध देने के लिए बीमारी पैदा करें तो उसकी बीमारी दीक्षा लें तभी ठीक होगी। आप दौड़ते रहें डॉक्टर के पास, पर कोई लाभ नहीं होगा। वह बीमारी तो दीक्षा से ठीक होगी। मैं कहता हूँ मन में संकल्प कर लें कि ठीक हो गया तो दीक्षा ले लूँगा, तो बीमारी अवश्य ठीक हो जायेगी। पर हम इलाज नहीं करते बीमारी पर लीपापोती चाहते हैं और कहते हैं- डॉक्टर ने ये कोर्स दिया है। लेते रहो, चलता रहेगा।" लोग कहते है- बीमारी ठीक नहीं होती। होती है पहले मनोबल तो बनाओ, संकल्प दृढ़ तो करो।

उस बहिन ने पूछा तो उसने कहा- "लाइलाज नहीं है। चंवरी मांडने के पहले बीच में कील गाड़ दें तो भूतेलिया नहीं ले जा पाएगा। दूसरी सुहाग रात की बात है। भाई-भाभी के बीच कोई शयन कर ले और जैसे ही कालिन्दर आये, वह यहाँ जो काँटे पड़े हैं , इससे उसकी जीभ बींध दे तो भाई बच जायेगा।" फिर उसने तीसरी बात भी बता दी कि जिसने जीभ बींध दी हो वह भाई के प्रवेश से पूर्व प्रवेश करे तो बचाव हो सकता है। बहिन ने बचाव करने का निश्चय कर लिया। अब बारात की तैयारी हुई, बारात जाने लगी। उसने कहा- "मैं भी जाऊँगी।" उस समय औरतो के जाने का रिवाज नहीं था, किन्तु वह जिद पर अड़ गई। परिवार वाले नाराज हुए, पर वह नही मानी तो उन्होने कहा- "ले जाओ।" जब चंवरी रचने लगे तो उसने कहा- "मत रचो।" लोगों ने पूछा- "बीच-बीच मे ऐसा क्यों करती है ? उसने कहा- "पहले मुझे मेरा काम करने दो। मैं नीचे कीले गाडूंगी।" उसकी वह जिद भी पूरी कर दी गई और आराम से फेरे हो गये। सुहाग रात की तैयारी हुई। भाभी के साथ ननद बैठी रही। भाई आ गया। उसने कहा- "मैं भाभी के साथ शयन करूँगी। मैं नहीं जाती।" वह नहीं मानी। वही बात हुई। कालिन्दर आ गया। उसने काँटे से जीभ बींध दी। सर्प चला गया। बधावे का समय आ गया। वह आ गई बोली- "पहले मै प्रवेश करूँगी।" परिवार वालों ने कहा- "मैं लाडे की भुवा बनती है।" भुवा नही तो बहिन तो थी ही। कहा- "कौन झगडा करे। करे जो करने दो। कहीं मुहूर्त्त न निकल जाये। उसने प्रवेश किया। भाई-भाभी अंदर पहुँचे, मोढ गिरा, पर वे अंदर जा चुके थे। उसका निश्चय पूरा हो चुका था, अतः वह वहाँ से ससुराल

लौट गई। उसकी खोज की गई पर वह तो मिली नहीं। भाई पुनः बहिन के घर गया। उसे मनाकर लाया, वह पर्व था दूज का। रूठी बहिन को मनाने का।

इस कथा को हम एक प्रतीक रूप में ले और इसके भाव को, हार्द्र को समझने का प्रयास करें। इससे कई बातें स्पष्ट होती है। चंवरी में वर-वधू बैठते हैं। वहाँ विचारों की स्थिति क्या होती है ? मोह का बंधन होता है। उस समय मोह की भंवरें पड़ती हैं। यदि उस समय ही सम, संवेग, निर्वेद, अनुकम्पा, आस्था के मजबूत खंभे गाड़ दें तो मोह की भंवरे नहीं पड़े। भगवान महावीर की भी शादी हुई थी, पर मोह नही बढा। दूसरी बात सुहाग रात की है, जिसमें आश्रव का सेवन होता है। वहाँ भी मोह विकराल रूप लेने वाला बनता है, उसे ही कालिन्दर सर्प समझे। कहा भी है मरणं बिन्दु पातेन, बिन्दुपात, वीर्य के एक बिन्दु का पतन जीवन का पतन करने वाला होता है। वह काल रूप होता है। मोह में व्यक्ति पड़ता है तो वहाँ कालिन्दर सर्प फुफकार करता है। भले उस दिन न मरे पर एक दृष्टि से मोह के कारण वह मर चुका होता है। इसलिए कहा उसे बींध दें। कितने भाई होगे जो सुहाग रात में मोह से आवेष्टित न हों ? कई होते हैं, शादी होती है पर प्रतिज्ञा रहती है कि जब तक गुरुदेव के दर्शन न कर लें, ब्रह्मचर्य का पालन करेगे। आज आप कहते हैं विजय सेठ - विजया सेठानी। एक के नियम था कृष्ण पक्ष का, एक के था शुक्ल पक्ष का। एक पलंग पर शयन करते। कथा मे कहते है नंगी तलवार बीच में रखते थे वह बाहर की तलवार हो या न हो, किन्तु प्रतिज्ञा की नंगी तलवार थी। मन मे भी कहीं भांगा लगा हो, ऐसा कथा में प्रतिपादित नहीं है। ब्रह्मचर्य की रक्षा की। बड़े-बड़े अजगर डस नहीं पाये। भीष्म प्रतिज्ञा इसे कहते हैं। आयु मुट्ठी में बद। वे चाहे तो मरें, नही तो मरे नही। हालांकि मरण निश्चित है।

भीष्म पितामह के प्रतीक को भी समझिये। भीष्म मरणासन्न अवस्था में कुरुक्षेत्र की रणभूमि मे पड़े है। वे कहते हैं- "खाट चाहिये। अर्जुन ने तीर चलाये और बाणो की शय्या तैयार कर दी। उसी पर उन्होने मृत्यु प्राप्त की। उन्होने कहा- "मै खाट पर मरूँ ? मैं वीर हूँ।" वीर की शय्या कैसी होती है ? अर्जुन ने उनके भाव को समझा। उसने

वीर शय्या बना दी। भीष्म पितामह ने जीवनपर्यन्त ब्रह्मचर्य की पालना की थी। उनके सामने कोई टिक नहीं सकता था। आप कहेगे वे तो दुर्योधन की तरफ थे, फिर दुर्योधन की हार कैसे हुई ? युधिष्ठिर मैदान मे आये और तत्काल रथ से उतरे। आचार्य के पास पहुँचे और कहा- "मुझे युद्ध की आज्ञा दीजिये। द्रोण के पास पहुँचे और उनका आशीर्वाद लिया। फिर भीष्म पितामह के पास पहुँचे, उनसे आशीर्वाद लिया। शरीर से तो वे सभी दुर्योधन के साथ थे पर आशीर्वाद युधिष्ठिर को ही दिया। सभी ने कहा- तुम्हारी जय हो। यह तो नहीं कहा कि 'मरो'। उनके मुँह से क्या निकला ? आशीर्वाद का शब्द। आज व्यक्ति माता-पिता के चरणों में नमस्कार नहीं करता। नमस्कार करने की भी पूरी विधि है। माथे को नमाकर चरणों में समर्पित करिये, फिर देखिये कैसे आशीर्वाद निकलता है। दुर्योधन की हार का कारण क्या था ? सहस्रो योद्धाओं के होते हुए भी वह हार गया, क्योंकि युधिष्ठिर को आशीर्वाद प्राप्त था, दुर्योधन को प्राप्त नहीं था, इसलिए हार गया। जिन्होंने जीत का आशीर्वाद दिया वे हराते कैसे ? भीष्म, द्रोणचार्य हरा नहीं सकते थे। वे युद्ध में हराने की स्थिति मे नहीं आ सकते थे, क्योंकि आशीर्वाद दे चुके थे। शरीर दुर्योधन के साथ था, पर मन जिसके साथ था जीत उधर की ही होनी थी। ऐसे ब्रह्मचर्य व्रत को भीष्म ने धारण किया था। एक बूंद गिरने नही दी थी। ऐसा वीर अकाल मृत्यु का वरण नहीं कर सकता था। यह है ब्रह्मचर्य की महिमा। ये हम कथाओं से समझें यही सुनने का तो सार है अन्यथा सुनना कोई मायने नही रखता।

पूर्व की कथा के भाव को, संदेश को, हार्द्र को समझे। उस बहिन ने बीच में पड़कर माता-पिता का आक्रोश सहन किया था। ऐसे प्रसंग पर बहिन ढाल बनकर रहे तो बहिन होने की सार्थकता है। नहीं तो भाई के पास पैसा रहे तो-

मात कहे मेरा पूत सपूता, बहिन कहे मेरा भैया।
घर की जोरू यूं कहे, सबसे बड़ा रुपैया।।

माँ भी तब तक प्रेम देगी, जब तक बेटा लाकर दे। बहिन को दे तो कहेगी, मेरा भैया, मेरा भैया और जिस दिन भाई की हालत बदतर हो जाये और बहिन के यहाँ पहुँच जाये तो पीछे के रास्ते से प्रवेश मिले,

न भी मिले। गरीब भाई को प्रवेश तो दे दिया, फिर क्या हुआ ? तीन दिन की सूखी रोटी दी। भाई चबा नहीं पाया। वही तोड़कर गाड़ दी और वहाँ से चला गया। कुछ वर्षों पश्चात् एक दिन वापस आया। बहिन ने उसका आगमन सुना पहले तो अनसुना कर दिया, पर जब ज्ञात हुआ कि वह तो बहुत धन-माल-लाव-लश्कर के साथ आया है, तो बहिन बधाकर घर ले आई और मनुहार, खातिर में लग गई। तब भाई ने दिखाई- "बहिन ये सूखी रोटी।" जब तक संपत्ति है सारे अपने हैं, किन्तु जब संकट की घड़ियाँ आती है तभी पहचान होती है कि कौन अपना है और कौन पराया है ?

यहाँ पर किसी से पूछ लें, कौन है आपका ? यहाँ तो कहेगे- "कोई कोनी।" यहाँ से निकले, फिर क्या कहेंगे-

मेरा है सो मेरा है, तेरा भी मेरा है।

और खा पीकर ऐसी डकार लेंगे कि अजीर्ण-आफरा भी नहीं हो। ऐसे मुँह पोंछ लेंगे कि कोई जान न पाये। इस मोह परम्परा को त्यागिये, वीतराग वाणी की आराधना का लक्ष्य बनाईये, फिर देखिये जीवन कितना सुन्दर बनता है।

पर्व की आराधना चेतन आत्मा से करें, केवल कलेवर को महत्त्व न दें। चेतना को कब अपना पायेंगे इस पर चिन्तन-मनन करें। ध्यान रखिये चेतना को महत्त्व देंगे तो धन्य-धन्य हो जाएंगे। मैंने आपके सामने भाईदूज के पर्व के संदर्भ से चेताने वाली कुछ बातें रखी हैं। सुनने से ही ज्ञान होता है- कल्याण का और पाप को भी सुनकर ही जान पाते हैं। सुनाने के बाद जो श्रेयष्कर लगे उसे स्वीकार कर जीवन में उसका अनुसरण करने वाले लोग ही प्रबुद्ध और चेतन्यता का अनुभव कर सकते हैं। आप भी चेतन्यता का अनुभव करें। भाईदूज के प्रसंग से आप तदनुसार आचरण करेंगे, ऐसा विश्वास है।

29.10 2000

❖ ❖ ❖

8. मन चंगा तो कठौती में गंगा

निर्मलता और मलीनता परस्पर विरोधी धर्म है, विरोधी अवस्थाएँ हैं। अधिकांश व्यक्ति मलिनता को पसन्द नहीं करते, परन्तु निर्मलता सभी चाहते है। निर्मलता या मलीनता के दो रूप हैं- एक तो बाह्य अर्थात् बाहर की, जैसे- शरीर, वस्त्र आदि की निर्मलता और इन्हीं शरीर, वस्त्र आदि की मलीनता। दूसरी आंतरिक निर्मलता या मलीनता जो अध्यवसायो की होती है। हमारे अध्यवसाय कितने निर्मल हैं या कितने मलीन है। इन्हे समझ लेना बहुत आवश्यक है।

एक युवा संतों के समीप पहुँचा। वंदन करते हुए कहने लगा- "गुरुदेव ! अपध्यान-दुर्ध्यान करने से किस गति के कर्म का बंध होता है ?" संतों ने जवाब दिया- "यदि दुर्ध्यान में आर्त्तध्यान की स्थिति हो और उस आर्त्तध्यान में यदि आयुबंध हो जाये तो संभव है- तिर्यंच गति में जाने का मार्ग प्रशस्त कर ले। ऐसी स्थिति मे वह तिर्यच गति का आयुबंध कर सकता है। यदि वही ध्यान रौद्र हो और वैरानुबंधी वैर की भावना चल रही हो तो वह नरक गति प्रायोग्य कर्मदलिक इकट्ठा करेगा, तब वह नरक गति का आयुष्य बंध कर सकता है और नरक गति जाने तक ही सीमित नही, आगे भी संसार मे परिभ्रमण की उसकी स्थिति बन सकती है।"

युवक ने पुनः प्रश्न किया- "गुरुदेव ! उसके पीछे कारण ? अध्यवसाय के पीछे दुर्ध्यान आने के कारण यदि प्रशस्त रहे हों तो ?" संत ने कहा- "कारण चाहे कुछ भी रहे हों, कारण से मतलब नहीं। मतलब है अध्यवसाय धारा, भाव धारा को निर्मल किया है या मलीन। भाव अच्छे रहे या भाव को मलीन बना लिया। आप कहेंगे किसी को सुधारने के लिए क्या किया जाये ? सुधारने के लिए भी आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान की अवस्था उपस्थित हो तो उचित नहीं कही जा सकती। जैसे

प्रसन्नचन्द्र राजऋषि भी पुत्ररक्षा के भाव से प्रेरित हुए। यहाँ प्रश्न भी हो सकता है कि चेडा ने युद्ध भी किया, किन्तु युद्ध करते हुए भी भाव धारा में मलीनता लाने का प्रसंग नही बना। युद्धभूमि मे भी प्रतिज्ञा पर अटल रहा। जो उन पर शस्त्र चलाता है उसी पर चलाना है, निर्दोष पर प्रहार नहीं करना है। एक तरफ शत्रु सेना खडी हो, दूसरी तरफ कोई प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहे। ध्यान रखे कि प्रहार करने वाले पर ही प्रहार करना है। इतना संयम रखना बड़ा कठिन काम है, पर उन्होंने रखा। यही कारण 12 व्रतों में युद्ध करने पर भी व्रत खंडित नहीं हुए, व्रतों मे दोष नहीं लगा। इसलिए हम विचार करें कि यदि युद्ध करते हुए मन में, अध्यवसाय मे, द्वेष की भावना झलकती, द्वेषपरक अवस्था में युद्ध किया जाता तो उसी युद्ध में अन्य बहुत सारे व्यक्ति मृत्यु को प्राप्त कर तिर्यंच गति में, नरक गति में गये, किन्तु चेडा स्वर्ग मे गये। इसके पीछे कारण ले कि वे सम्राट थे इसलिए गये, तो ऐसा कोई संबंध अध्यवसाय धारा के साथ नही रहता है। वहाँ तो मूल आधार रहता है कि अध्यवसाय मे निर्मलता है या मलीनता। कारण कुछ भी हो। कोई कहे, मैं धर्म के लिए युद्ध कर रहा हूँ, पर तीर्थंकर देव कहते हैं- धर्म के लिए युद्ध में भी अध्यवसाय में मलीनता की आज्ञा नहीं है। आचार्य हेमचन्द्र कहते है-

न धर्महेतीः विहिता विहिंसा।

यदि धर्म के लिए हिंसा करें तो वह धर्म नही हो सकता। वस्तुत: जो धर्म है वह हिंसा को कभी प्रश्रय दे नही सकता और जिसमे हिंसा हो रही हो उसे धर्म की संज्ञा दे नहीं सकते। चेडा ने युद्ध किया तो क्या उसे हम धर्म की संज्ञा दे सकते हैं ? उन्होंने कर्त्तव्य का पालन किया। यह कह सकते है कि युद्ध करते हुए भी व्रत पालन किया, दोष लगने नहीं दिया। पर युद्ध करने से होने वाली हिंसा को धर्म का 'जामा' पहनाया नही जा सकता। धर्म अहिसा में है, फिर हिंसा मे धर्म कैसे ? अध्यवसाय मे मलीनता है तो वह धर्म नहीं हो सकती। आर्त्तध्यान की स्थिति है तो आर्त्तध्यान को भी मलीनता कहा है। यह दुर्ध्यान है। वह चाहे किसी भी प्रकार का हो। आर्त्तध्यान के चार भांगे है-

(1) मनोज्ञ वस्तु की प्राप्ति के अध्यवसाय बने रहना कि वह

चीज प्राप्त हो। कभी सोच लें कि आर्त्त का रूप केवल रोना होता है तो ऐसा नहीं है। ऊपर से आँख मे आँसू नहीं, पर मन मे तो रोना ही हो रहा है। पदार्थ के प्रति कामना बनी है तो वह भी रोता है।

(2) अमनोज्ञ का वियोग- यह जल्दी हटे, कैसे दूर हो। इसे भी आर्त्तध्यान की संज्ञा दी है।

(3) वेदना- वेदना के कारण हाय-विलाप करना।

(4) निदान करना- भौतिक सुख-सुविधा की प्राप्ति के लिए धर्म करणी को दांव पर लगाना।

ऐसे दुर्ध्यान की अवस्था में व्यक्ति तिर्यंच गति का आयुष्य बंध कर लेता है। बातें बड़ी सामान्य लगती है, पर हम देखें कितना समय आर्त्तध्यान में और कितना धर्मध्यान में गुजरता है। जरा हम अपने अध्यवसाय की धारा का अन्वेषण-परीक्षण करें। उसमें कितनी निर्मलता, कितनी मलीनता आती है। यदि राग-भाव है तो उसे भी निर्मल नहीं कहा है। यदि द्वेष की अवस्था है तो वह भी निर्मल नहीं है। फिर कहेंगे कि संसार में प्रत्येक प्राणी राग-द्वेष में लगा है। फिर तो किसी की अवस्था निर्मल हो नही सकती। सभी या तो राग में है या द्वेष में है। जब ये हैं- तो अध्यवसाय पर भी राग-द्वेष रहेंगे।

राग के भी भेद किये गये हैं- (1) प्रशस्त (2) अप्रशस्त। अप्रशस्त राग होता है संसार मे भटकाने-रुलाने वाला। प्रशस्त राग वह है जिसे हम कहते हैं- धर्म का अनुराग। यदि धर्म का अनुराग। अध्यवसाय में 24 घंटे लगा हो तो वहाँ तिर्यंच-नरक गति का बंध नहीं हो सकता।

नरकनिगोद में ते नहीं जावे
हम कहे जिनराज रे प्राणी....

क्योंकि निरन्तर धर्म के प्रति अनुराग बना है।

वह युवक संतों से कहता है- ''गुरुदेव ! मेरे को प्रत्याख्यान करवा दीजिये कि अब मन मे दुर्ध्यान नहीं लाऊँगा।'' संतो ने कहा- ''नही लाओगे ये ठीक है, पर दुर्ध्यान आने के कारण भी बनते है।'' उसने कहा- ''गुरुदेव । एक व्यक्ति से मुझे 12 लाख रुपये पाने हैं, पर

वह आज-कल करके टरकाता है। जब भी मै सामायिक में बैठता हूँ माला हाथ में है या आनुपूर्वी गिनता हूँ तब मन मे आता हैं- बदमाश, मुझे छका रहा है। मैंने इंसानियत के नाते पैसे दिये पर वह आज कैसा व्यवहार कर रहा है ? और उसी कल्पना मे यहाँ तक मानसिकता बन जाती है कि यदि मारने का अवसर मिले तो उसे गिराकर सीने पर बैठकर गला घोट दू।" अब विचार कीजिये कि किस कारण हो रही है ऐसी भावना ? पैसों के कारण। पर पैसे पडे रह जाएंगे साथ नही जायेगे।

वह कहता है- "पैसो के पीछे भक्ति-उपासना धूमिल हो जाती है, उपासना माला में मन नहीं लगता। ये मेरी दुविधा है। इसलिए प्रत्याख्यान करवा दीजिये।" संतों ने कहा- "प्रत्याख्यान कर लोगे तो भी विचार आ जाएंगे।" उसने कहा- "नहीं, मेरे मन मे विचार नही रह पाएगा, मै सब भूल जाऊँगा। और अब कभी भी उससे रुपये मांगूगा नहीं। यदि वह लाकर भी दे तो उन्हें पास में रखूंगा नही, सत्कर्म मे लगा दूंगा, पर रखूँगा नहीं। मैंने देख लिया है, इन पैसो का चमत्कार। जब तक प्राप्त नही होते तब तक रोना/कमाना लगा रहता है और जब आ जाते है तो सुरक्षा की चिन्ता। किसी को दे दो तो भी मानसिक तनाव कि कही डूब नहीं जाये। इसलिए शुरु से लेकर अत तक पैसों के विचार भाव को निर्मल नहीं रहने देते।

शुद्ध अवलंबन की बात बताते हुए कवि भी कहते है-

तामसी वृत्ति सहु परिहरे,
तजी अवइ जंजाल रे....।

आप कहेगे- पुराने श्रावक भी आदान-प्रदान करते थे ? ये व्यवहार है। इससे गुजरना पड़ता है, किन्तु पुराने श्रावक सहयोग देते थे, चलाकर कहते थे, चलो व्यापार करने। सम्पत्ति नहीं है, तो लो हमारी। यदि 12 वर्ष मे व्यापार मे आमदनी हो तो दुगुने लौटा देना। कौनसी गणित से ब्याज 12 वर्ष मे दुगुना होगा ? आज कितने वर्ष मे दुगुना होता है ? चार साल में। साहूकारी ब्याज मे भले चार साल, नही तो ढाई से तीन साल मे दुगुने की स्थिति बन जाती है। वे कहते 12 वर्ष में हो जाये

तो दुगुना, नही हो तो मूल पूंजी और मूल में भी नुकसान हो तो विचार करने की आवश्यकता नहीं, तकाजा नहीं। ये हैं, स्वधर्मी सेवा। देकर हम भूल जाये। न कागज संवेरने की आवश्यकता, न ही कोई टेन्शन कि डूब जायेगा या मिलेगा। पर हमारा राग है। गये भी तो कहाँ गये ? कहीं न कहीं तो उपयोग हो ही रहा है, किन्तु इतना सोच लेना भी कठिन है। कठिन इसलिए है कि हमने पैसे को पकड़ने का प्रयत्न किया है, नहीं तो दिक्कत की बात नहीं है। पैसे का उपयोग करना जान लें तो हमें परेशानी नहीं होगी। नही तो पैसा परेशानी खड़ी कर देता है।

रात को चर्चा चल रही थी। मैंने मूथाजी से पूछ लिया- कोई ऐसा श्रावक ध्यान में है जिसके यहाँ आया हुआ कोई खाली नहीं जाता। आप कहेंगे ऐसे तो राजा के भंडार भी खाली हो जाएंगे। पर ऐसे घर भी हैं। जहाँ 5, 50, 100 लेने वाले पहुॅचते हैं। 5 सामायिक के बिना मुँह में पानी नही लेना, मौन सहित सामायिक, चाहे गर्मी हो या सर्दी और आने वाले जानते हैं- 11-12 बजे व्यक्ति जमा होते हैं कि अब हमारे लिए काम चालू होगा। मुझे तो यहाँ तक जानकारी मिली है कि थपियॉ पॉकेट में लगी रहती है। नोटों को देखने की आवश्यकता नहीं। किसको कितना देना है, वही नोट हाथ में आएगा। जिसे 100 देना है, 500 देना है, वही जाएगा। पर कोई भी व्यक्ति खाली नही जा सकता। ऐसे व्यक्ति भी समाज में मौजूद है जैसे- स्वनामधन्य श्री इन्दरचन्दजी बैद, राजनांदगॉव, जो जानते हैं कि अपने पैसे का उपयोग कैसे किया जाये। ऐसे कितने मिलेंगे ? पैसे को दाँतो से पकड़ने वाले व्यक्तियो का कोई अभाव नहीं है। पर पकडकर रखने वाले नही जानते हैं कि ये टिकने वाले नहीं है और तिजोरी मे पड़ा-पड़ा पैसा भी गायब हो जाता है। पैसे के जाने के अनेक रास्ते है। भले तिजोरी में ताले हो, पैसे को जाना है तो ताले टूट जाएंगे, समुद्र मे माल लाता जहाज डूब जाएगा, आग लग जाएगी। पता नही किस-किस प्रकार से चला जाएगा। नही कुछ हुआ तो घर मे बीमारी आ जाएगी और नही चाहते हुए भी ताले खोलने पडेंगे।

वह युवक कहता है कि मैंने पैसे की परिणति को जान लिया है। मेरे ये विचार क्यो उठ रहे है, क्योंकि मैंने देखा है कि उन पैसो के

प्रति मेरा लगाव है। उसी कारण दुर्ध्यान आते है। गला घोंटने के विचार आये, इससे निकृष्ट विचार क्या हो सकते हैं और वे भी सामायिक मे, उपासना में बैठे हों तब ? यदि ये भाव उपासना में भी बने तो निंदनीय है और बिना उपासना के बने तो भी वे तिर्यंच गति के मेहमान बनाने वाले हैं। उनसे कभी ऊर्ध्व गति संभव नहीं हो सकती है। उसने प्रत्याख्यान ले लिये। लेने के पश्चात् उसे हल्कापन महसूस हुआ। जब तक व्यक्ति त्याग नहीं करता। सोचता रहता है ऐसे ही चला लूँगा तब तक उसे न शाँति मिलती है, न ही चित्त मे हल्कापन आता है। भूलो मत, ये कीटाणु पड़ा रहा तो कभी भी उछाला खा सकता है। डॉक्टर ऑपरेशन करने वाले जान लें कि कैंसर है तो वे एक भी कीटाणु नहीं छोडेंगे। जब तक चाकू नहीं लगा तब तक वे धीरे-धीरे बढ़ते हैं। पर एक बार चाकू लग गया, फिर तीव्रता से बढ़ने लगते है। प्रतिज्ञा न लो तो अंतर में वे विचार दुबके रहेंगे और जैसे ही थोड़ा सा प्रसंग भी मिला कि उछाला खाएंगे। पुराने श्रावक जो जान चुके थे वे पैसों को परमात्मा नही मानते थे। तभी तो आज के व्यक्ति का चित्रण करते हुए शांत-क्रांति के अग्रदूत गणेशाचार्य कहते थे-

पइसो म्हारो परमेश्वर, लुगाई म्हारी गुरु।

छोरा-छोरी शालिग्राम, सेवा थांरी करूँ॥

और इसी की सेवा-उपासना। बच्चे शालिग्राम हैं, पत्नी गुरु है। उन्हीं का लालन-पालन मेरे जीवन की आराधना-साधना है, किन्तु पहले के श्रावक जो सर्वथा जाग चुके होते थे, वे संपत्ति का भाव चित्त पर जमने नही देते थे। उसे आदान-प्रदान, व्यवहार का साधन मानकर चलते थे, जिससे विचारों में मलीनता आने का प्रसंग ही उपस्थित नहीं होता था।

मैं युवक के प्रत्याख्यान ले लेने के बाद की मानसिकता का वर्णन कर चुका हूँ। मैने युवक से संबंधित घटना भी विशेष प्रयोजन से आपको सुनाई है। मैने अपनी बात निर्मलता और मलीनता की स्थितियों से प्रारम्भ की थी। साथ ही मैने बाह्य और आतरिक मलीनता की विवेचना भी की थी। उस युवक के प्रसंग से मै आपके सामने यह स्पष्ट

करना चाहता हूँ कि आन्तरिक मलीनता का त्याग अत्यन्त कठिन है। जैसे- पैसे या धन के मोह का त्याग। आप पैसे के मोह के त्याग की कितनी ही गहन मानसिकता बना ले, पर उस त्याग-भावना का टूट जाना बहुत संभव है। पता नहीं कौनसी स्थिति आ जाये, मन बेकाबू हो जाये और मन की यह दुर्बलता मानसिकता पर भारी पड़ जाये। परन्तु तब भी मनुष्य अपने विचारो पर दृढ़ रह सके, मोह के आकर्षण से अपनी रक्षा कर सके, यह बहुत आवश्यक है। यद्यपि दृढ़ मनोबल के सामने कुछ भी कठिन या असंभव नही है। अपने शास्त्र ऐसे तपस्वियो की कथाओं से भरे पड़े है, जिन्होंने भीषणतम एवं चुनौतीपूर्ण स्थितियों मे भी मन को दुर्बल नही होने दिया, दृढ़ मनोबल बनाये रखा, परन्तु फिर भी पूर्ण आश्वस्ति आवश्यक है। महाभारत के प्रसग के अनुसार तो स्वयं श्रीकृष्ण ने भी शत्रुओ की प्रबलता से विचलित होकर शस्त्र न उठाने की अपनी प्रतिज्ञा को तोड़ डालने का विचार कर लिया था और युधिष्ठिर ने तो अश्वत्थामा के हताहत होने का झूठ कुटिलतापूर्वक सत्य के आवरण मे लपेटकर प्रसारित भी कर दिया था। इसलिये प्रत्याख्यान द्वारा अटूट मनोबल निर्मित करने की इच्छा बने तो स्वाभाविक ही है, क्योंकि मुख्य बात है निर्मलता की रक्षा करने की। इस प्रकार आंतरिक निर्मलता की रक्षा की बात तो सबसे बड़ी है ही।

भगवान महावीर से पूछा गया- "पच्चक्खाणेणं भंते ! जीवे कि जणयई ?" अर्थात् प्रत्याख्यान से जीव को क्या प्राप्त होता है ? तो भगवान ने स्पष्ट कहा था- "पच्चक्खाणेणं आसवदराइं निरुम्भई।" अर्थात् प्रत्याख्यान से वह आश्रव द्वारों (कर्मबंध के हेतुओं) का निरोध कर देता है। इस प्रकार भविष्य में दोष न हो उसके लिये वर्तमान मे ही त्याग, नियम, व्रत, तप आदि ग्रहण करता है।

बात मनोबल बनाने की है, किस विधि से दृढतम मनोबल बना रह सकता है, यह साधक के सोच और विश्वास का विषय है, परन्तु मलीनता के नाश और निर्मलता की प्राप्ति और रक्षा का मार्ग मनोबल से ही होकर जाता है। यह भी समझ लेने की बात है कि आंतरिक निर्मलता यदि प्राप्त हो जाये तो बाह्य निर्मलता भी स्वत: ही सुनिश्चित

हो जाती है। यहाँ आप बाह्य मलीनता अथवा निर्मलता का संबंध रूप, वस्त्र अथवा परिग्रह की निर्मलता और सरूपता से न जोड़ें। निर्मलता के संदर्भ में बाह्य निर्मलता का संबंध इन्द्रियों की चेष्टाओं अथवा क्रियाओं से जुडता है। हम कैसा बोलते हैं, क्या सुनते हैं, किन भोगों में लिप्त रहना चाहते हैं तथा ऐसी ही प्रवृत्तियाँ बाह्य निर्मलता-मलीनता की स्थिति का निर्धारण करती है। आप इस सत्य से भी परिचित हैं कि हमारी बाह्य क्रियाएँ या प्रवृत्तियाँ मन से अथवा अंतर की वृत्तियों से प्रेरित, संचालित एवं नियंत्रित होती हैं। तो जब अंतर निर्मल होगा तो बाह्य निर्मलता स्वतः ही सुनिश्चित हो जायेगी। इसलिये यदि आप धर्म के मार्ग पर चलकर आश्रवद्वारों, कर्मबंध के हेतुओं का निरोध कर मोक्ष की दिशा में गति करने की अभिलाषा रखते हैं, तो आंतरिक निर्मलता प्राप्त करने के लिये प्रतिबद्ध हों अन्यथा आप कबीर की उस फटकार के अधिकारी बन जायेंगे, जो उन्होंने बाह्य निर्मलता की चिन्ता करने वालों को दी थी-

न्हाये धोये क्या भया, मन का मैल न जाय।

मीन सदा जल में रहे, धोये बास न जाय।।

आप विवेकवान श्रावक हैं, स्वयं ही निर्मलता की प्रकृति को समझने में अब आपको कोई कठिनाई नहीं होगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

30.10.2000

❖ ❖ ❖

9. पुरुषार्थ का पर्याय

(पूज्य ज्योतिर्धर जवाहराचार्य की 126वीं जन्म-जयंती पर विशेष प्रवचन)

यह महत्त्वपूर्ण बात आपने सुनी होगी कि किसानों के यहाँ लुखी रोटी प्राप्त होती है और सेठों के यहाँ चुपड़ी हुई। इसका तात्पर्य क्या है ? सेठों को क्यों उस पर घी लगाने की आवश्यकता पड़ जाती है ? चिकनी करने की आवश्यकता क्यो पड़ती है ? सोचने की बात है। आप सोचिये ! पता नहीं आपकी सोच क्या होगी, पर मैं इस प्रश्न का समाधान आगे दूँगा।

शांति की हम बात करते हैं, शांतिनाथ भगवान की स्मृति भी करते हैं, किन्तु शांति छाया की तरह आगे से आगे भागती रहती है और हम उसे प्राप्त नहीं कर पाते हैं। हमारी सारी दौड़ निरर्थक चली जाती हैं। इसका कारण जब तक हम शांति के स्वरूप को सही तरीके से नहीं समझ लेते हैं, तब-तक शांति प्राप्त नहीं होगी। शांति के स्वरूप को समझ नहीं पाने की स्थिति में यदि वह प्राप्त हो भी जाये, तो हम कैसे समझेंगे कि वह शांति है। जैसे- किसी को हीरा प्राप्त हो जाये पर वह हीरे का पारखी न हो तो वह हीरे को भी सामान्य पत्थर समझकर चिड़िया उड़ाने में फेक देगा। वैसे ही वह भी शांति की अवस्था का लाभ उठा नहीं पायेगा, क्योंकि वह जानता ही नहीं होगा कि वह विशिष्ट मानसिक स्थिति उसे किसी बड़े सौभाग्य से मिली है। उस स्थिति मे वह शान्ति का सुख भी उठा नही पायेगा।

आज युगदृष्टा, युगसृष्टा पूज्य जवाहराचार्य का 126वां जन्म दिवस है, अर्थात् आज 125 वर्ष पूर्ण हुए हैं और आज ही 126वॉ वर्ष प्रारभ हो रहा है। उनसे सबंधित बहुत सी बाते आपने पूर्व वक्ताओ से सुनी है, पर जितनी भी सुनी वे कम ही होगी। परदों पर भी आप देखते हैं, लिखा है, "थाँदला में जन्म हुआ।" हम किसी व्यक्ति को देख रहे

हैं, पर मेरी निगाह व्यक्ति पर नहीं है, मै कुछ और ही देख रहा हूँ। मुझे दिख रहा है कि व्यक्ति का नहीं किन्तु व्यक्ति के रूप में शक्ति का आज जन्म हुआ था। शक्ति का, पुरुषार्थ का जन्म हुआ था। यदि मैं कहूँ कि जवाहराचार्य पुरुषार्थ के अप्रतिम प्रतीक थे, तो भी मेरे ख्याल से कोई अतिशयोक्ति नही होगी।

पूज्य जवाहराचार्य क्यो लगाते हैं युगदृष्टा, युगप्रवर्तक ? उन्होने युग चेतना के निर्माण का कार्य किया, इसलिए उन्होंने अल्पारंभ-महारंभ, नारी जीवन, गृहस्थ-धर्म आदि की गंभीर विवेचना दी। उन्होने क्या नहीं कहा यह बताईये ? जो बहुत कहता है वही युगदृष्टा होता है ? युगदृष्टा अर्थात् जिसकी दृष्टि युग पर हो, युग कि कोई भी प्रवृत्ति, विषय जिससे ओझल नहीं रह पाया हो, वह होता है युगदृष्टा। आचार्य जवाहर की दृष्टि रीति-रिवाजो पर तो थी ही, रूढ़ियों पर भी थी। जिन-जिन रूढ़िय से उन्होंने पतन होते देखा, उन-उन रूढ़ियों के उन्मूलन की उन्होंने युग को, देश को और समाज को प्रेरणा दी। उन्हे दूर करने की दिशा दिखाई गलत परम्पराओं और मान्यताओं को दूर कर सही राह दिखाना, यह होत है युगदृष्टा, युगप्रवर्तक का काम। यही कार्य जवाहर ने किया। उन्होंने न केवल श्रावक समाज को दिशाबोध दिया बल्कि साधुओं को भी चेताया। उन्हें मार्मिक अपील द्वारा समझाया कि यदि फिरकेबाजी और अलग-अलग शिष्य-परम्परा चलती रही तो मूल में घात की स्थिति बनेगी। समाज के टुकड़े होंगे। ऐसी स्थिति में एक साधु अपने शिष्य बनाता है, दूसरा अपने शिष्य, तो फिर श्रावक समाज के टुकड़े होते हैं। एक कहेगा ये श्रावक मेरे हैं, दूसरा कहेगा ये श्रावक मेरे हैं। इस प्रकार समाज के विघटन की स्थिति उत्पन्न हो जायेगी। उन्होंने जोर देकर कहा कि यदि समाज की एकता देखना चाहते हैं तो पहले साधुओं को अपनी कुर्बानी देनी होगी। एक आचार्य के नेतृत्व में जब सभी होंगे तो फिर समाज का रूप कुछ और ही होगा और एक समय ऐसा रूप हमारे सामने भी था। जिसने जवाहर के स्वप्न को लगभग साकार रूप दिया था, किन्तु हमारी ही लिप्साओं और महत्त्वाकांक्षाओं ने उस स्वप्न को पूर्णत: साकार होने से पहले की तोड़ दिया, छिन्न-भिन्न कर दिया। उसी

का नतीजा हमारे सामने है। स्थानकवासी समाज की क्या दशा हुई है ? लोग कहते हैं- मंदिरमार्गी मंदिरों में जाकर उपासना कर लेते है, पर स्थानकवासी समाज में फिरकेबाजी बनी हुई है। युवा परेशान है कि किस ओर धर्म की स्थिति जाने ? धर्म का मूल कहाँ है ? अलगाववाद मे क्या धर्म का बीज है ? वह कहाँ है, यह हम समझा नही पा रहे हैं। अभी तक हमारी नींद उड़ नहीं पायी है। आने वाला युग हमारे सामने जो विषम और कठिन स्थितियॉ, चुनौतियाँ लेकर आ रहा है, उन्हें हम अनदेखा कर रहे हैं। आसन्न समस्याओं को सफलझाने के लिए हमारे कर्णधार क्या सोच रहे हैं ? क्या विचार कर रहे हैं ? पता नही। मेरे ख्याल से किसी को सोचने की फुर्सत ही नही है। सबकी अपनी ढपली और अपना राग है, जिसमें वे मस्त हैं। ऐसे मस्त बने रहे तो फिर आने वाली चुनौतियो का सामना नहीं किया जा सकेगा। इसलिये आज से ही सोचने का मानस बना लेना चाहिये।

आचार्य जवाहर के पुरुषार्थ का आदर्श हमारे सामने हैं। हम उससे प्रेरणा और शक्ति ले। बालवय मे ही उनके माता का स्वर्गवास हो गया था, फिर पिता का भी वियोग हो गया। मामा संरक्षण मे लेकर गये तो उनका भी वियोग हो गया। कहेगे कैसी कालसर्प संतान थी सभी को डस लिया। आज कोई नई बहू लेकर आये और ऐसी कोई बात हो जाये तो जिन्दगीभर उसका जीना हराम हो जायेगा। आये दिन व्यंग्य सुनने को मिलेगे ये तो कालसर्पिणी है। आते ही पति को डस लिया, सासू को ग्रस लिया, सारे परिवार को ग्रस लिया। पता नहीं और क्या-क्या सुना देगे। एक तो पहले ही वह बाल-विधवा वैधव्य का दुःख भोग रही हो, ऊपर से ऐसे तीखे-तीखे व्यंग्य बाण ! वे कैसे कलेजे को चीर देते हैं। पर सुनाने वालो को तो मजा-आनद आता है। वे यह नही सोच पाते कि उसके भीतर भी चेतना है। वह कैसे अपने वैधव्य दुःख को समेटकर जीवनयापन कर रही है। आपके कुल की इज्जत-आबरू को बचाने के लिए अपने सीने पर पत्थर रखकर चल रही है। इसके बावजूद समाज-परिवार को चैन नही पड़ता और उसे प्रताड़ना की भट्टी मे झोक देते हैं। आचार्य देव ने देखा कि ऐसी बहिने परिवार से मर्माहत

होकर वेश्यावृत्ति स्वीकार करने को भी विवश हो जाती है। उन्होंने ऐसी अभिशप्त बहिनों को सदाचार का प्रतिबोध दिया और वे बहिनें उस धंधे को छोड़कर शुद्ध सात्विक जीवन स्वीकार कर जीने के लिए प्रस्तुत हो गई। ऐसी अभिशप्त बहिनों को सम्मानपूर्ण जीवन जीने के अवसर प्रदान करने के लिये उन्होंने समाज को प्रेरित एवं प्रतिबोधित किया। आचार्यदेव के मानववादी चिन्तन का यह एक छोटा-सा उदाहरण है।

आचार्यदेव के विषय में कुछ भी कहना सूर्य को दीपक दिखाना है। हम ऐसा कर भी कैसे सकते हैं ? क्या असीम को सीमा में आबद्ध किया जा सकता है ? पर जब प्रसंग सामने आते हैं तब हम उनके व्यक्तित्व को प्रकट करने का अल्पप्रयास करते ही हैं। यह अलग बात है कि लड्डू गरिष्ठ है, पूरा हजम नहीं कर सकते, पर थोड़ा-सा अंश लेकर स्वाद तो चखा जा सकता है। ताकत तो ली जा सकती है। वैसे ही आचार्य जवाहर का जीवन जितना भी प्रस्तुत किया जाये, वह हमारी चेतना को जागृत करता है, हमे प्रेरणा और शक्ति देता है। इस स्थिति में हमारे मुँह से स्वतः निकल जाता है-

युग अवतारी, पूज्य जवाहर प्यारे।
थे मालव भू की शान, धर्म उजियारे।।

छोटी उम्र में माता, पिता और मामा के वियोग ने उन्हें चिन्तनशील बना दिया था। वे सोचने लगे- ये क्या है ? क्या इसी का नाम दुनिया है ? यदि यही इसका सत्य है तो ऐसे जन्म-मरण के चक्कर में चलने से लाभ ही क्या ? चिन्तन गहन हुआ तो माया-मोह की भावनाएँ छूट गईं और संयम का मार्ग दिखाई देने लगा। पर दायित्व बोध ने पैरो में बेडियाँ डाल दी। सोचा- मामा का लड़का छोटा है, उनके परिवार की सार-संभाल भी आवश्यक है, जिस समय मेरी 5 वर्ष की उम्र थी, तब इसी परिवार ने तो सहारा दिया था। उसे अधर में कैसे छोड़ा जा सकता है। जैसे ही मामा का लडका तैयार हो गया, आपने अपनी इच्छा व्यक्त कर दी- मै सयम स्वीकार करना चाहता हूँ। बहुत रोडे अटके, बाधाएँ भी आईं, पर पुरुषार्थी के लिए बाधा केवल उसके पुरुषार्थ को सान पर चढ़ाने का काम करती है। जैसे सान पर चढ़कर

कैंची चाकू आदि तेज हो जाते हैं और जैसे सूई की नोक तीखी होने स वह कपड़े मे झट घुस जाती है, वैसे ही बाधा व्यक्ति को नई धार देत है, ताकि वह नये जोश से गतिशील हो सकें। कायर के लिए जो बाधाएं पहाड़ बनती है, जिन्हें वह लाँघ नहीं पाता वे ही पुरुषार्थी के लिए चुनौतियाँ बन जाती हैं। उसका एक ही लक्ष्य रहता है- चरैवेति-चरैवेति चलते चलो जो कदम आगे बढ़ा दिये, बढ़ाते चलो।

जो बढ़े कदम वे ना पीछे हटेंगे।
महावीर के हम सिपाही बनेंगे....।

पर महावीर का सिपाही बनना मामूली बात नहीं है। पहले लोग कहते थे कि सवा हाथ का कलेजा चाहिए, तब जाकर पुलिस में देश रक्षा के लिए भरती हो सकती है। उनके लिये कलेजे का नाप लेते हैं या नहीं ? वहाँ हर किसी को भर्ती नही किया जाता। तो फिर महावीर का सिपाही बनना कैसे सरल हो सकता है ? नंगी तलवार की धार पर चलना फिर भी सरल है, किन्तु महावीर का सिपाही बनना बहुत कठिन है। वहाँ नंगी तलवार पर हंसते-हंसते चलना होगा और मन में विचार भी पैदा नहीं होना चाहिये कि नगी तलवार पर पैर रखा तो पैर में घाव हो जायेगा। क्या स्थिति बनेगी ? जो ऐसा सोचेगा वह वहीं किनारे पर रुक जायेगा, धार पर चढ़ नहीं पाएगा। महावीर का सिपाही बन नहीं पाएगा। महावीर का सिपाही वही बन सकता है जो यदि कदम बढ़ा ले तो पीछे हटाये नहीं।

जवाहर बन गये महावीर के सिपाही, हो गई उनकी दीक्षा श्री मगनमलजी महाराज के पास। किन्तु कर्मों का संयोग या प्रकृति की टेक- गुरु का भी वियोग हो गया। प्रकृति कहती है, कितनो की ही सहायता ले ले, पर पुरुषार्थ तो तुझे ही करना है। तूं किसी सहारे की खोज मत कर। तू कैसे मान रहा है कि तू बेसहारा है ? उस समय एक झटका भी लगा। मस्तिष्क मे यह विचार बैठ गया था कि गुरु बिन ज्ञान नहीं मिलता, मेरे गुरु नही रहे, अब कौन ज्ञान देगा, किससे बोध मिलेगा ? कौन सारणा-वारणा-धारणा से जीवन का नक्शा तैयार करेगा ? मै नगुरा हो गया। नगुरे का मोक्ष मार्ग पर बढ़ने का, मंजिल पाने

का सौभाग्य कैसे प्राप्त हो सकता है ? महाभाग श्री मोतीलालजी महाराज के, जिन्होंने ऐसी अनोखी सेवा-सुश्रूषा की कि मुनि जवाहर के मस्तिष्क को जो झटका लगा था उससे वे उबर पाये, साथ ही उन्होंने मुनि जवाहर को आश्वस्त भी कर दिया कि यदि गुरु नही रहे तो कोई बात नहीं, उन्हें बहुत कुछ करना है। माता-पिता, मामा और गुरु का ऋण उतारना है। जवाहर सभी ऋणों से उऋण हो सके ऐसे कार्य उन्हें अपने जीवन मे करने थे।

आचार्य जवाहर की प्रखर प्रतिभा बचपन मे कैसी थी, उससे भी आपको परिचित करा देना मै आवश्यक समझता हूँ। कहावत है- 'पूत के पाँव पालने में ही दिख जाते है।' ऐसा ही कुछ बचपन में जवाहराचार्य ने प्रमाणित किया। उस अवयस्क अमावस्या के घने अधकार मे कह दिया जाता कि अमुक नंबर का कपड़े का थान निकालना है तो उनका हाथ लगते ही वही कपड़ा आता था, जिसका कहा गया होता था। ऐसी प्रतिभा बचपन से ही उनमें रही थी। बचपन की बहुत-सी घटनाएँ उनके जीवन निर्माण मे महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करने वाली बनी। इस संबंध मे एक उदाहरण दे रहा हूँ।

आचार्य जवाहर ने स्थापित किया कि कई जगह स्वय करने की अपेक्षा किसी दूसरे से करवाने में पाप ज्यादा हो जाता है। कोई कहता है, घर मे रोटी नहीं बनाना। चूल्हा जलाने में बहुत पाप लगता हैं, पर आचार्य जवाहर ने स्पष्ट किया कि यह मिथ्याधारणा है कि घर में भोजन न बनाकर होटल से लाकर खाने मे पाप नही लगेगा। उन्होने प्रमाणित किया कि ये सोचना ही मूर्खतापूर्ण है। यह सोचना स्पष्ट करता है कि धर्म को हम समझ ही नहीं पाये हैं। उन्होने अपने जीवन का यह उदाहरण दिया कि एक बार मामाजी (या बाबाजी) ने उनसे कहा कि भग की पत्ती ले आ। मालवा में भग की पत्ती काम में लेते थे। मामाजी भी भंग की पत्ती लेते थे। वे पत्तियाँ तो ले गये, परन्तु बहुत सारी लेकर आ गये। मामाजी ने देखा तो कहा- ओहो ! ये इतनी ले आया ! मै जाता तो आवश्यकता थी उतनी ही लाता।'' उनका यह अनुभव धर्म के क्षेत्र मे काम मे आया। यह नीति की शिक्षा देने वाला भी बना। यह स्पष्ट

करता है कि काम स्वयं के बजाय नौकर से करवाने या होटल से भोजन लाने में पाप का बंध ज्यादा हो सकता है, क्योंकि परिज्ञा, बुद्धि, विवेक का अतर पड़ता है। नौकर कितना विवेक रख सकता है ? यदि विवेक नहीं है तो अविवेकी नौकर किस रूप में क्या काम करेगा इसकी कोई गारण्टी नहीं और उसका अविवेक जितना बड़ा होगा उतना ही बड़ा पाप बंध वह करवायेगा।

आचार्य श्री श्रीलालजी म.सा. ने एक वकील सा. को सौगन्ध करवाई कि पत्थर नहीं खाना। भोजन करने बैठे तो एक कटोरी मे इल्लियॉ, लटे रखी हुई थीं। उन्होने पूछा- ये क्या है ? सेठानी ने कहा- "त्याग का फल है।" रोज नौकर काम करता था। देखा नहीं देखा और डाल देता था। कितनी इल्लियाँ धीरे-धीरे रोटी चावल के साथ पेट मे पहुँच जाती होगी ? कौन वहाँ प्रतिलेखन करे कि एक-एक चीज को देखकर भोजन करे। यहाँ तो थाली सामने आयी, फुर्सत कहाँ भोजन प्रारंभ कर दिया।

पूज्य गुरुदेव फरमाते थे- मनुष्य का तन मिला है, थाली पर बैठकर भावना भाओ। नहीं तो पशु भी बांटा देखकर दौड़ता है, मनुष्य भी दोड़े तो पशु व तुम्हारे में क्या अंतर रहेगा ? भोजन आया है, नवकार मंत्र का स्मरण कर, भावना भाकर शांत-प्रशांत मन से भोजन करो। मन में बुरे भाव, उठा-पटक की बात हो तो खाने नही बैठना है। यदि वैसी स्थिति में भोजन कर लिया तो अंदर जाकर वह जहर का कार्य करेगा। इसलिए भोजन करने से पूर्व देखो कि विचार कैसे है ? यदि भाव शुभ हैं तो भावना भाकर शांतभाव से भोजन करे, तो वह भोजन अमृत का काम करेगा, नही तो बादाम की कतली और जयपुर का मिश्री मावा भरपेट खा लें तो भी वह भोजन जहर का काम कर सकता है। यदि अशात भाव में रहते हुए भोजन किया तो वह जीवन मे रस देने वाला नहीं, किन्तु विकार पैदा करने वाला बनेगा। ये बाते विचारणीय हैं, किन्तु बहुत कम लोग इनकी ओर ध्यान देते हैं।

आचार्य जवाहर ने विवेचन किया कि यदि हाथ से कार्य करेंगे तो बचाव की स्थिति रहेगी। श्राविकाजी ने बताया कि आपने प्रत्याख्यान

लिये, जिससे यह लाभ हुआ। मैंने अपनी आँखो से देखा तो इतने जीव व पत्थर निकले। वकील साहब कहने लगे- महापुरुषों के वचनों में कितना गहरा रहस्य छुपा होता है। उन्होंने प्रत्याख्यान तो पत्थर के करवाये पर मेरी आँखें खोल दीं। आज तक आँखें बंद थी। पेट क्या है ? जैसे बड़े शहरो में कचरा-पेटियो पर लिखा रहता है- 'यूज मी', मुझे यूज करिये, जो चाहो डाल दो। भाव नहीं है, पर समय हो गया है। अंदर से पेट लाल झंडी दिखा दे तो भी उसे कहेंगे- रुक जा। जैसे कोई किराये की बस ले जाये, जिसमे जगह नहीं बचे तो भी पीछे लटक कर और जहॉं 50-50 की जगह हो वहाँ 70-75 भरकर ले जाते है। संतोष नही होता, यही हालत पेट की है। चार की खुराक है पर एक-आध चीज ऐसी आ गई, जो जीभ को अच्छी लगे उतारते चले जाएंगे। पेट कहे अब नहीं, किन्तु नई चीज आ गई, मन कहेगा थोड़ा तो ले लो। लाल झंडी भी हटा दो, अभी तो चलने दो। ऐसी हालत पेट की बना रखी है, फिर कहे बीमारी न हो। बीमारी नहीं आएगी तो क्या होगा ?

मूल बात पर आईये, आचार्य जवाहर ने छोटी वय में जो अनुभव किया उसे धर्म से जोड़कर विवेचन दो। कोई सोचे कि रसोई बनायेगे तो पाप होगा इसलिए दूसरे से बनवा लिया जाये तो पाप नहीं होगा, यह चिन्तन ही भ्रामक है। क्योंकि करना भी पाप है, कराना भी पाप है और अनुमोदन भी पाप है। कभी ऐसा भी हो सकता है कि करने से कराने में पाप ज्यादा हो। मैं आपको एक वकील साहब का उदाहरण दे चुका हूँ। अविवेकी से काम करवाया तो ज्यादा पाप की संभावना रहती है।

जवाहर की प्रखर प्रतिभा ने उनके सोच को वैज्ञानिक बनाया था। उन्होने कहा- मुझे अपने संतो को पढाना है, क्योंकि यदि शास्त्र का ज्ञान साधु को नही होगा तो साधु आचरण कैसे कर पाएगा ? उन्होने समय की नब्ज पहचानी। पंडितो से साधुओं के अध्ययन की व्यवस्था की। पू श्री गणेशीलालजी म सा व श्री घासीलालजी म सा अध्ययन कर प्रकाण्ड विद्वान् बने। अपेक्षित अध्ययन के अभाव मे हम लकीर के फकीर बनकर रह जाते हैं। परन्तु उनका यह दृष्टिकोण रहा था कि गृहस्थ पंडित अक्षर का ज्ञान तो दे सकता है, किन्तु आगमिक रहस्यो

का ज्ञान नहीं। उनकी मान्यता थी कि साधु को संस्कृत का गहरा अध्ययन करना चाहिये, इसलिए उन्होंने दो शिष्यो को संस्कृत का अध्ययन करवाया। यद्यपि साधु तो और भी थे, पर उनमें से दो को ही अध्ययन करवाया। आचार्य जवाहर ने स्पष्ट कहा कि जो ज्ञान गुरु देता है वह ज्ञान भाडे वाला गुरु नहीं दे सकता, क्योंकि गुरु का शिष्य के साथ वात्सल्य का भाव जुडा होता है, जबकि भाड़े वाले गुरु का वैसा भाव नहीं हो सकता। इस कथन मे व्यक्त भावना देखिये-

सुयं मे, आउसं ! तेणं भगवया एवमक्खायं

कितना वात्सल्य है- हे । आयुष्मान्, सुनो, मैंने जो भगवान महावीर से सुना है. । गहन वात्सल्य भाव उड़ेलकर जो ज्ञान दिया जाता है, वह ज्ञान गुरु से ही प्राप्त हो सकता है। वैसा ज्ञान अमृत का काम करता है।

आज के व्याख्यान के प्रारंभ में मैंने आपके सम्मुख एक प्रश्न खड़ा किया था- आपको रोटी पर घी लगाना पड़ता है, किसानो की रोटी लुखी होती है, क्यो ? पता नहीं आपके मन में कौनसा उत्तर होगा, मेरा समाधान यह है- किसानो मे वात्सल्य भाव होता है, इसलिए चिकनी-चुपडी करने की उन्हें आवश्यकता नहीं होती, किन्तु हमारे परिवारो मे वात्सल्य प्रेम नहीं है, पिता वृद्ध है, सेवा नहीं करे तो समाज क्या कहेगा। इसलिये सेवा का दिखावा तो करते हैं, पर क्या अतर से भी वह सेवा भाव जुडा होता है ? यदि नही, तो ऊपर से चिकनी-चुपड़ी बाते करनी पड़ेगी। अंतर का स्नेह नही हो तो ऊपर का स्नेह लगाकर उसे कोमल बनाने का प्रयत्न करना पडता है। पर किसानो मे आत्मीय स्नेह होता है तो उन्हे ऊपर से चिकनाई लगाने की जरूरत नही होती। बिना चुपड़ी वह रोटी भी कैसी मधुर लगती है, यह तो खाने वाले ही अनुभव कर सकते है। कई बार भाई उन रोटो को देखते हैं, समझ नही पाते। वे कहते हैं- महाराज ! कैसा कष्ट कैसे खाते होगे । कभी खायी नही तो स्वाद जानेगे कैसे कि वह कैसी मधुर होती है। तुमने अब तक जिन्हे खाया है, उनसे असली तत्व प्राप्त नहीं होता। चापड़ निकल गया फिर बचा क्या ?

आचार्य पू श्री श्रीलालजी म सा ने देखा, हालांकि उम्र ज्यादा

नही थी, पर वे ब्रह्मऋषि थे। छोटी उम्र में शादी कर दी गई थी। वे जानते ही नहीं थे कि शादी क्या होती है ? वह जीवन की बरबादी होती है या आबादी। आज भी मेरे ख्याल से बहुत से नहीं जानते कि शादी करके जीवन आबाद होता है या बरबाद। यदि अब जान लिया कि बरबाद होता है तो पोते की मत करना। आप बरबाद हो गये तो उसे तो मत करना। पर हमारी तो आदत है, मैं बरबाद हुआ तो वह आबाद कैसे रहे ?

इस संबंध में एक दृष्टांत सुनाता हूँ। एक भाई जा रहा था। सोने की अशर्फियाँ नोली में बंधी हुई थीं। जंगल में रीछ मिल गया। उसने सुन रखा था कि रीछ पीछे पड़ जाये तो छोड़े नहीं और यह भी सुन रखा था कि उसके कान पकड़ लो तो पालतू कुत्ते की तरह दुम हिलाता रहेगा। उसे भय तो लग रहा था पर सोचा प्रयत्न करना चाहिये। कान पकड़े और उछलकर पीठ पर बैठ गया और जैसे स्कूटर के हैंडिल पकड़ते हैं उस प्रकार कान मरोड़ कर चलाने लगा। इधर उसकी अशर्फियों की नोली खुल गई। धीरे-धीरे अशर्फियाँ खिसक रही थीं। बनिये का दिल दहल गया। महाश्रमणीरत्नाजी से आप सुन चुके हैं कि 7 मण सोना गोदावत परिवार का सरकार ट्रको में भरकर ले गई। कितना भी ले जाये, साधु को मतलब नहीं है, पर गृहस्थ की एक थैली भी इधर से उधर हो जाये तो मन मानता नहीं। यदि रोकड़ न मिले तो वह पक्का बनिया कैसा ? कुंजडे का धंधा नही है। अठन्नी-चवन्नी का अंतर आ जाये तो कोई बात नही। वहाँ एक धेली का अंतर नहीं आना चाहिये, यदि महाजन की पेढ़ी है। उसका भी मन ऊँचा-नीचा होने लगा। इतने में सामने से दूसरा व्यक्ति आता दिखा। उस दूसरे व्यक्ति ने आश्चर्य से देखा- ये क्या है ? ये अशर्फियाँ ! रीछ पर सवार व्यक्ति ने कहा- "तू नहीं जानता, ये चमत्कारी रीछ है। ये अशर्फियाँ उगलता है, कान मरोड़ने से। इतनी देर से मैं निकाल रहा था, इसलिए मैं इनका अधिकारी हूँ। तुम्हें प्राप्त करनी है तो अब तुम कान मरोड़ो। जितनी चाहिये निकाल लो।" बस, स्वयं उतर गया और उस भोले आदमी को बिठा दिया। अपनी अशर्फियाँ इकट्ठी की। दूसरा व्यक्ति उससे बोला- भाई अशर्फियाँ निकलती नहीं है। अरे मूर्ख ! कभी रीछ अशर्फी उगलता है ? वे तो

मेरी गिर गई थीं। मेरी दशा कैसी हो गई होगी, सोच लो। मैने तो निवृत्त होने के लिए तुम्हें कान पकड़ाये। जैसे मै निवृत्त हुआ हूॅ वैसे ही तूं भी किसी को कान पकड़ा देना।'' तो भाईयो, अपनी बरबादी तो की पर पोते की मत करना।

आचार्य श्री श्रीलालजी म.सा. ने हिदायत दी है कि शादी आबादी नहीं बरबादी है। उनकी शादी हुई फिर भी वे ब्रह्मचारी बने रहे। हथलेवा तो जुडा उसके अलावा कभी मानकंवर बाई का स्पर्श नहीं किया। घर वालों ने एक बार उससे कहा कि तू तो धर्मपत्नी है, तुम्हें पंचों के सामने हाथ पकड़कर लाये हैं। तूं क्यों नहीं जाती। श्री श्रीलालजी अलग भाग में रहते थे, स्वाध्याय करते थे। द्वार खुला देखा तो वह चली गई और नाल का द्वार बंद कर दिया। आचार्यश्री ने देखा- एकांत में नारी का संयोग ठीक नहीं है। वे कमरे से बाहर निकले। छलांग लगा दी, मकान के सामने पोर्च पर गिरे। आवाज आई। मानकंवर बाई का कलेजा धक् से रह गया। परिवार वालो ने कहा- ''तूं क्या करता है ?'' उत्तर दिया- ''मैंने पहले ही कह दिया था। मैं साधु जीवन स्वीकार करना चाहता हूँ। आज्ञा नही दे रहे हैं, इसलिए मैं रह रहा हूॅ किन्तु मेरी अंतःभावना साधु जीवन की है। मै सांसारिक प्रपंचों में फँसने वाला नही।'' मानकवर बाई हतप्रभ रह गईं। फिर कभी वैसा साहस नही किया। सोच लिया मैं उनकी साधना मे बाधा क्यो दूँ।

आपने कथाओ मे सुना-पढ़ा होगा कि विजय सेठ-विजया सेठानी एक की शुक्ल पक्ष की प्रतिज्ञा, दूसरे की कृष्ण पक्ष की प्रतिज्ञा। पर यहाॅ न तो कृष्ण पक्ष की प्रतिज्ञा है, न शुक्ल पक्ष की, फिर भी अडोल प्रतिज्ञा थी, क्योंकि जान लिया था कि एक बिन्दु का पात भी मरण करने वाला होता है।

ऐतिहासिक पृष्ठो मे पढा होगा कि पुष्पचूल और पुष्पचूला के आपसी प्रेम को देखकर राजा ने सोचा यदि ये अलग हो गये तो एक दूसरे के बिना रह नही पाएगे। उन्होने काफी चिन्तन किया। जनता को समझाकर भाई-बहिन का विवाह कर दिया ? आज सोलह सतियो मे पुष्पचूला की गणना होती है। सक्षेप मे कथा सुन लीजिये।

भाई का नमा पुष्पचूल। आपसी प्रेम इतना था कि पिता समझ नहीं पा रहे थे कि अगर ये अलग हो गये तो जीवित रह भी पाएगे या नहीं। इसलिये समाज को त्यागकर उनकी परस्पर शादी कर दी। शादी की प्रथम रात दोनो पहुॅचे। बहिन ने कहा- "भैया ! रिश्तो मे परिवर्तन हो सकता है, पर भावो मे परिवर्तन नही हो सकता। रिश्ते से अब तक तुम भाई थे, मै बहिन थी। अब आप पति हो, मैं पत्नी हूँ। पर हमारे विचारों के संबंध तो वो के वो ही है। क्या पति-पत्नी का प्रेम बिना बिन्दुपात के सुरक्षित नहीं रह सकता ? और वह सुरक्षित रहा।" जो भाई के रूप में था, वही पति के रूप मे रहा विशुद्ध प्रेम। क्या हम विषय-वासना के पुतले हैं ? क्या यही जीवन की प्रक्रिया है ? विषय-वासना में फँसकर हमारा जीवन बरबाद होता है-

सल्लं कामा विसं कामा कामा असीविसोवमा।
कामे थोए पत्थेमाणा आकाम जन्ति दोग्गइं।।

आग में जितना ही ईंधन डालो, आग की तृप्ति होती नहीं है। जितना ईंधन, घासलेट, करोसीन मिलेगा, उतनी अधिक जलती चली जाएगी। यदि अवस्था विषय-वासना की है। जितना ईधन डालें, भड़कती चली जाएगी। इसीलिए भगवान महावीर ने कहा- इन्द्रियो पर निग्रह करो।

अप्पा चेव देमयव्वो, आपा हु खलु दुद्दमो।
अप्पा दन्तो सुही होइ, अस्सि लोए परत्थ य।।

पहले चित्तवृत्ति पर संयम करो। पर हम ज्यादातर इन्द्रिय विषयों के गुलाम बने रहते है। किन्तु आचार्य श्री श्रीलालजी म.सा. ने चित्तवृत्तियो पर अधिकार किया इसलिए वे ब्रह्मऋषि बने। जब देखा अब शरीर क्षीण हो रहा है तो सवर की सारणा-वारणा-धारणा के लिए चारो ओर दृष्टि डाली। ढूंढने के लिए कि कौन ऐसा महाभाग है जिसे भार सुपुर्द करूँ। आचार्य श्री श्रीलालजी म.सा संघ के लिए सोच करते हैं।

संघ की बात मै कई बार कह चुका हूँ। आज पुनरावृत्ति नही कर रहा हूॅ। कभी लोग कहते हैं आचार्य को क्या ममता ? ममता नही ये संघ की सेवा है। वे संघ को अनाथ करके नही जाये। आगमो मे आया है कि आचार्य की साधना का निष्कर्ष ये होता है कि उत्तराधिकारी

का सही चयन कर दे। इसलिए एक आचार्य से दूसरे आचार्य का दीप जलता चला जाता है। आचार्य के दीप से फिर कितने दीप जलते हैं ? आचार्य श्री श्रीलालजी म सा. विचार करते हैं कि किन सशक्त हाथों मे बागडोर सौंपी जाये। चारो ओर दृष्टि डाली तो दृष्टि कहाँ गई ? मुनि जवाहर पर। वे महाराष्ट्र मे विचर रहे थे। वहाँ रतलाम के भाई वर्धमानजी पितलिया एवं बालचन्दजी श्री श्रीमाल पहुँचे। मुनि जवाहर को आश्चर्य हुआ। आज ये ! ये सहसा आते नहीं है, आज आये हैं मतलब कोई न कोई बात है। उन्होंने बातचीत की और बताया कि आचार्य पूज्य श्री श्रीलालजी म सा. ने आपको युवाचार्य बनाने का विचार किया है। मुनि जवाहर ने कहा- "मुझमें ऐसी योग्यता, क्षमता सामर्थ्य नहीं है। मै ऐसे विशाल संघ को चलाने का साहस जुटा नहीं पाता हूँ।" उन्होने कहा- आचार्यश्री की आज्ञा को आप कैसे ठुकरा सकते हैं। आप आचार्यश्री की आज्ञा मानते हैं या अनाधिकार चेष्टा करना चाहते हैं ? ये आचार्यश्री की आज्ञा है, पालन करना विनयवान का कर्त्तव्य होता है।" श्री जवाहरलालजी म सा. ने कहा- आज्ञा सिर माथे पर है, पर जब तक मैं उनके दर्शन न कर लूं निर्णय स्थगित।"

वे विहार करके पधारते हैं। इधर आचार्य श्री श्रीलालजी म सा. उदयपुर से विहार करते हैं, मुनि जवाहर महाराष्ट्र से विहार करते हुए पहुँचे हैं, रत्नपुरी। आचार्य श्री श्रीलालजी म सा. सामने आये, आचार्य जवाहर को आने मे विलम्ब हुआ, क्योंकि मार्ग लबा था। मुनि जवाहर के रत्नपुरी मे प्रवेश के समय अनेक संत अगवानी के लिए पहुँचे। जैसे ही जवाहर को देखा और वे जैसे ही पू श्री श्रीलालजी म.सा को वदन करने के लिये तैयार हुए वैसे ही श्री श्रीलालजी म सा ने कहा- "जवाहर ! महाराष्ट्र जाकर मुझे भूल ही गया।" और उठाकर बाहो मे भर लिया। जिन नेत्रों ने वो दृश्य देखा वो कहते है कि हजारो हजार नेत्र रूप कैमरे उस दृश्य को हृदय पर अंकित कर रहे थे। ये था आत्मीय वात्सल्य भाव। मुनि जवाहर को अगवानी कर लाये, फिर चतुर्विद संघ में हर्ष की लहर व्याप्त हो गई। बातचीत हुई। मुनि जवाहर ने कहा कि मुझे माफ करें, जो सक्षम हो उसे सभलाईये, मेरे मे सामर्थ्य नहीं है।"

पूज्यश्री ने कहा- "तुम्हे कुछ करना नहीं है ये तो व्यवस्था है, इसलिए कर रहा हूँ। मै तुम्हें बोझिल नहीं करना चाहता। काम तो मैं करूँगा। मुनि जवाहर भी आखिर कब तक मना करते। फिर वह दिन भी आ गया। आचार्यश्री जैतारण मे एवं मुनि जवाहर भीनासर में विराज रहे थे। वह समय था आषाढ सुदी 3 का। कालचक्र ने ब्रह्मऋर्षि पूज्य श्री श्रीलालजी म सा पर प्रहार किया। आचार्यश्री का स्वर्गवास हुआ। मुनि जवाहर आचार्य जवाहर बने।

आचार्य बनने के बाद श्री जवाहराचार्य ने बहुत संघर्ष झेले। वे सिद्धान्त विरुद्ध बातों का खंडन करने वाले थे। सिंह की तरह वे निडर भाव से विचार व्यक्त करते थे। रंचमात्र भी भय का संचार उनमें नही होता था। चाहे जड़ पूजा हो या दयादान विरोधी बातें रही हों, वे सचोट उत्तर देते थे। यदि कटु-विवाद का प्रसंग होता तो आचार्यदेव सत्यधर्म के रखवाले बनकर रहते थे। उन्होंने अल्पारंभ-महारंभ को परिभाषित किया और बहुत ही सरल व्याख्याएँ जनहित के लिए दी हैं। उन्होंने कहा- कथनी-करणी एक होनी चाहिये। यदि समाज का कल्याण चाहते हैं तो आवश्यक है कि हम एक आचार्य के नेतृत्व में रहें। वि.सं. १९८४ में ये विचार आचार्यदेव ने संघ में रखे और जो इन्हे स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं हुए उनके लिए यह व्यवस्था दी कि जो स्वीकार नहीं करेगा भविष्य में उसकी सेवा-सुश्रूषा की जवाबदारी संघ की नहीं होगी, क्योंकि जो संघ की व्यवस्था स्वीकार न करे, उसकी जवाबदारी संघ की कैसे होगी ? वि.सं. १९९० के सम्मेलन में उन्होंने जो बात रखी उसे पहले अपने घर मे प्रयुक्त करके देख लिया।

आचार्य जवाहर की जब रुग्ण अवस्था हो गई थी और जब उनके एक जहरीला छाला हो गया था, तब वर्धमानजी पितलिया और अनेक श्रावकों ने अनुशासन बरकरार रखने में विशेष भूमिका निभाई। जब जलगॉव मे आचार्य जवाहर का चातुर्मास था। तब ऑपरेशन का प्रसंग बना। पूज्य घासीलालजी म.सा. से पितलियाजी ने कहा कि आचार्यश्री की जब ऐसी स्थिति है तो भविष्य का लेखन हो जाना चाहिये, जिन्दगी का भरोसा नही। उन्होंने आचार्य जवाहर के सम्मुख

नया सब खराब है। पुराने में अच्छाई है तो वह स्वीकार की जानी चाहिये। परन्तु यदि कोई सोचे मुझे नये को ही अपनाना है या मुझे पुराने से ही चिपक कर बैठे रहना है, तो वहाँ मामला गड़बड़ में पड़ जायेगा।

मैं वर्तमान से संबंधित एक महत्त्वपूर्ण बात कहना चाहता हूँ। वर्तमान युग में मीडिया का प्रभाव तेज रफ्तार से बढ़ रहा है। उसकी शक्ति और प्रभावशीलता के गुण बहुत गाये जा रहे हैं। प्रचार-प्रसार का वह एक प्रभावी माध्यम है। इसलिये कई भाई कहते हैं- महाराज ! आधुनिक प्रचार-प्रसार के साधनों को स्वीकार करें अन्यथा पिछड़ जाओगे। तो क्या इसीलिये मीडिया के विभिन्न साधनों का उपयोग या प्रयोग आरंभ कर दें ? स्वीकार कर ले ? क्या टी.वी. पर आ जाने से शांति मिल जायेगी ? पक्की बात है ? तब यदि अपनाने से शांति मिलने वाली नही तो फिर उसे अपनाने की आवश्यकता कहाँ पड़ गई ? हम मूल लक्ष्य से हट गये है। सत्य तो यह है कि मूल्य ही समाप्त हो गये है। मूल्यो का आधार ही समाप्त हो जाये तो आगे की अवस्था परिष्कृत कैसे रह सकती है ? आगे से आगे बदलाव आये तो क्या हम बदलते चले जाएँ ? बदलते-बदलते कहाँ पहुँच जायेगे यह सोचा है कभी ? यदि बदलने से शांति मिलती तो कभी की शांति मिल गई होती। हमने बहुत बदलाव कर लिये है। पहले के जमाने में धोती पहनने वालो की बहुलता थी। अंग्रेजो के सम्पर्क मे आ गये तो बात बदल गई। आज सूट-सफारी आ गई है। पहले जमीन पर गादी बिछती थी, उस पर बैठते थे। सामने बाजोट होता था, जिस पर थाली परोसी जाती थी। अकेले भोजन की परम्परा कम थी, परिवार के साथ बैठकर भोजन करते थे। पर बदलाव आ गया कुर्सी-डाइनिंग टेबल आ गई। भोजन के साधन बदल गये। पहले हाथ से खाते थे, अब चम्मच, छुरी-काँटे भी आ गये। पहले के भोज्य पदार्थों मे भी परिवर्तन हो गया, पर क्या इस परिवर्तन से चित्त मे शांति आ पाई ? संतोष आ पाया ? यदि सर्वे किया जाये तो लगेगा कि 50 वर्ष पहले व्यक्ति जितने सुखी-संतोषी थे, उतने आज नही है। भले ही पैसा/सम्पत्ति बढ गई हो किन्तु जितनी सम्पत्ति बढ़ी है, उतनी ही साथ मे हाय-हाय भी बढी है। फिर परिवर्तन से क्या लाभ मिला ? यदि पुराने को छोड नया अपनाना है तो पहले देखो कि नये

और युवाचार्य एव उपाध्याय पद की रस्म होली चातुर्मास के पहले-पहले रखी जाये। वह रस्म फाल्गुन शुक्ला 3 को जावद में सम्पन्न हो गई। पर विधि-विधान कहें या मानव स्वभाव युवाचार्य पद की रस्म के पूर्व ही कुछ ऐसी स्थितियाँ बनी कि वह एकता अखण्ड रह नहीं पाई। उसके पश्चात् लगभग 10 वर्ष आचार्य जवाहर विराजे और भीनासर की दिव्य भूमि पर जवाहराचार्य की प्रखर चेतना अनंत आलोक में विलीन हो गई। उस दैदीप्यमान दिव्यमूर्ति की कौन-कौनसी बातें बताऊं ? विचारों का प्रवाह उमड़ रहा है, पर समय की सीमा है। भयंकर वेदना में भी वे शांत रहते थे। संतों की रात्रिभर ड्यूटी रहती थी और वे शांति के साथ सुनते रहते थे। डॉक्टर ने कह दिया था- कोई इलाज नहीं और फिर वह दिन भी सामने आ गया जिस दिन वह दिव्य छवि आँखों से ओझल हो गई। जनमानस की वेदना ऐसे शब्दो में फूटी-

हे गुरु तुम बता दो
तुम छिपे कहाँ हो,
किस अनंत के कोने में
हम देख नहीं पा रहे हैं।

उनके आचार्य पद पर पूज्य श्री गणेशाचार्यजी प्रतिष्ठित हुए।

आचार्य जवाहर का जन्म दिवस है, उस प्रसंग से मैं कुछ बाते रख गया हूँ। मैने पहले ही बता दिया है कि ये व्यक्ति का नही, शक्ति का जन्म दिवस है। आज के दिन व्यक्ति के रूप मे जिस शक्ति का जन्म हुआ था, वह थी पुरुषार्थ की शक्ति, पुरुषार्थ की पर्याय। बंधुओ ! इस पुण्य दिवस पर हम यह कामना करे कि हमारे भीतर भी ऐसा पौरुष जागे कि हम धर्म के लिए जीवन को न्यौछावर करने से पीछे नहीं हटें। उनके चरणचिह्नो पर चलकर ही हम महावीर के सच्चे सिपाही बन सकेंगे। हम उनके जीवन प्रसंगों पर चिन्तन-मनन करें, क्योंकि ऐसे आचार्य का स्मरण करके ही हम पौरुष को जगाकर अपने जीवन को धन्य बना पाएंगे।

31 10.2000

10. कोड नम्बर यह अरिहंत का

शांति जिन एक मुझ विनती सुनो....

शांति की मंजिल प्राप्त करने के लिए कवि ने जिन सोपानों का स्वरूप प्रदर्शित किया है उनमें पहला सोपान है- तीर्थंकर देवों ने जो प्ररूपणाएँ की है अर्थात् जो तत्त्व जिस रूपों में प्रदर्शित किये हैं उन्हें अवितथ अर्थात् बिना अन्यथा भाव के यथार्थ मानकर स्वीकार करें और उनका श्रद्धान करें **"मे तेम अवितथ सद्यहे..।"** दूसरा सोपान बताया है गुरु का माध्यम बनने के लिये गुरु कैसा हो। इस संबंध मे बताया गया है- गुरु आगमधर हो, समकिती हो, उसकी क्रिया संवर प्रधान हो। ऐसे गुरु का अवलंबन स्वीकार किया जाये और उसका सानिध्य प्राप्त किया जाये। तीसरा सोपान बताया है- आधार। साधना मे आधार चाहिये। जैसे हमारे लिए पृथ्वी आधार है वैसे ही साधना के लिए भी आधार अपेक्षित होता है। इस दृष्टि से- **"शुद्ध अवलम्बन आदरे.........।"** अर्थात् आधार शुद्ध होना चाहिये।

इन तीनो सोपानों के अतिरिक्त सिद्ध स्वरूप को प्राप्त करने और शांति की मंजिल प्राप्त करने का चौथा सौपान बताया है- देव, गुरु, धर्म पर दृढ़ आस्था हो। इन सोपानों को प्राप्त करने के पश्चात् ही क्रियात्मक रूप से शांति के मार्ग पर चलने की स्थिति बनती है। चलने वाला चाहे श्रावक के रूप मे हो, चाहे साधु के रूप मे हो, पर जब कदम बढाये जाते हैं तब साधना भी विकसित हो जाती है। ज्यो-ज्यों साधना में निखार आता है, त्यो त्यो साधना पर आरूढ होता हुआ अंतिम मंजिल पर पहुँचने की पात्रता और सामर्थ्य भी प्राप्त करता जाता है।

कोई सोचे कि सामान्य व्यक्ति कैसे मंजिल प्राप्त करे, तो

है। आज हम देखते है कि नाम से तो देव की उपासना करते हैं, अरिहंत-सिद्ध को देव के रूप में स्वीकार भी करते है, गुरु के रूप में निर्ग्रन्थ गुरु को स्वीकार करते हुए धर्म के रूप मे दया धर्म को स्वीकार करते हैं किन्तु उसके विपरीत कुदेव-कुगुरु एवं कुधर्म के प्रति भी अनुराग रखते हैं। यह जाणपणे का अभाव या अल्पता है। इसके लिए कहा है-

पढ़मं णाणं तओ दया........।

तीर्थंकर देवों ने कहा है- पहले ज्ञान हो, फिर आचरण हो। पर आज हमारी गति इसके विपरीत हो रही है। हम ज्ञान कर पाये हो या नही, पर आचरण पर अवश्य जोर देते हैं। सामायिक करना ही है, पर यदि सामायिक का ज्ञान नही है तो कैसे सामायिक कर पाएंगे ? इसी प्रकार साधु जीवन स्वीकार तो कर लेना सरल है किन्तु उसका ज्ञान और ज्ञानपूर्वक उसका पालन करना कठिन है। यही कारण है कि व्यक्ति जोश-जोश मे व्रत-प्रत्याख्यान तथा साधु जीवन स्वीकार तो कर लेता है किन्तु आने वाले समय में उसके साधु जीवन की विचित्र अवस्था बन जाती है। यह साधु जीवन का ज्ञान नहीं होने का परिणाम होता हैं। पर स्वीकार करने के बाद जिन भावों से स्वीकार करते हैं क्या वे ही बरकरार रहते है या जैसे कानून मे गली ढूंढ़ते हैं वैसे ही उन नियमों मे भी गली ढूंढ़ने लगते है कि जैसे-तैसे किसी गली से अपनी मनोकामना पूर्ण कर ले ? कानून किसलिए बनाये जाते हैं ? इसलिये कि आम जनता शांति को प्राप्त करे, पर हमारे मन की ख्वाहिश को पूर्ण करने के लिए उसमे गली ढूंढते है। इसी प्रकार तीर्थंकर देवो के मार्ग मे भी उपमार्ग ढूढ लेते है, गली निकाल लेते है। किन्तु ज्ञानीजन कहते है- व्रत-प्रत्याख्यान लेते समय जो भाव या अध्यवसाय रहे थे, वे ही भाव पालन करने के समय और पूर्णता तक के लिए होने चाहिये। इसीलिए कहा है-

जाए सद्धाए निक्खंतो, तमेव अणुथालिया......।

जिस श्रद्धा और विश्वास से तुमने जो भी प्रत्याख्यान स्वीकार किया है उसी विश्वास से, उसी भाव से तुम्हे गति करनी चाहिये। किन्तु

होता यह है कि जिस समय व्यक्ति प्रत्याख्यान करता है उस समय तो सिंह की तरह उत्कृष्ट भाव होते हैं किन्तु कालान्तर में जब साधुचर्या अथवा श्रावक व्रतो की ऊर्ध्वता में या गहराई में उतरता है तो लगता है- यह तो बड़ा कठिन काम है। तब वह बगलें झांकने लगता है। जबकि होना यह चाहिये, भाव ऐसे बनें कि जो भी हो ! इस गहराई में इतना आनंद है तो मुझे और गहरे मे उतरना है। अतः जो नियम लिये है उनका दृढ़ता से पालन करूँ !" किन्तु ज्ञान का जब अभाव होता है और मन की ख्वाहिश पूरी नही होती है तो गली-कूंचे ढूंढ़ते हैं। इस अवस्था से बचने के लिए ज्ञान में अवगाहन करना चाहिये। ज्ञानीजनों ने स्वाध्याय के पॉच भेद कहे है- वांचना, पृच्छना, परियटणा, अनुप्रेक्षा और धर्मकथा। कई व्यक्ति वांचना, पृच्छना और परियटणा तक की क्रियाओं से तो जुड़ते हैं, पर केवल वांचना-पृच्छना-परियटणा से ज्ञान की पूर्णता हो नही पाती। ज्ञान की पूर्णता के लिए अनुप्रेक्षा भी अत्यन्त आवश्यक है। यदि अनुप्रेक्षा नहीं हो तो वह ज्ञान कहाँ ले जाएगा ? चिन्तन नही है तो ज्ञान का फैलाव कर नहीं पाएंगे। आपके पास माचिस है पर प्रयोग करना न जानें तो वह किस काम की ? गैस सिलेण्डर लगा पडा है, पर उपयोग कैसे करते हैं, पता नही, तो गैस जला नही पाएंगे, न ही रोटी बना पाएंगे। वे केवल पडे रह सकते हैं, उपयोग मे नहीं आ सकते, उद्देश्य की पूर्ति नही कर सकते। वैसे ही वांचनी ले ली, पृच्छा व परियटणा भी कर ली, पर यदि अनुप्रेक्षा नही हैं तो सही तरीके से उसका उपयोग कर नहीं पाएंगें और उसका लाभ उठा नहीं पाएंगे।

ये ज्ञान की बातें हैं, आज का दिन भी ज्ञान-पंचमी का है। क्या महत्ता है ज्ञान पंचमी की ? इस संदर्भ मे कुछ ऐतिहासिक बाते है।

माना जाता है कि आज के दिन यदि ज्ञान की आराधना कर ली जाये तो जिन्हे ज्ञान नही चढ़ता उन्हे भी चढ़ने लग जाता है। यदि कोई सोचे कि ज्ञान तो ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से होगा, ज्ञान पंचमी की आराधना से कैसे संभव है। यह सोच भी महत्त्वपूर्ण है। निश्चय मे ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम ज्ञान के लिए अनिवार्य है, पर उस क्षयोपशम के लिए निमित्त की भी अपेक्षा रहती है। जैसा कि स्थानागसूत्र

में 10 नक्षत्र ज्ञानवृद्धि के बताये गये हैं। यदि उनके संयोग में ज्ञान प्राप्त करने की कोशिश करें तो ज्ञान की वृद्धि होती है।

आप जानते हैं कि एक-एक समय-क्षेत्र का प्रभाव होता है। इसीलिए कहा है- द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव। द्रव्य का भी प्रभाव पड़ता है और क्षेत्र, काल, भाव का भी प्रभाव पड़ता है। इस दृष्टि से चिन्तन करें तो ज्ञान पंचमी का भी प्रभाव पड़ता है; यह कहा जा सकता है और यह कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं होती। इसलिए दीपावली के पश्चात् आने वाली पंचमी को ज्ञान पंचमी कहा गया है। इसकी आराधना कैसे की जाये तथा आराधना का यह सिलसिला कैसे जुड़ा ? इस पर भी दृष्टिपात आवश्यक है।

वर्षों गुजर चुके हैं, जबसे ज्ञान पंचमी के रूप में आज का दिन स्वीकार किया गया है। मैं उस आख्यान से आपको परिचित करा देना चाहता हूँ जो इससे संबंधित है।

बतलाया जाता है कि महाराज अजितसेन अपने आप में किसी प्रकार की कमी का अनुभव नहीं कर रहे थे। यदि किसी प्रकार की कमी थी तो एक कमी यही थी कि उनके कोई संतान नहीं थी। पर यह भी सत्य है कि व्यक्ति कभी संतान न होने से दुःख का अनुभव करता है, तो कभी संतान होने से। यदि संतान हो जाये और आज्ञा पालन न करे, माता-पिता के अनुकूल न होकर प्रतिकूल हो, बात-बात में क्लेश करे तो ऐसी सन्तान के प्रति माता-पिता क्या विचार करते है ? उनके मन मे क्या भावना बनती है ? और ऐसे समय में माता-पिता के मुँह से जो नहीं निकलना चाहिये वह निकल जाता है कि ऐसी संतान से तो सन्तान नहीं हो तो अच्छा। नहीं तो माता-पिता के मुँह से ऐसा निकल नही सकता। पुत्र कपूत हो तो भी माता-पिता सहन करते हैं किन्तु यदि कपूतता की पराकाष्ठा हो जाये तो ऐसे शब्द भी निकल जाते हैं- "नहीं होता" या "होते ही मर जाता तो ये दिन देखने नही पड़ते"। फिर भी पुत्र की लालसा तो रहती ही है। निःसंतान व्यक्ति को अटपटापन लगता है। परन्तु विचार कीजिये कि जितने भी माता-पिता बन गये है उनमें क्या कोई दुःखी नही है। उनकी चाह पूरी हो गई है ऐसा नहीं है।

इसीलिये कवि ने कहा है-

मैं तो ढूंढियो रो सहुजग काय,
सुखी न मिलिया एक भी.......।

जिनके घर-हवेली खजाने से भरे पड़े हैं वे भी रोते मिलते हैं कि कोई खाने वाला नहीं है। किन्तु क्या ऐसे विचारों की कोई सार्थकता हैं ? जरा गंभीरता से विचार कीजिये कि ऐसे भाव क्या वास्तव में सत्य है ? खाने वाले तो हैं, किन्तु खिलाने वाला कौन है ? देखिये संसार में कितने अपंग, लाचार है जो रोटी का जुगाड़ नहीं कर पाते। यदि खिलाना चाहें तो कहाँ कमी है। किन्तु कौन चाहे ? रोना स्वभाव का होता है। व्यक्ति चाहता है कि मेरी औलाद ही सारी संपत्ति का उपभोग करे। यदि सबके लिए संपत्ति का उपयोग करें तो ये बातें रहे ही नहीं कि मेरी संपत्ति का भोग कौन करेगा। सोच यह रहता है कि मेरी औलाद के हक में मेरी संपत्ति रहे इसीलिए चाहता है कि मेरे घर में औलाद हो जाये तो ऐसे कितने माता-पिता हुए हैं जो सोचें कि एक नहीं है तो चाहे जितनों को गोद ले सकते हैं। कितने भाई-बहिन अनाथ अवस्था में जिन्दगी काट रहे हैं। यदि ऐसो को सही दिशा दी जाये, उनके जीवन को उन्नत बनाने का प्रयास किया जाये तो उनकी संतान के अभाव की अवस्था को आश्रय मिलेगा। यदि दृष्टि स्वकेन्द्रित बनी रहती हैं तो अभाव लगता है, पर यदि दुनिया को परिवार मान लें तो अभाव लगेगा ही नहीं। पर जब हम स्वार्थ में सिकुड कर छोटे बन जाते हैं तो फिर दीवार के पार देख नहीं पाते कि पड़ौस में क्या हो रहा है। तब उसका चिन्तन इतना संकीर्ण हो जाता है कि अन्य के उदर से जन्म लेने वाला उसका पुत्र नही यह चिन्तन चलता है तो उदर उसकी दीवार हो जाता है। अपने उदर से आगे वह जाना नही चाहता।

मैं बता रहा था महाराज अजितसेन के सबध मे, जिन्हे एक यह कमी लग रही थी कि उनके संतान नही थी। इससे उनका मन मुरझाया रहता था। मन मे मायूसी बनी रहती है कि मेरे संतान नही है तो कई बार ऐसी स्थिति में व्यक्ति देव-गुरु के शुद्ध अवलबन को भूल जाता है और कहाँ-कहाँ भटकता है ?

भाटो-भाटो देव मनावे.........।

वह प्रयास करता है कि भैरूंजी, भवानीजी, कोई बालाजी और माताजी नहीं चूके। ऐसा व्यक्ति सब जगह माथा रगड़ लेगा। पूजा-अर्चना सब-कुछ करने को तैयार हो जाएगा कि आंगन सूना नही रहे, संतान मिल जाये। ऐसे संतान मिलती होती तो शायद दुनिया में कोई भी संतानहीन नहीं होता, पर व्यक्ति का अज्ञान उसके माथे पर चढ़कर बोलता है।

अजितसेन ने इस प्रकार का कोई भी प्रयत्न नहीं किया। वे जानते थे कि कोई देव भी किसी को सन्तान देने में समर्थ नहीं है। स्वयं के अन्तराय कर्म टूटने पर ही संतान संभव है। संयोग बना, राजकुमार का जन्म हुआ। राजकुमार जन्मे तो खुशियाँ न हों ये कैसे हो सकता था ? एक के बाद दूसरा जन्मे तो भी खुशी होती है, फिर वहाँ तो इतने दिनों के बाद पुत्र हुआ था, तो भंडार के द्वार खुल गये। अजितसेन ने भी दिल खोलकर उत्सव मनाया। साधकों को भरपूर दान दिया। सामान्य अपराधियों को मुक्त किया ताकि वे दुआ दें। ये सारी स्थितियाँ बने, फिर वरदत्त के रूप में नामकरण भी हो गया। बालक बड़ा हुआ, पर बोलता नहीं, हूं, हाँ मात्र करता है। इससे उलझन पैदा हो गई। वे चाहते थे कि वे बबलू को बोलाये। हम जानते हैं कि बालक बोले तो प्रेम और बढ जाता है। पर ये तो बोलता ही नही था। 7-8 वर्ष का हो गया, पर तब भी बोलता नहीं था। कलाचार्य के पास भेजा, पर उसके जड़मति होने से वे भी उसे कुछ सिखा नही पाये। सुयोग्य वैद्यों और चिकित्सको को दिखाया, सभी प्रकार के इलाज करवा दिये, बहुमूल्य और दुष्प्राप्य दवाईयों का सेवन करवा दिया, बुद्धिवर्धक दवाईयों का उपयोग भी करवा दिया, पर कहते हैं कि कितना भी कुछ भी करवा दो परन्तु यदि मूल मे उपादान, ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम नही है तो दवाई क्या करेगी ? अच्छे से अच्छा भोजन करवा दो, पर यदि जठराग्नि ठीक नही है तो अतिसार से सब निकल जायेगा, कुछ भी शरीर को ताकत दे नही पाएगा। वीर्यान्तराय का क्षयोपशम नही हो तो शरीर पुष्ट बन नही पाएगा। उपादान काम करे तो निमित्त भी प्राप्त होता है, पर उपादान न हो तो

निमित्त काम नहीं कर पाता। यही हालत वरदत्त के साथ बनी। उपाय किये गये, पर कारगर नही हुए। अजितसेन व्यथित होते थे। लोगों को मुँह दिखाने में शर्म आती थी। उसे अंदर ही रखा जाता था। राजसभा में प्रवेश नहीं करवाते थे कि लोग पूछेंगे तो सम्राट की बेइज्जती होगी। अतः चार दीवारी में ही पालन हो रहा था। धीरे-धीरे समय निकल रहा था कि अनायास ही विजयसेन गणि का नगर में आगमन हुआ। उद्यान पालक से जानकारी मिली। वे धुरन्धर ज्ञानी थे। अतः सम्राट गुरुचरणों में पहुँचे।

बधुओं ! गुरुचरणों में आने के कई कारण होते हैं। उत्तराध्ययन सूत्र में बताया गया है- केशी-गौतम का मिलन हुआ। वहाँ अनेक पाखण्डी, कौतुकी मृगा, गृहस्थ एवं साहसिक उपस्थित हुए। संत चरण में जिज्ञासु आते हैं तत्त्व बातों सुनने को। सामान्यजन दर्शन हेतु आते हैं और कोई कौतुक से भी आते थे कि देखें वहाँ क्या वार्ता-चर्चा होती है। होता क्या है, आप जानते हैं-

ज्ञानी से ज्ञानी मिले करे ज्ञान की बात।
मूरख से मूरख मिले कै घूंसा कै लात।।

कई लोगों का अपना दुःख-दर्द, आर्त्तभाव रहता है, वे सोचते हैं संत वाणी सार्थक होती है। क्या जाने कौन-सी वाणी कब निकल जाये। सोचकर निकालने की बात अलग है, पर सहज निकल जाये और झेलने वाला झेल ले तो कहते है संत वाचा खाली नहीं जाती, वह पूर्ण होकर रहती है। एक दृष्टांत सुनिये।

कुछ बच्चे खेल रहे थे। एक बालक हारने के कारण निराश हो रहा था। उधर से एक संत निकल रहे थे उन्होने सहसा कह दिया- कर पुरुषार्थ जीत जायेगा। महाराज ने तो बच्चों के लिए कहा था, पर उधर से एक सम्राट भी निकल रहे थे। उन्होंने सोचा महाराज ने उनसे कहा है, "कर पुरुषार्थ"। उसने युद्ध मे जमकर पुरुषार्थ किया और विजय प्राप्त कर ली। वापस आया तो चरणों में पहुँचकर कहने लगा- "गुरुदेव! आपकी कृपा से जीत गया"। महाराज ने कहा- "मैने आपसे कब कहा था ? मैंने तो बच्चे के लिए कहा था।" यह है वचनगुप्ति का दोष। इसलिए कहा गया है कि साधु को सावधानी से वाणी का प्रयोग करना

चाहिये। पता नहीं वचन के पीछे कैसी स्थिति बन जाये।

मैं बात कह रहा था कि झेलने वाला झेल ले तो काम बन जाता है। अजितसेन ने सोचा, चलो वाणी सुनेंगे, संभव है प्रसंग निकल जाये और राजकुमार के विषय में कोई तथ्य उजागर हो जाये और पता चल जाये कि क्या कारण है जो वह बोलता नहीं हैं। अजितसेन ने भावपूर्वक व्याख्यान सुना, फिर निवेदन किया- "भगवन् ! और कोई दु:ख नहीं है, जनता आज्ञा का पालन करती है। जैसा चाहता हूँ वैसा जनता का आचरण है। धन-वैभव की भी कमी नहीं है, परन्तु एक कमी अखरती है। मेरे पुत्र है, किन्तु बोल नहीं पाता। क्या कारण हैं ?" आचार्य ने कहा- "राजन् ! जैसे-जैसे कर्म किये हुए होते हैं, वैसे-वैसे उदय मे आते है। तुम्हारा पुत्र भी कर्मोदय के कारण बोल नहीं पा रहा है।"

अजितसेन ने पुन: निवेदन किया- 'गुरुदेव ! इतने में संतोष नहीं होता। सभी जानते है कर्मो का उदय है, पर ये उदय हुआ कैसे ? आप जैसे विशिष्ट ज्ञानी से जानकारी चाहता हूँ।" मुनिदेव ने उत्तर दिया- "श्रीपुर में वसुश्रेष्ठी निवास करते थे। उनके पुत्र थे- वसुसार और वसुदेव। दोनों की जुगल जोड़ी जन-जन को प्रमुदित करने वाली थी। दोनों का प्रेम इतना गहरा था कि दोनो दो देहों में एक प्राण बनकर रहते थे। उनका प्रेम-सौहार्द्र देख माता-पिता भी खुश होते थे। जिधर जायें रौनक आ जाती थी। संयोग बना कि सुन्दरसेन गणि पधारे। उनके अमृतवचन/जिनवाणी कुमारों ने सुनी। उन्होंने विचार किया यही वाणी एकमात्र सार है। यह भवसागर से पार कराने वाली नैया है। यह वाणी सार है, आधार है। जो स्वीकार करे, इधर-उधर नही भटकें, तो निश्चित रूप से यह पार लगायेगी" परन्तु एक तरफ जिनवाणी की नाव ले और दूसरी तरफ इधर-उधर मन डोलावे तो काम नहीं होता।

जैन कुल मे जन्म लेने मात्र से हमने यह मान लिया हो कि हम जैनी हैं तो यह मान्यता जन्मना हो सकती है, कर्मणा नहीं। कर्मणा जैनी वह है जो निर्ग्रन्थ प्रवचन को ही अर्थ मानता है, उसी पर दृढ़ आस्था रखता है। जैसे कुलवधु की दृष्टि अपने पति पर ही होती है, अन्यथा नहीं।

हम जैनी हैं, पर क्या हम अपने आपको जानते है कि 'मैं कौन हूँ' ? हम अपने को नही जानते दूसरे को बहुत जानते है। अपने को जानने की तैयारी भी कहाँ हैं ? अब तक अपने आपको क्या कभी सबोधित किया कि आत्मन् ! तू कौन है ?"

हूँ कौण हु, क्या थी थयूं,
सुं स्वरूप छे म्हारा रूरू.........।

क्या स्वरूप है मेरा। कभी इस पर चिन्तन किया ? समय ही कहाँ है ? अवकाश नहीं है। हम 'पर रूप' का कुछ अनुभव जरूर कर लेते है। बचपन से 'णमो अरिहंताणं' का उच्चारण तो करते है, पर अरिहंत कैसे बनें, अरिहंत के पीछे कितनी सार अवस्था रही है यह नही जानते। यदि यह जान ले और एक अरिहंत पद की भी आराधना कर ले तो पाँचों पदों की जरूरत ही कहाँ है ?

एगो वि णमुक्कारो.........।

यहाँ तक कह दिया गया है कि तीर्थंकरो को एक बार भी नमस्कार कर लिया तो वह नमस्कार संसार-सागर से पार लगा सकता है। 'तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं' न जाने कितनी बार कर लिया। कितनी बार नाम गिन लिये। माला के मण के घिस गये, अंगुलियाँ घिस गईं, फिर भी फोन लगता नहीं। "हलो, हलो" कहता ही रहे, वहाँ कोई उठाता ही नही ! या तो नंबर सही नही है या फोन की गडबड़ी है। घर में फोन की गड़बड़ी हो तो मैकेनिक से तत्काल ठीक करवायेगें, पर हमारे मन का भावो का फोन जन्म-जन्मान्तारों से बद पड़ा है इसीलिये आवाज आगे जाती ही नही। कभी लगाते भी हैं तो संसार की मोहमाया के भाव घेर लेते है और सम्पर्क हो नही पाता। जयपुर का जयपुर मे तो फोन फिर भी लग जाये किन्तु विदेश मे कोई है और लगाना है तो कितनी बार लगाएगे ? अरिहतों को कितनी बार लगाया ? अरिहंत के नंवन कौन से है ? एक एस टी डी नंबर और एक कोड नंबर होता है। क्या है भगवान के फोन नंवर और कोड नवर ? यदि फोन नंवर है किन्तु कोड नवर नही मालूम है तो भी काम नही चलेगा। मालूम है क्या कि उनके कौन से है फोन नंवर और कौन से है कोड नंवर ? दिल्ली

वालों से ही पूछ लें। मुझे परीक्षा नहीं करनी है। कोड नंबर जाना या नहीं ? जानना है क्या ? यदि बता दें तो फिर दिल्ली आने की आवश्यकता है क्या ? आप चाहते है आज ही बता दो, दिल्ली तो आप आयेंगे तब आयेगे। आज ही जान गये तो संत आवे तो क्या, नहीं आवे तो क्या ? वस्तुतः कोड नंबर जान लिया तो सत आवे या नहीं आवे कोई फर्क नही पड़ेगा। मैं धर्म संकट में डालना नहीं चाहता। कोड नंबर है- शास्त्रें का स्वाध्याय करो तो ज्ञात हो सकता है। उत्तराध्ययनसूत्र में कहा है- सो ही उज्जुयभूयस्स।। (3/12) अर्थात् जो ऋजुभूत (सरल) होता है, उसे शुद्धि प्राप्त होती है। तो हृदय को सरल कर लो। ये हैं कोड नंबर, इन्हे लगाकर एक बार घुमाओ और बोल दो-

एक बार तो मुँह से बोल सही
अरिहंत प्रभु अरिहंत प्रभु........।

एक बार बोलना है किन्तु किस रूप में ? कोड नंबर लगाकर। कोड नंबर एकदम सही हैं, फिर देखो 'णमो अरिहंताणं' का प्रभाव। यह है कोड नंबर का स्वरूप। वह नहीं है तो डायल घुमाते रहो, हलो-हलो कहते है पर उत्तर में उधर से आवाज नहीं आयेगी। यदि "सो ही उज्जुयभूयस्स" का कोड नंबर लगाकर णमो अरिहंताणं का डायल घुमायें तो फिर घर बैठे वैसे ही परमात्मा से बात हो सकती है जैसे मेघ ने महावीर से की थी। कोई व्यवधान पैदा नहीं होगा। मर्जी आपकी है, कितने समय बात करना चाहते हैं। एक मिनट, दो मिनट, दस मिनट, जितनें समय कोड लगा रहेगा, बात होती रहेगी।

वसुसार-वसुदेव दोनों ने वाणी सुनी और समझ गये कि ये वाणी पार उतारने वाली हैं। बस माता-पिता से अनुमति ली और सुन्दरसेन ऋषि गणि के पास जाकर दीक्षित हो गये। दीक्षित वसुदेव की प्रज्ञा निर्मल थी और गुरु का सानिध्य भी मिल गया था। थोड़े ही समय मे अध्यात्म विद्या, आगम ज्ञान मे पारगत हो गये। कोई भी आ जाये तत्काल प्रश्न का समाधान। कोई देर नही। चारों तरफ नाम हो गया कि ऐसे ज्ञानी संत हैं।

वसुसार कुछ ही थोकडे कर पाये। अधिक कुछ नही कर पाये

तो सोचा मैं ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकता तो कुछ न कुछ आत्मकल्याण का कार्य तो कर ही सकता हूँ। ज्ञान नहीं कर सकता तो ज्ञानियों की सेवा तो कर सकता हूँ। अतः वे उत्कृष्ट भाव से वैयावृत्त्य में लग गये। वैयावृत्त्य से भी तीर्थंकर नाम गौत्र का बंध होता है ऐसा शास्त्र वचन है। वसुसार दिन-रात सेवा में लगे रहते। संतो से कहते- "तुम पढ़ो" और स्वयं सेवा मे लगे रहते। दिनभर सेवा करने से शरीर थककर चूर हो जाता। रात्रि में सोते तो आराम की नींद आती।

ऐसे ही अपने समाज के एक संत हुए हैं- कर्मठ, सेवाभावी, धायमातृ श्री इन्दरचन्दजी म.सा., जो अपने काम से प्रसिद्ध हुए। किसी ने उन्हें वह पदवी दी नहीं, फिर भी उन्हें वह सर्टिफिकेट मिल गया। वे नवदीक्षित साधुओं से कहते- "तुम अध्ययन करो" और स्वयं गोचरी, पानी व्यवस्था आदि का सारा काम संभाल लेते। इसलिए वे धायमातृ के नाम से श्रद्धेय बन गये।

ऐसे ही वसुसार सेवा मे लग गये। आप जानते हैं कि कर्मोदय से परिषह के चक्कर से कौन, कब उलझ जाये, कहा नहीं जा सकता। ऐसा ही कुछ वसुदेव के साथ हुआ। वसुदेव ज्ञान की मोह-महक लेकर चल रहे थे। दिनभर कोई न कोई प्रश्न लेकर आता रहता और वे समाधान देते रहते। पर होनी को कौन टाल सकता है ? ज्ञानचर्या से थककर एक दिन शयन करने जैसे ही पोढ़े कि कुछ श्रावक आ गये। "मत्थएण वंदामि" ! उत्तर दिया- "दया पालो।"

श्रावको ने विनयपूर्वक निवेदन किया- "गुरुदेव ! कुछ अन्य मतावलम्बी आये है। कुछ चर्चा होगी तो जिनशासन की भव्य प्रभावना होगी।" तन-मन थका हुआ था, अतः मन मे प्रतिक्रया हुई- कैसा मेरा जीवन है ! कैसी विवशता है ! कहाँ मेरा भाई खा-पीकर आराम की नीद सोता है तो खर्राटे की नींद आती है और कहाँ मैं ! मुझे न दिन मे चैन है न रात मे। ज्ञानार्जन कर मैंने गले में फंदा डाल लिया।" देखिये ज्ञान की अपच अवस्था बन गई। ये अजीर्ण का ही रूप है। उसी की खट्टी डकार उभरने लगी। जैसे-तैसे उस समय तो बातचीत की, उसके बाद मन मे संकल्प कर लिया-

- आज से किसी को पढ़ाऊँगा नही।
- कोई प्रश्न पूछेगा तो समाधान दूंगा नहीं।
- कोई मिथ्यामति मिथ्यामत से प्ररूपणा करे भी तो मैं खंडन करूंगा नहीं।
- उपदेश नही दूंगा।
- समाधान नही करूँगा।
- ज्ञान का अनुमोदन नहीं करूँगा।
- स्वाध्याय नहीं करूँगा।

ऐसी सात प्रतिज्ञाएँ उन्होने धारण कर लीं और इस प्रकार ज्ञानावरणीय का प्रभाव बंध कर लिया।

राजा अजितसेन को इतनी कथा सुनाकर मुनि विजयसेन गणि ने कहा– राजन् ! देखिये, समय और कर्म की महिमा ! कोई कर्म व्यक्ति का जिस समय उदय मे आता है उस समय वह व्यक्ति पेरशान हो जाता है। बांधते समय सोचता नही है कि मै क्या कर रहा हूँ, पर जब वह उदय मे आता है तब लगता है कि मैंने क्या कर लिया। तब रोने से क्या लाभ ? तब रोने से क्या कोई मतलब निकलने वाला है ? राजन् ! इन्हीं कर्मों के फलस्वरूप ही वह एक ही शब्द बोल नही पाता है। इसलिए ज्ञानीजन कहते है ज्ञान की, ज्ञानीजनों की अवज्ञा, उनका तिरस्कार मत करो। जो ज्ञान पाना चाहते हैं उन्हें ज्ञान के साधन उपलब्ध कराओ। ज्ञान के प्रति श्रद्धा रखो। जातियों की उपासना करो तो ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम होगा। पर यदि विपरीत करे तो ज्ञानावरणीय कर्म का बंध होगा।

राजा ने कहा– गुरुदेव ! उसने बंध तो कर लिया, आपने बीमारी तो बता दी, पर सफल चिकित्सक वह नही है जो बीमारी बताकर कह दे– लाईलाज है ! सफल चिकित्सक वह है जो बीमारी को बताकर चिकित्सा कर बीमारी दूर भी करे। अतः भगवन् ! आप ही बताये इस

बीमारी को दूर कैसे किया जाये ? कैसे ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम बने ?

मुनि ने कहा- "देखो, यह लाईलाज बीमारी नहीं है। पुरुषार्थ करना होगा। ज्ञान पंचमी की आराधना करनी होगी। यह आराधना वस्तुतः करनी तो उसे है, पर जब तक वह न कर सके तब तक आप करें और उसके प्रति वैसे अध्यवसाय बनायें ताकि आपके पुरुषार्थ का प्रभाव बन सके।"

बंधुओं ! आप कहेगे यह कैसे ? कोई व्यक्ति करे और दूसरे पर प्रभाव बन सके ? क्या कोई भी किसी के कर्म मे भाग लगा सकता है ? समाधान समझें। उपादान स्वयं का होता है, पर दूसरा निमित्त तो बन सकता है। मनोविज्ञान भी इसे स्वीकार करता है। मैं आगम से प्रमाण दे रहा हूँ।

वृहत्कल्पसूत्र में पारिहारिक साधु के लिए कहा है कि आचार्य उसे परिहार-प्रायश्चित्त मे प्रवेश करवाये तो पहले दिन आचार्य स्वय उसके साथ जाकर जिन घरो में साताकारी भोजन मिलता है उन घरो से उसे वह उपलब्ध कराये, सुलभ करवाये। फिर पूरे संघ से कहे कि अब ये परिहार तप मे प्रवेश कर रहा है। कोई भी साधु इनसे बात नही करे। ये आपसे बात नहीं करेगा। कोई ज्ञान की बात नही, कोई सेवा नहीं। आप वैयावृत्त्य नहीं करें, न ये सेवा करेगे। उनको सेवा की आवश्यकता होगी तो आचार्य स्वयं करेगे। यदि किसी को नियुक्त करेगे तो बात अलग है, वह कर सकता है।" इस प्रकार कहकर परिहार तप बिना विघ्न पूर्ण हो, इसलिए आचार्य स्वयं कायोत्सर्ग करते है कि इसका तप निर्विघ्न पूर्ण हो। यदि ऐसा प्रावधान नही होता और आचार्य का कायोत्सर्ग उस साधक के लिए महत्त्व नही रखता, तो वे क्यो करते ? और शास्त्र वैसा क्यो बोल रहे हैं ? तब यह प्रमाणित है कि वैसा आचार्य उसकी निर्विघ्नता के लिए करते है अर्थात् आचार्य का भाव वहाँ जुड़ा हुआ है।

विजयसेन ने आगे कहा- जव तक वह स्वयं करने की स्थिति

मे नहीं आ जाता तब तक आप उसके साथ उन्ही भावों को जोड़कर तप की आराधना करें। कार्तिक सुदी पंचमी के दिन ऐसी आराधना करें। 5 वर्ष और 5 महीने इसके पूर्ण होने में लगते हैं। ज्ञान पंचमी को और प्रत्येक माह की शुक्ल पंचमी को उपवास करे। यदि उपवास न हो तो आर्यंबिल करें। आराधना के दिन ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करें। भूमि पर शयन, प्रतिपूर्ण पौषध या देश पौषध करें। 21 माला 'णमो णाणस्य' की तथा 51 लोगस्स का ध्यान करें। 12 णमोत्थुणं करें। आप कहेगे ये औपचारिकता तो नहीं। मैं पहले उत्तराध्ययनसूत्र का उल्लेख कर गया हूँ जहाँ कहा गया है- "थव-थुइमंगलेणं भन्ते ! जीवे किं जणयइ ?" भगवान ने बताया है कि ज्ञान-दर्शन-चारित्र की बोधि का लाभ होता है। यह शास्त्रें की वाणी है। परन्तु यह होना चाहिये कोड नंबर सहित अन्यथा बात अधूरी रहेगी। जीवन में सरलता रहनी चाहिये। फिर प्रत्येक पद को तीन बार वंदन। इस प्रकार से आराधना की जाती है जब ज्ञान के प्रति बहुमान किया जाता है और जब ज्ञान के प्रति सम्यक् प्रतीति बनती है तब ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम होता है। ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम हो तो बोलना भी आयेगा।

मुनिराज ने राजा अजितसेन को जो यह समाधान दे दिया उसे आप भी समझ लीजिये। यह आवश्यक है कि हमारी आत्मा सरलता से उपस्थित हो। ज्ञान के साथ सरलता हो। ज्ञान से जोड़ें, पर यदि सरलता को छोड़ दिया तो भटक जाएंगे। सरलता को जोड़ लिया तो धन्यता का लाभ भी प्राप्त कर पाएंगे। आपकी ऐसी मति बनी रहे, यही कामना है ज्ञानपंचमी के प्रसंग से।

1 11.2000

❖ ❖ ❖

11. पात्रता हो आधार

आद्य-तीर्थंकर प्रभु ऋषभदेव ने वर्ण व्यवस्था का रूप उपस्थित किया था। इतिहास बतलाता है कि उन्होंने तीन वर्णों की व्यवस्था की थी- क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र किन्तु उसके पश्चात् जब भरत चक्रवर्ती ने देखा कि कई पुरुष ऐसे भी है जो संसार की विषय वासना के कीचड़ से निर्लिप्त रहते हैं और सांसारिक कार्यों में कोई रुचि नहीं रखते तो उन्होने एक वर्ण की व्यवस्था और बढा दी। उस वर्ण का नाम उन्होंने रखा- माहण = ब्राह्मण, अर्थात् जो उपदेश देता हो और यह भाव लेकर चलता हो- "मा हण्" अर्थात् किसी की हिंसा मतकर। इस प्रकार चार वर्णो की व्यवस्था हुईं।

हम विचार करे कि चार वर्णों की व्यवस्था के पीछे कारण क्या है ? कारण है उसके पीछे छिपा भाव, जो कहता है- तूं आत्मा की शांति जब प्राप्त करेगा तब करेगा किन्तु व्यावहारिक क्षेत्र मे तू दुःखी न रहे और व्यवस्थित रूप से तेरे जैसे प्रत्येक का जीवन चलता रहे। सभी व्यक्तियो की शक्ति एक समान नहीं होती। कोई व्यक्ति शस्त्र चलाने मे सक्षम होता है तो कोई सेवा करने में माहिर होता है। सेवा करने वाले से शस्त्र उठाने के लिये कहे तो उसके लिए बडी विडम्बना की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। एक डॉक्टर जो आँख के रोगों का विशेषज्ञ है, उससे यदि कहे कि मुझे कैसर की बीमारी है, आप ऑपरेशन कर दे। तो वह कहेगा, इसका ज्ञाता जो है उसके पास जाओ। स्पष्ट है कि कैसर की बीमारी का इलाज उसका विषय नही है। जो विषय जिसका नहीं है वह यदि उसमें हाथ डालता है तो वह किसी का हित कर पायेगा ऐसा कहना कठिन है। आँख का डॉक्टर कैसर का व कैंसर का डॉक्टर हार्ट का इलाज करने लगे तो रोगी की क्या हालत होगी। उसके क्या

दुष्परिणाम होंगे, यह जाना जा सकता है। इससे व्यवस्था व्यवस्थित होने के बजाय समस्या बढ़ने की अधिक संभावना है। ऐसी स्थितियाँ पनपने लगे तो उस पर जरूर विचार किया जाना चाहिये। आज वर्ण व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो रही है। सब ओर से आवाज उठती है कि सबको समान अधिकार मिलने चाहिये। मानव को मानव का अधिकार मिलना चाहिये यह तो सही बात है किन्तु सबको समान अधिकार मिलना चाहिये ? पर समानाधिकार का यह मतलब तो नहीं कि सुई का काम कैंची या कैंची का काम सुई करे ? दोनों को उनकी उपयोगिता एवं गुणों के अनुसार ही काम में लेना होगा। कोई सोचे सुई में क्या है, यह भी तीक्ष्ण है तो इसी से युद्ध कर लूंगा तो उपहासास्पद स्थिति उत्पन्न हो जायेगी। पर विचित्र बात यह है कि आज यही हो रहा है। जो व्यक्ति जिस क्षेत्र का अनुभवी नहीं है उसे उसी क्षेत्र का कार्य सौंपा जा रहा है। जब वह उस क्षेत्र का कुछ जानता ही नहीं तो ऐसी स्थिति में क्या वह कार्य का संचालन कर पाएगा ? इस प्रकार तो पोपाबाई के राज्य की तरह व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो जायेगी।

वर्ण व्यवस्था जिस समय की गई थी उस समय उसके पीछे मूल भावना यही थी कि प्रत्येक को योग्यतानुसार कार्य मिले। क्षत्रिय, वैश्य, शुद्र सभी अपनी क्षमता के अनुसार कार्य कर जीवन-निर्वाह कर सके। यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि व्यक्ति अपनी योग्यता के अनुसार कार्य में नियोजित होता है तो वह उसे अच्छे ढ़ंग से निपटा सकता है। जिसे जिस कार्य की जानकारी नहीं है उसमें उसे यदि नियोजित किया जाये तो वह तो व्यथित होगा ही कि कैसा कार्य सौंप दिया वह कार्य सपन्न भी कर पाएगा या नहीं, इसमें भी संशय रहेगा। व्यवस्था के पीछे छिपे मनोविज्ञान को हम समझें। वहाँ योग्यता के अनुसार कार्य सौंपा गया था। क्षत्रिय किन्हें कहा गया ? दुःख से पीडित हैं उनकी रक्षा का जो सामर्थ्य रखते हैं, उन्हें क्षत्रिय कहा गया। उनमे रक्षा करने का यह शौर्य कहाँ से आ गया ? तीर्थंकर का जन्म क्षत्रिय कुल मे ही क्यो ? इसलिये कि उसी कुल में उन्हे वंशानुगत शूरवीर बनने का वातावरण प्राप्त हो सकता है। क्षत्रियों को उसी से ओज-तेज

मिलता है। इसके पीछे वंश बड़ा कारण है। उन्हें दुःखी या पीड़ित की रक्षा का सामर्थ्य भी वहीं से प्राप्त होता है। इस सामर्थ्य के पीछे ब्रह्मचर्य की साधना भी रही हुई है। सन्तान प्राप्ति के लक्ष्य से ही अब्रह्म का सेवन करते थे। देखिये उनका इतिहास, वहाँ प्रमाण मिलेंगे। यद्यपि बाद में विकृतियाँ उत्पन्न हो गई और वे भी विलासिता में बह गये। यह विलासिता ही उन्हें ले डूबी अन्यथा क्षत्रिय ब्रह्मचर्य की रक्षा करने में समर्थ थे।

प्रसंगोपात ब्रह्मचर्य पर भी विचार कर लेना उचित है। यद्यपि आज ब्रह्मचर्य का रूप बहुत संकीर्ण हो चुका है। बहुत से व्यक्ति ब्रह्मचर्य को जान ही नहीं पाते। हमारे ऋषि-मुनियों ने उस ब्रह्मचर्य की व्रत के रूप में सुरक्षा की। परिणामस्वरूप उनमें इतनी ताकत आ गई कि वे ब्रह्म-आत्मा का साक्षात्कार करने में समर्थ हो गये। इसी के फलस्वरूप तीर्थंकरों में यह शक्ति उत्पन्न हुई कि यदि वे लोक को गेंद की तरह धक्का दें तो वह अलोक में कहाँ जाये, पता नहीं। यह है ब्रह्मचर्य की महिमा। पर हमने उसे समझा नहीं है। हम ब्रह्मचर्य का एक चलता हुआ यह अर्थ लगा लेते हैं कि जिसने एक बिन्दु का पात भी नहीं किया या बंद कर दिया वह ब्रह्मचारी है। हालांकि ब्रह्मचर्य के आदर्श की प्राप्ति भी कठिन है, पर उतने में ही इति नहीं है। भगवान महावीर ने कहा है-

तवेसु उत्तमं बंभरचेरं........।

उन्होने ब्रह्मचर्य को उत्तम तप कहा है। तब क्या मास-मासखमण की तपस्या गौण है ? बारह तपो में ब्रह्मचर्य का नामो निशान भी नहीं है। पर गहराई से विचार करे तो प्रत्येक तपस्या में ब्रह्मचर्य मौजूद है। बिना ब्रह्मचर्य के ये तपस्याएँ सफलतापूर्वक सम्पन्न नही हो सकती। ब्रह्मचर्य का गहरा अर्थ है किसी भी इन्द्रिय के वशीभूत नही होना। अभी आप सुन रहे थे कि कैसे एक इन्द्रिय के वशीभूत होकर भी व्यक्ति प्राण होम कर देते हैं। कोई कान के वशीभूत, तो कोई नाक के वशीभूत होता है और जो पाँचो इन्द्रियो के वशीभूत हो जाये उसकी जिन्दगी क्या

जिन्दगी रहेगी। उसकी जिन्दगी तो पूर्णतः अकारथ हो जाती है। इसलिए ब्रह्मचर्य के सही स्वरूप को हम बारीकी से समझें। जिसने मन से कभी दूषित चिन्तन नहीं किया, कान कभी मोहक वाणी से प्रभावित नहीं हुए, ऑख से कभी मोहक छवि नहीं देखी, नाक से उत्तेजक गंध नहीं सूंघी, स्वादों के प्रति जो कभी आकर्षित नहीं हुआ और स्पर्शजन्य सुख की जिसने कभी कामना नहीं की, वह होता है सच्चा ब्रह्मचारी और उसके आचरण में प्रकट होता है ब्रह्मचर्य का सच्चा एवं पूर्ण स्वरूप। यद्यपि क्षत्रिय इतना पूर्ण नहीं फिर भी ऐतिहासिक कथा प्रसंग यह तो स्पष्ट करते ही हैं कि सम्राट का शयन अलग स्थान पर तथा महारानी का शयन अलग स्थान पर होता था। क्यों होता था ? कारण स्पष्ट है यदि बिन्दुपात निरन्तर होता रहे तो जीवन में अपेक्षित ओजस्विता शौर्य और तेजस्विता सुरक्षित नहीं रह सकती। जिस शासनाध्यक्ष में ये नहीं रह पाये, वह कायर बन जाएगा, फिर वह दूसरों की रक्षा क्या कर पाएगा ? ऐसा क्षीण मनोबल शासक दूसरों की रक्षा करना तो दूर स्वयं ही आक्रामक से रक्षा के लिये भागने की कोशिश करेगा।

एक युवक एक संत के पास पहुँचा और कहने लगा- "जीने का तरीका बताये।" संत ने कहा- "यदि जीने का तरीका जानना चाहते हो तो एक बार भी ब्रह्मचर्य खंडित नहीं करना।" उसने कहा- ऐसे कैसे जिन्दगी गुजार पाऊँगा ? ऐसा तो संभव नही है।" संत ने कहा- "इतना नही कर सकता तो केवल एक बार से अधिक नहीं।" कहा जाता है शेर जीवन में केवल एक बार अब्रह्म का सेवन करता है परिणामस्वरूप वैसे ही पराक्रमी सिंह की पैदाइश होती है अन्यथा संभव नहीं। युवक ने किंचित् संकोच से अपनी समस्या रखी- ऐसा भी संभव नहीं हो सकेगा।" संत ने कहा- "तो फिर वर्ष मे एक बार से अधिक नहीं।" युवक ने कहा- "यह भी कठिन है, यह भी नहीं हो सकता। थोड़ी और छूट दीजिये।" संत ने कहा- "वर्ष में एक बार, नही तो माह में एक बार से अधिक नही।" युवक ने कहा- "गुरुदेव ! यह भी नहीं हो सकता।" संत ने निर्णयात्मक उत्तर दिया यह भी नहीं हो सकता तो तुम्हारी मर्जी हो वैसा करना, पर ध्यान रखना कि कफन का कपड़ा हर समय घर में

मौजूद रहे, क्या जाने किस समय जरूरत पड़ जाये।"

मरणं बिन्दु पातेन्

जीवनं बिन्दु धारणात्।

ध्यान रखिये, आपका पूरा जीवन ही वीर्य है। आँख, कान, नाक, ये सभी वीर्य हैं। उस एक बिन्दु से पूरा निर्माण हुआ है। जिस एक बिन्दु से निर्माण हुआ है, उसी के कारण ओज है, तेज है, शक्ति है। उसी से नया-प्रोडक्शन हो रहा है। वह समाप्त हो जायेगा तो फिर काम तमाम। ऑखों के नीचे गड्ढे पड़ जायेंगे और चमड़ी पर झुर्रियॉ पड़ जायेगी। वीर्य की रक्षा नहीं की तो ऑख, कान, नाक मे कभी भी गडबड़ी आ सकती है। ज्ञानियों ने यहाँ तक कहा है कि नैष्ठिक ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला चाहे तो ब्रह्माण्ड को हिला सकता है।

अर्जुन ब्रह्मचर्य को धारण कर तपोमय जीवन जी रहा था। इन्द्र के मन मे भय पैदा हो गया पता नही क्या हो जाये ? कहीं मेरा राज्य न चला जाये। पर अर्जुन हिला नही। इन्द्र ने रंभा को संबोधित किया। वह अर्जुन के पास पहुँचकर नाज-नखरे दिखाकर उसे आकर्षित करने का प्रयत्न करने लगी, परन्तु वह हिला नहीं, निष्कंप, अडोल चलता रहा। रंभा मे माता की छवि देखकर उसे लगा जैसे कि एक माता अपने पुत्र को मना रही है। परन्तु जब रंभा ने खुले रूप से प्रस्ताव रखा तो अर्जुन ने कहा- "मातेश्वरी ! तुम्हारा रूप देख मेरे मन मे विचार आता है कि ऐसी ही रूपवती माता से यदि मेरा जन्म हुआ होता तो मेरे जीवन की कुछ और ही स्थिति होती।" यह सुन रभा परास्त हो गईं और इन्द्र के पास लौटकर वह कहने लगी- "मुझे कहॉ भेजा, मुझे तो वह माता के समान मानता है।"

भीष्म पितामह ने भी ऐसी ही दृढ़ता का प्रमाण दिया था। कई लोग उनके पास पहुॅचे और बोले- आप समाज का हित नही कर रहे है। भीष्म ने कहा- मै हित कैसे नही कर रहा हूॅ ? उन्होने कहा- "आप ब्रह्मचारी है।" आप जानते है कि भीष्म गंगा के पुत्र थे और पिता के लिए आजीवन ब्रह्मचर्य स्वीकार करके चले थे। लोगो ने तर्क दिया-

"आप ब्रह्मचर्य धारण करके चल रहे हैं। आपने शादी नहीं की। यदि आप ऐसा नहीं करते तो आपसे आप जैसे वीर पुत्र समाज को प्राप्त होते।" भीष्म थोड़े हंसे फिर बोले- "आपका कथन सही है किन्तु मैं ऐसा कुछ कार्य करता तो समाज को एक-दो, चार वीर संतान दे पाता किन्तु मेरे ब्रह्मचर्य को जानकर कितनी ही संतान वीरता को धारण करेंगी। शायद इसे आप भूल रहे है।" लोग उन्हें साश्चर्य देखने लगे। उनकी समझ में आ गया कि एक, दो, चार या दस संताने ही पैदा होती और क्या होता, किन्तु एक ब्रह्मचर्य के कारण कितनी ही संताने जीवन रक्षा में समर्थ बिन्दु को बचा जीवन की अनमोल निधि प्राप्त कर सकती है।" भगवान महावीर ने इसीलिये कहा है-

देवदानवगंधव्वा, जक्ख-रक्खस-किण्णरा,
बंभयारिं णमंसंति, दुक्करं ने करंति तं॥

जो ऐसे दुष्कर ब्रह्मचर्य तप को स्वीकार करके चलने वाले हैं, उन्हें देव, दानव, गंधर्व, राक्षस, किन्नर सभी नमस्कार करते हैं। लोग चाहते हैं देव की पूजा करे किन्तु भगवान कहते हैं देव को बुलाना है तो ब्रह्मचर्य धारण करो। वे आ सकते है किन्तु ताकत स्वयं में होनी चाहिये। ब्रह्मचर्य व्रत स्वीकार करने वाले को तो चारों जातियों के देव नमन करेंगे।

क्या बतायें आपको ! पर बात चल ही गई है तो सुन लीजिये। देवलोक में ऊपर ऊपर के जो देव हैं उनमे तेज अधिक क्यों होता है जानते हैं ? उनका बल ओज अधिक क्यों होता है ? यहाँ पर जो ब्रह्मचर्य की आराधना करते हैं, तप संयम नियम की आराधना करते हैं, वे ही देव क्रमिक रूप से ऊर्ध्व विमानों को प्राप्त करते हैं। इसका कारण वहाँ का ब्रह्मचर्य व्रत है। उनमें वहाँ भी विषयासक्ति कम होती जाती है। पहले-दूसरे देवलोक में तो शरीर की परिचारणा नहीं है उनसे आगे भी कहीं स्पर्श की, कही दृष्टि की और कही मन की परिचारणा नही है, पर उसके बाद परिचारणा नहीं है। इसलिए कहा है कि ऐसे तप-संयम-ब्रह्मचर्य का पालन कर दिव्य स्वरूप को प्राप्त किया गया है। उनका इसीलिये अवर्णवाद नहीं करना चाहिये। यदि कोई अवर्णवाद

करता है तो भगवान कहते हैं वह दुर्लभबोधि बन जाता है। उन देवों का यदि कोई अवर्णवाद करे तो कालान्तर में उसे बोध मिलना तथा ज्ञान-दर्शन-चारित्र का संयोग मिलना कठिन हो जाता है। इस ब्रह्मचर्य की महिमा केवल जैन शास्त्रें में ही नहीं मानी गई है, वैदिक ग्रंथों में भी उसे महत्त्वपूर्ण स्वीकार किया गया है। यह दृष्टांत सुनिये।

ब्रह्मा-विष्णु-महेश को ज्ञात हुआ कि अनुसूया एक परम पतिव्रता नारी है। वह पर पुरुष को देखती तक नहीं है, परन्तु घर आये अतिथि को खाली भी नहीं लौटाती है। उन्होने योजना बनाई कि ऐसे समय वहाँ चलें जब उसका पति मौजूद नही हो। अतः वे पति की अनुपस्थिति में उसके घर पहुँचे। उन्होने जिद की कि उसके हाथ से ही दान लेंगे। वैदिक ग्रंथों में बताया गया है कि अनुसूया किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गई, परन्तु उसके शील तथा पतिव्रत धर्म ने ऐसा प्रभाव दिखाया कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों छोटे-छोटे बालक के रूप में आ गये। अनुसूया ने सहज भाव से उनकी इच्छा के अनुसार परोसगारी कर दी। बच्चा तो बच्चा ही होता है, उसके सम्मुख संकोच कैसा ? यह था चमत्कार, आप कहेगे यह कैसे हो गया ? ऐसा होता है। जब किसी व्रत का पूरी निष्ठा से पालन किया जाता है तब चमत्कार होते है।

आपने और भी कथाएँ सुनी होंगी। अलाउद्धीन के विरूद्ध युद्ध मे जाने की तैयारी करते समय पत्नी गुलाब का फूल देती है और कहती है- "यह कुम्हलाने लगे तो समझ लेना मेरे पर संकट आ रहा है।" ऐसा शौर्य होता है उन सतियों का, जिन्होने शील धर्म का पालन किया हो। ऐसे ही ब्रह्मचर्य व्रत की आराधना भी की जाती है। उसके लिए भगवान कहते हैं-

तवेसु उत्तमं बंम्भचेरं।

बारह प्रकार की तपस्याओ में से कोई भी तपस्या स्वीकार कर लो, पर यदि ब्रह्मचर्य सही-सलामत नहीं है तो कोई भी तपस्या सफल नहीं हो सकती चाहे अनशन हो, चाहे ऊनोदरी हो। ब्रह्मचर्य सुरक्षित नही है तो कही भी सफलता नही मिल पाएगी, न तो खाने मे सतोष होगा

न ही वह भिक्षाचर्या कर पाएगा। आसान नहीं भिक्षाचर्या, बहुत कठिन व्रत है। किसी के सामने हाथ पसारना सहज नही है। कहा गया है-

मांगण वाला मर गया।

पहले मरना पड़ता है। ऊपर से भले मरे न मरे, पर अहं को मारना ही पड़ता है। उसे जो नहीं मारता तो वह जैन विधि से तो भिक्षाचर्या कर नहीं सकता। मान लो कोई कह दे निकल जा यहाँ से तो ऐसे समय में उसे शान्त रहना होता है। यह नहीं कि वह उत्तेजित हो जाये और जवाब देने लगे कि किसको बोल रहा है ? तो यह उचित नहीं है। कोई चक्रवर्ती सम्राट दीक्षित हो जाये। पहले उसके यहाँ रहने वाली दासी भी कुछ कह दे तो कहा गया है कि वहाँ भी उतार-चढ़ाव नही लाना है। ये है मरने का रूप। जो ऐसी बात सुनने का आदी नहीं है, ऐसी स्थिति आये तो उसे भी मान को मारना पड़ेगा, तभी वह भिक्षाचर्या कर पाएगा। वहाँ भी पाँचों इन्द्रियों को मरना पड़ता है। अनेक घरों में जाना पड़ता है तो यह नहीं देखना होता है कि कैसी पोशाक बहन ने पहन रखी है, कैसे अलंकारों से वह सज्जित है। पूज्य गुरुदेव फरमाते थे- गोचरी जाने वाले को गाय की तरह होना चाहिये। गाय ये नही देखती कि मुझे बांटा कौन दे रहा है, देने वाला कितने आभूषण पहने हुए है, उसका वर्ण-सौन्दर्य कैसा है। गाय आभूषण, पोशाक, कपडे को नही देखती। वह सिर्फ बांटे को देखती है। इसलिये साधु भी इधर-उधर आँखे फाड़कर नही देखे, न ही बहराने वाले को निहारे। उसकी दृष्टि एक मात्र असणं पाणं खाइमं साइमं पर टिकी रहनी चाहिये। मात्र शुद्धाशुद्धि की गवेषणा करे तो वह भिक्षाचर्या का रूप बनता है। क्या इसमें ब्रह्मचर्य नही है ? और एक-एक तप की प्रवृत्ति को गहराई से देखे तो उसमे कही न कही ब्रह्मचर्य अवश्य मिलेगा। यदि नही हो तो वह तपस्या सध नही पाएगी। इसीलिये ब्रह्मचर्य तपों मे उत्तम है। ऐसे उत्तम ब्रह्मचर्ययुक्त जीवन का व्यक्ति आज जिस रूप मे उपयोग कर रहा है उस पर पीड़ा होती है। यह तो वैसी ही बात है जैसे बहुत कीमती सेन्ट, जिसकी एक बोतल के लगभग लाख रुपये लग जाते है। उस इत्र को कोई गारे मे डाल दे या गधे के चोपड़ दे। क्या कहेंगे उसे ? बोलने

में संकोच होता है 'मूर्ख' कैसे कहें। विचार कीजिये कि कही हम ऐसी मूर्खता तो नहीं कर रहे है ? जिस बिन्दु के निर्माण में बहुत लम्बा समय लगता है, उसे व्यर्थ ही तो नहीं बरबाद कर रहे हैं ? आप आज जो भोजन करते हैं, 40 दिन के बाद आगे से आगे निष्पादित होते हुए उससे वीर्य की कुछ बूंदे तैयार होती हैं। कितना महंगा है वह ! उसे व्यक्ति निरर्थक बहा देता है। और उसे बहाने से कितने जीवों की हिंसा होती है ? एक बार के संभोग से कितनी हिंसा होती है ? है मालूम ? दो लाख से लेकर नौ लाख तक सन्नी पंचेन्द्रिय जीवों की घात। एक बार के मैथुन सेवन से जो घात होती है, उसे एक उदाहरण से समझिये। एक भूंगली जिसे पहले लोग चूल्हा फूँकने के काम लेते थे या आज का पानी का पाइप। उसमें रूई भरी हो, फिर लोहे की गरम शलाका लेकर उस पाईप या भूंगली के भीतर जिसमे रूई भरी है, डाला जाये तो बताईये रूई जलेगी या बचेगी ? वह भस्मीभूत हो जायेगी। वैसे ही एक बार के संसर्ग से 2 लाख से लेकर 9 लाख मक्खी, मच्छर, चींटी या लट नहीं, किन्तु सन्नी मनुष्यों की घात का प्रसंग तो बनता ही है। कितने असन्नी जीवों की घात होती है, उसकी गिनती नहीं। यह स्थिति है। यदि व्यक्ति में सामर्थ्य है तो उसे नैष्ठिक जीवन व्यतीत करना चाहिये। नही है तो युवक के पूछने पर उसे जो सलाह संतजी ने दी थी उसका ध्यान रखें अर्थात् जिन्दगी में एक बार से अधिक नहीं, वह भी नहीं हो तो माह में एक बार से अधिक नहीं और वह भी नहीं तो कफन लाकर घर में रख लें।

वि. श्री निधानकंवरजी म.सा. अपनी बात रख गये। गौतममुनिजी म.सा. भी कुछ बाते सुना गये। चिन्तन-मनन करे। अच्छी लगे तो स्वीकार करे। छोटे साधु भी कभी मर्म की बात कह देते है। निधानकंवरजी म.सा. कह गये है कि "कोई कामण कर दे"। नरम ही है का-मण अर्थात् जो कायर मन होता है, उसी पर प्रभाव होता है। मन कायर नहीं है तो कोई गण्डा, तावीज काम नहीं कर सकता। मन ही यदि कायर है तो क्या कोई कुछ कर पाएगा ? इसलिए मन को कायर मत बनाओ। बना लिया तो साधना मे विक्षेप आ सकते हैं। जैसे शरीर कमजोर होता

है उसमें प्रतिरोधक क्षमता नहीं होती है तो ही बीमारी का प्रभाव होता है। प्रतिरोधक क्षमता ही मुख्य बात है। वह है तो बीमारी हो नही सकती। वैसे ही मन बलवान है, संयम से पुष्ट है, तो वहाँ कायरता आ नहीं सकती। उस पर यदि ब्रह्मचर्य का पुट है तो कोई भी प्रहार कामयाब नहीं हो सकता। क्षत्रिय इसी कारण से युद्ध क्षेत्र में टिक पाता है।

मै चार वर्णों की व्यवस्था के संदर्भ में आपसे कुछ बातें कर रहा था। उसे भूले नहीं होंगे। वर्ण व्यवस्था को गौण करके अयोग्य व्यक्तियो को जो जिसमें परिणत नहीं है उसे उस कार्य में नियोजित करने से 'आप डूबे पाण्डियो ले डूबे यजमान' की कहावत को चरितार्थ करने जैसी स्थिति है। इस संदर्भ में चिंतनीय अनेक बिन्दु है। चाहे वह डॉक्टरो का क्षेत्र हो, चाहे इंजीनियरो का क्षेत्र, 80, 90 प्रतिशत अक प्राप्त बैठे रहें और 40 प्रतिशत वाले अधिकारी बन बैठे तो उनसे क्या आशा की जा सकती है। आप स्वयं चितन करें व इस स्थिति मे कैसे सुधार हो सकता है इस दिशा मे सशस्त कदम बढ़ा सकें तो राष्ट्रहित के साथ-साथ आत्म समाधि को भी प्राप्त किया जा सकता है।

2.11.2000

❖ ❖ ❖

12. मन बने निर्ग्रन्थ

शांति जिन एक मुझ विनती सुनो....

शांति की प्राप्ति अंतर भावों मे परिवर्तन के द्वारा ही सभव है क्योंकि यदि भावनाएँ एक रूप में हो और क्रियाएँ भिन्न रूप में तो द्वंद्व की ऐसी अवस्था निर्मित हो जाती है जिसमे शांति मिल नही सकती। परन्तु विडम्बना यह है कि अधिकांशतया शांति की कामना करने वाले ऐसे द्वद्व की स्थिति में ही चलते रहते है। अंतर मे विचार कुछ होते है और क्रियाएँ उनसे भिन्न हो जाती हैं। क्रियाएँ भिन्न हो जाती हैं तो दोनो मे सामंजस्य हो नहीं पाता है। सामंजस्य हो नहीं पाता है तो हम अपनी मनोभूमिका में विषमता के बीज डाल देते है। ये ही विषमता के बीज जब बढने लगते हैं तब दिशामूढ़ अवस्था बन जाती हैं। ऐसी अवस्था मे मनुष्य सोचता कुछ है, पर कर कुछ और जाता है। इसके पीछे कुछ कारण है, उन पर विचार करें। कई बार व्यक्ति कहता है– "मैंने सोचा ही नहीं था कि ऐसा हो जाएगा ! क्यो हो गया ?" इसलिये हो गया क्योंकि अनादि से द्वद्व की रफ्तार पडी हुई है। रफ्तार पड़ी हुई होने से सोचें नही सोचे तो भी हमारी गाडी उधर ही बढ़ती चली जाती है। यह अवस्था आप पशु में भी देख सकते हैं। एक गाय लबे समय तक जिस घर मे रही होती है, कालान्तर में उसे बेच दें, खरीदने वाला उसे ले भी जाये, पर जैसे ही गाय को मौका मिलता है, लगाव किधर होता है ? पूर्व घर की ओर लगाव हो या न हो पर वह मार्ग या स्थान परिचित होता है। इसलिए उसे अपने पूर्व घर आने मे विशेष प्रयास करना नहीं पड़ता है। जिस मालिक ने उसे खरीदा होता है वह उसे रस्सी बांधकर भले ले जाये, पर स्वत: वह नहीं जाती है। वही दशा हमारे मन की वनी हुई है। अनादिकाल से जो हमारे संस्कार पडे है, उस दिशा मे हम गतिशील हो जाते है, पर जिस दिशा मे करवाना चाहते हैं उस दिशा मे पुरुपार्थ लगाना

पड़ता है। हम ले जाने की कोशिश करते है पर जैसे ही चूक हुई नहीं कि मन उन्हीं पुराने संस्कारों में चला जाता है, उन्ही मे रमने लग जाता है। जैसे बच्चो को खेल प्रिय होता है वैसे ही मन को द्वंद्व के खेल प्रिय है। जब तक द्वंद्व की अवस्था न बने उसे चैन नही पड़ती है, परन्तु जब तक वह द्वंद्व बना रहता है तब तक वह अशांत भी बना रहता है। भूतकाल में भी इससे दुःखी होता रहा था और भविष्य में भी मन की इस अवस्था से वह दुःखी होता रहेगा। इसलिए भगवान ने कहा है- संकल्प-विकल्पों मे उलझा हुआ श्रमण जीवन की आराधना नही कर पाएगा।

साधु की पोषाक पहनना ही साधु जीवन नही है। एक शिष्य गुरु के पास पहुँचे, अध्ययन करे, अन्य क्रियाओं का पालन भी करे तो भी आवश्यक नहीं कि उसे शांति मिल जाये। विदुषी महासतीजी एक ऐसे ही शिष्य के बारे में आपको बता रहीं थीं। वह शिष्य आज्ञा-पालन मे तत्पर, समय के अनुसार प्रतिक्रमण, प्रतिलेखन, गोचरी आदि सभी क्रियाएँ लगन से करे पर मन फिर भी अशांत, शांति उसे मिल नहीं रही थी। विचार कीजिये कि जब वह सभी क्रियाओ का शास्त्र-सम्मत विधि से पालन कर रहा था तब भी मन में अशांति क्यो बनी रहती थी ? उसने भी विचार किया, परन्तु जब मन की अशांति दूर नहीं हुई तो वैसे ही अशांत मन वह गुरुदेव के पास पहुँचा और वंदन कर निवेदन किया- "गुरुदेव ! मन मे शांति नही है।" गुरुदेव ने जवाब दिया- "देखो।" क्या देखे ? फिर अपनी क्रियाएँ देखी, वे ठीक लगीं अतः पुनः-पुनः उन्ही क्रियाओं में रमने लगा किन्तु शांति नही मिली। गुरु के पास पुनः गया। गुरु ने फिर दोहरा दिया कि देखो। उसकी समझ में नहीं आया कि क्या देखूं ? क्या देखना बाकी रह गया है ? टी.वी., पिक्चर देखना तो नही है। सुबह से शाम तक क्रियाओ मे ध्यान रखता हूँ, विधिपूर्वक सभी क्रियाएँ करता हूँ, उनमे क्या नया देखूं ? फिर अशांत मन गुरु के पास गया। इस बार गुरुदेव ने कहा- "वत्स ! क्रिया मे लगने के बजाय मन के कोने को पहचानने की कोशिश करो। उसमे कहीं अहंकार के भाव तो तुमने नही जमा लिये हैं।

जब-जब क्रिया करता है वस्तुस्थिति यहीं रहती थी, जिसे शिष्य समझ नहीं रहा था। अपनी उत्कृष्ट क्रिया के प्रति उसमे अहं भाव उत्पन्न हो गया था। जब-जब क्रिया करता एक-एक अडा वहाँ देता रहता कि मैं भगवान की आज्ञा के अनुसार क्रियाएँ कर रहा हूँ, उत्कृष्ट क्रिया कर रहा हूँ। यह "उत्कृष्टता की पालना की भावना" एक-एक अंडा देती रहती थी। क्रिया जरूर चलती रहती थी किन्तु भीतर के अहंकार का भी पोषण चलता रहता था। जब गुरुदेव ने तीन बार कहा- "देखो", तब उसे आवेश आ गया। अहकार पर चोट पड़ते ही क्रोध फुफकार उठता है। ये अशांति के कारण हैं। बाहर की क्रिया अशांति का जितना कारण नहीं उससे अधिक हैं अपने अदर के वे संस्कार जो अहं रोपण करते है। ये भीतर के संस्कार ही मन को, जीवन को, चेतना को अशात बना देते हैं। इससे आप यह मत समझ लेना कि उत्कृष्ट क्रिया नहीं करनी चाहिये, उत्कृष्ट क्रिया का पालन तो होना चाहिये, पर मन मे यह अहं भाव पैदा नहीं हो कि मैं उत्कृष्ट क्रिया का पालन कर रहा हूँ। साथ यही अन्य साधकों के प्रति यह हीन भावना पैदा होती है कि वे शिथिलाचारी हैं, उनका आचरण शिथिल है, उसके प्रति ऐसे मनोभाव यदि बने तो ये संस्कार भी अह पैदा करते हैं। ऐसी अवस्था भी अशांति में ले जाने वाली होती है। ऐसे भाव रखने वाला शांति प्राप्त नहीं कर पाएगा। इसीलिए प्रभु महावीर ने साधकों को सचेत किया है कि अनेक विषय तुम्हारे सामने दुनिया मे है, तुम्हारे सामने हर प्रकार की अवस्थाएँ आ सकती है लेकिन मन पर उनका प्रभाव मत पड़ने दो। अपने आपको उनसे निर्लिप्त रखो, जोड़ने का प्रयत्न मत करो। जोडने का प्रयत्न किया तो वही होगा कि उन्हे कोने मे स्थान दे दिया। ऐसे स्थान देते चले गये तो चित्त मे संकीर्णता अपने आप आती जाएगी, जगह भरती चली जायेगी।

देखिये, यह लाल भवन इतना बडा है, पर यदि दान देने वाले पाटे, चौकियाँ, आलमारियाँ आदि का लगातार दान देने लग जाएगें और वे पाटे-आलमारियाँ आदि पूरे भवन में एकत्र करने लगेंगे तो वे जुड़ते चले जायेगे। ऐसी स्थिति मे लाल भवन का यह स्थान संकुचित होगा या

नहीं ? भवन का कितना ही स्थान उन्हीं से भर जायेगा या नहीं ? तब लाल भवन में संकीर्णता आयेगी या नहीं ? जैसे जुड़ाव से स्थान संकीर्ण होता है वैसे ही जब हम किन्हीं भावों को मन से जोड़ते हैं, तो मन मे भी स्थान भरने लगता है। जब ईर्ष्या, राग, द्वेष आदि की भावनाएँ पैदा होती है तो मन के कोने घेरती है। इसी प्रकार क्रोध, मान, माया, लोभ आदि की भावनाएँ भी होती हैं। जब इन सबको जुटाने का प्रयास किया जाता है तब ये इकट्ठी हो होकर चित्त में जमनें लग जाती हैं। तब चित्त में संकीर्णता आने लगती है। इसलिए तीर्थंकर देव कहते हैं किसी भी अवस्था को अपने साथ जोड़ने का प्रयास मत करो। यदि ये अवस्थाएँ जमती हैं तो समझो कि विषैले बीज बोये गये हैं। ये विषैले बीज जल्दी फैलाव करते हैं। आम फलते देर लगती है, पर विष वृक्ष बहुत जल्दी फलते हैं। क्रोध, मान, माया, लोभ, ईर्ष्या आदि की भावनाएँ जल्दी फलित होती हैं। सद्गुणो को फलाने में समय लगता है। जैसे कोई नई गाय खरीदता है तो पहले रस्सी से बाँधकर उसे लाता है। लाकर घर में रखता है, खिलाता है, पिलाता है तो धीरे-धीरे वह वहाँ रहने लग जाती है। इस प्रकार जब वह नये घर की आदि हो जाती है, फिर पुराने घर की ओर नहीं देखती। इसलिए साधु जीवन में प्रवेश करने वाले को चाहिये कि जब राग-द्वेष को छोड़कर साधु बने है, निर्ग्रन्थ बने रहें। निर्ग्रन्थ किसे कहते हैं ? राग-द्वेष की ग्रन्थि को तोड़ने वाले को। आप यदि पुनः राग-द्वेष पैदा करते हैं तो आप निर्ग्रन्थता को सुरक्षित रख नहीं पाओगे। वे ग्रन्थियाँ दुर्भेद्य हैं। ग्रन्थियों का भेदन कठिनाई से होता है। भेदन करने के बाद ही सम्यक्दृष्टि-भाव और श्रावक जीवन का स्वरूप उजागर होता है। पर यदि पुनः राग-द्वेष की गाँठें बाँधते चले गये तो फिर चाहे प्रतिलेखन आदि क्रियाएँ कर लें किन्तु ग्रंथि तो पड़ गई है उससे छुटकारा कैसे मिलेगा ? भले श्रेष्ठ क्रिया करें किन्तु राग-द्वेष करने की, बढ़ाने की तीर्थंकर देवों की आज्ञा नहीं है। क्या तीर्थंकर देवों ने कहा है कि राग-द्वेष बढ़ाया जाये ? क्या काम-क्रोध बढ़ाया जाना चाहिये। उसका परिमार्जन, परिष्करण नहीं करना चाहिये ? वीतराग देवो की आज्ञा की हमे पूर्ण पालना करनी चाहिये।

कई बार पूछा जाता है कि बहुत से जीव गौतम स्वामी जैसी करनी कर नवग्रैवेयक तक तो चले जाते है, मुक्ति क्यों नहीं जाते ? उत्तर है उनके चित्त से संसार की मोह-माया छूट नही पाती है। तो ग्रंथि का भेदन होना चाहिये, वह हो नही पाता बल्कि मन उसे और बढ़ाता है। देव के सुखों का संकल्प करता है, मन में उन्हे जमाता है और मन मे निरंतर एक कामना चलती रहती है कि पर लोक में दैनिक सुख प्राप्त हों, ऐसी कामना भी तो गाँठ है, यह जुड़ी या लगी रहती है तो वहॉ भी मन का विस्तार हो नही पाता है। जो विशाल दायरा बनना चाहिये, वह बन नहीं पाता है। यही कारण है कि मुक्ति अलभ्य हो जाती है।

मुक्ति के लिए चेतना का दर्पण की भाँति निर्मल होना जरूरी है। जब राग-द्वेष जनित सारे चित्र धुल जायेगे, चित्त परिष्कृत हो जायेगा और चेतना दर्पण की भाँति निर्मल हो जायेगी तो ही फल मिलने की सभावना बनेगी। आपने देखा होगा दर्पण अपने ऊपर कुछ जमाता नहीं है, व्यक्ति की छाया पडी तो प्रतिबिम्ब बनता है, पर उसके हटते ही प्रतिबिम्ब भी साफ हो जाता है, वैसे ही जब हमारी चेतना बन जाएगी तभी मुक्ति की स्थिति बनेगी। नही तो कितना ही करो, पहले से यदि कुछ भी जमाव होता है तो फिर उस पर थोडा-थोड़ा और जमनें लग जाता है। सतह पूर्ण रूप से परिष्कृत हो, चिकनी हो तो वैसी अवस्था बन नहीं सकती। इसीलिए कहते है कि शांति चाहते हो तो चित्त का परिष्कार आवश्यक है। यह कर लिया तो साधना में रफ्तार से चलने मे दुविधा हो नही सकती। चेतना के ऐसे पूर्ण परिष्कृत स्वरूप के दर्शन हम भगवान महावीर मे कर सकते है। इस दृष्टि से उनके जीवन के कतिपय प्रसंगों पर दृष्टिपात उपयुक्त होगा। प्रभु महावीर शूलपाणि यक्ष द्वारा भयकर उपसर्ग वेदना दिये जाने पर भी अविचलित रहे। उनके स्थान पर यदि कोई सामान्य व्यक्ति होता तो तड़फकर मृत्यु को प्राप्त हो जाता। सात-सात जगह पर वेदना परिव्याप्त की गई किन्तु फिर भी महावीर अडोल-अकंप बने रहे यदि भगवान महावीर के मन में हल्का-सा विचार भी आ जाता कि शूलपाणि मेरे निकट नहीं आये तो स्वतः ही वैसा हो जाता, परन्तु उनकी परिष्कृत चेतना ऐसी सांसारिक एवं भौतिक संवेदनाओं से पूर्णतः मुक्त थी। इसी प्रकार सेठ सुदर्शन जव ध्यान में बैठे

थे तब अर्जुन मालाकार का हाथ ऊपर का ऊपर रह गया। जब मुद्गरपाणि यक्ष भी भाग जाये तो शूलपाणि की क्या औकात की भगवान के निकट आ जाये। आज के श्रावक कहेंगे भगवान की क्या ताकत थी ? ताकत तो हमारे मे थी। एक श्रावक में थी। सेठ पीड़ित नहीं हुआ यह ठीक है किन्तु प्रभु तो प्रतिकार करना ही नहीं चाहते थे। वे किसी की शरण लेकर नहीं चल रहे थे। सेठ सुदर्शन ने कहा- "णमोत्थुणं, अरिहंताणं भगवंताणं....." और भगवान महावीर की शरण स्वीकार कर सागारी संथारा स्वीकार कर लिया। वह श्रावक की क्षमता नहीं थी बल्कि शरण स्वीकार करने से विशुद्ध भावों के कारण जो आभामंडल बना था उसके प्रभाव से देव समीप पहुँच नहीं पाया था। प्रभु ऐसे शरण स्वीकार करके चलने वाले नहीं थे। इसके विपरीत वे चाहते थे कि ऐसे-ऐसे उपसर्ग बने और उनके भीतर की धुलाई हो जाये। चित्त में जितना भी जमाव जुड़ा हो वह सब हट जाये। इसे यों समझिये। आपको लगे कि लाल भवन से फर्नीचर हटाना है। सारे भंगार तथा टूटी-फूटी आलमारियाँ निकालनी हैं और कोई कहे कि मैं मजदूरी नहीं लूंगा, कहें तो निकाल दूँ। तो कौन तैयार नहीं होता ? वैसे ही भगवान भी चाहते थे कि उनके भीतर जो जमाव हो गया था, संकीर्णता आ गई थी उसे उपसर्ग-परिषह देने वाले हटा-हटाकर दूर कर रहे थे। वे तो उनकी चेतना को विस्तार देने में सहयोगी बन रहे थे। इस प्रकार वे उनका उपकार मान रहे थे। क्योंकि वे तो चेतना का परिष्कार कर उसे निर्मल बना रहे थे।

भगवतीसूत्र में बताया गया है कि छद्मस्थ अवस्था की अंतिम रात्रि मे उन्होंने कतिपय स्वप्न देखे थे। कुछ ग्रंथों में बताया गया है कि शूलपाणि के उपसर्ग से उन्हे जो थकान आ गई थी उसी में भगवान ने दस स्वप्न देखे। इन स्वप्नों मे उन्होंनें-

1. पिशाच को पछाड़ते देखा।
2. श्वेत कोकिल को देखा।
3. विचित्र कोकिल को देखा।
4. दैदीप्यमान दो रत्नमालाएँ देखीं।
5. श्वेत गौ वर्ण देखा।
6. पद्म सरोवर देखा।

7. समुद्र को भुजाओं से तैरकर पार करते देखा।

8 मेरु पर्वत को अपनी आँतों से आवेष्टित देखा।

9. उदयमान सूर्य को आलोक करते देखा।

10 मेरू पर स्वयं को आरोहण करते देखा।

उसके पश्चात् प्रतिबुद्धता की स्थिति बन गई।

वहाँ इन स्वप्नो के अर्थ भी बतलाये गये हैं। पिशाच के रूप में भगवान ने मोहनीय कर्म को पछाड़ा/क्षय किया। श्वेत कोकिल के रूप में श्रुत की विविधता का प्रतिपादन किया। दैदीप्यमान दो रत्नमालाओं का अर्थ वहाँ नही बताया गया है। श्वेत गौ वर्ण के दर्शन का गूढ प्रतिकात्मक अर्थ है कि गौ के चार स्तन होते हैं। जैसे उनमें दूध भरा रहता है, वैसे ही गुण समूह का पात्र चार तीर्थ है जो अमृत लिये हुए रहेगे। उनके समान ही चतुर्विध तीर्थ अपने आप मे पावन-पवित्र होता है, जिनकी पूजा-अर्चना करने वाले भी संसार से तिर जाते हैं। केवल साधु-साध्वी का ही नही, किन्तु श्रावक-श्राविका का आश्रय लेकर भी संसार से तिरा जा सकता है। किन्तु तब जब साधु या श्रावक अनर्गल बाते न करे। यह नही कि जहाँ बीज भी नही हो वहाँ वे पेड़ बता दे। कई पत्रकारो और राजनेताओं की ऐसी ही आदत होती है। जहाँ सूखा पडा है वहाँ वे मानसून बना सकते हैं। ऐसा यदि श्रावक और साधु भी करें तो समझ लेना चाहिये कि वे हकीकत मे साधु जीवन की मूल अवस्था का स्पर्श भी नहीं कर पाये है। इसलिए यहाँ बताया है कि जैसे गौ स्तन अमृत से भरे होते है, वैसे ही ज्ञान-दर्शन-चारित्र रूप अमृत से तीर्थ भी भरे होते है।

छठे स्वप्न मे भगवान ने पद्म सरोवर देखा था। इसका प्रतिकार्य था कि चार जाति के देव भगवान की सेवा करेंगे। समुद्र को भुजाओ से तैरकर पार करते देखने का निहितार्थ था कि भगवान संसार सागर को अपने पौरुष से तैरकर पार करेगे। उदीयमान सूर्य भगवान के केवलज्ञान की प्राप्ति का सकेत कर रहा था। मेरु पर्वत पर चढ़ने और सिंहासन पर बैठने का अर्थ यह ले कि वे समवशरण मे उपदेश देंगे।

इस प्रकार निश्चित रूप से स्वप्नो के अर्थ बताने में मैं समर्थ

नहीं तथापि निहित अर्थों के आधार पर मैंने व्याख्या की है। व
रत्नमालाओं को दो प्रकार के धर्म- 1. आगार धर्म, 2. अणगार धर्म की
प्ररूपणा का प्रतीक माना जा सकता है। जैसे रत्नमालाएँ गले में सुशोभि
होती हैं वैसे ही वे दो धर्म व्यक्ति के जीवन को सुशोभित एव
सुव्यवस्थित कर सकते हैं।

भगवान महावीर ने अपनी चेतना को पूर्णतः निर्मल-ग्रन्थिहीन
रखा था तभी तो वे निर्ग्रन्थ कहलाये। पर हम हैं कि ग्रंथि को कसते जा
हैं। कसी हुई ग्रंथि या ग्रंथि पर लगी हुई ग्रंथि को खोलना कठिन होत
है। मैंने अभी कहा था कि यदि चेतना पर थोड़ा-सा भी जमाव हो त
उस पर क्रमशः और जमाव होता जायेगा। जमाव से उसे मुक्त रखने क
एक ही मार्ग है- चित्त की सतह को पूर्णतः परिष्कृत एवं चिकना रख
जाये ताकि सम्पर्क में जो कुछ भी आये, जमे नही, फिसल जाये औ
सतह पूर्णतः निर्मल बनी रहे।

मैंने निर्मल दर्पण की बात भी कही थी। दर्पण जब तक अपने
ऊपर कुछ जमाता नहीं तब तक ही उसमें स्पष्ट प्रतिबिम्ब दिखता है
ऐसी निर्मल सतह या ऐसा निर्मल मन जो मोह माया और ग्रन्थियो से
मुक्त होता है, वही मुक्ति तक पहुँचा सकता है, केवल अच्छी करनी
या अच्छे कर्म से ही मुक्ति संभव नहीं है। मोह माया से मुक्ति औ
ग्रन्थिभेदन प्रथम आवश्यकता हैं। यही द्वद्व की स्थिति से मुक्ति का मार्ग
है और द्वंद्वों से मुक्ति ही शाँति की स्थिति हैं। अतः हम चित्त को निर्मल
बनाने का प्रयत्न करें। चित्त-शुद्धि होगी तो आत्मशाँति प्राप्त हो सकती
है। तीर्थंकर देवों की आज्ञा की पालना करें वही मूल है। मूल को नही
छोडें। कषाय को कम करने का प्रयत्न करें। यदि कषाय की वृद्धि की
तो कुछ भी करें, कहीं भी चले जायें, चाहे जगल मे, निर्जन में चले
जाये, तो भी शाँति नहीं मिलेगी। शाँति मिलेगी मन को पूर्णतः
संकल्प-विकल्प-मुक्त रखने से ही। भगवान के उपदेश को गहराई से
समझें और उसके अनुसार आचरण करे, हमारा जीवन धन्य होगा।

3 11 2000

❖ ❖ ❖

13. अहं तज अर्हं बनो

कुंथु जिन मनडू किम ही न बाजे.........

शांति की प्राप्ति के लिए सोपानों की चर्चा करते समय जो विषय हमारे सामने आते हैं उनमें मन की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। मन को हम टिकाने का प्रयास करते हैं, लगाने का प्रयत्न करते हैं किन्तु ये मन बेकाबू है, किस क्षण किधर निकल जाये, पता ही नहीं चलता। मन की यह भी एक बडी शिकायत है। यह शिकायत कवि की हो रही हो ऐसी बात नही है, साधको की तो यह आम शिकायत रही है। चाहे साधक चरमशरीरी हो या गुफाओं में साधना कर रहा हो। मन की अवस्था किसी को भी कही से कही पहुँचा देती है।

अरिष्टनेमि के भ्राता रथनेमि गुफा मे साधना कर रहे थे। राजीमति उधर से निकली। वर्षा के कारण भीग गई थी। देखा यह गुफा है, कपडो को सुखा लूं। प्रकाश से गुफा मे अंधकारयुक्त प्रभाव से प्रवेश करने पर भीतर कौन है ज्ञात नही हो पाता। राजीमति को भी ज्ञात नहीं हो पाया। वह कपडे उतारकर सुखाने का उपक्रम करने लगी। गुफा मे पूर्व से रथनेमि ध्यान मे स्थित थे। मन को साधना में लगाये हुए थे। किन्तु शास्त्रकार कहते हैं- **रहनेमी भग्गचित्तो पच्छा दिट्ठो य तीइ विजो** मन ध्यान साधना में लगा था, वह कहाँ चला गया ? नथनेमि कोई सामान्य साधक नही थे। चरमशरीरी थे किन्तु मन की अवस्था क्या भरोसा ? इसलिये कोई यह न समझ ले कि मैं इसी भव मे मुक्त होने वाला हूँ, मेरा मन इधर-उधर नहीं हो सकता।

मन की अवस्था चलायमान कर देती है। इसलिए कवि कहते हैं- भगवन् ! इस मन की क्या बात करूँ ? कितना ही समझाने का

प्रयत्न किया किन्तु इसे समझ नहीं पड़ती है। न रात का ठिकाना है, न दिन का। कई जो चोर उचक्के होते हैं वे रात को जागते है तो दिन में विश्राम कर लेते हैं। कई व्यक्ति रात्रि में सोने वाले होते हैं, पर मन को कहीं विराम नहीं-

रजनी वासर, बस्ती उज्जड़.........।

दिन हो या रात हो, बस्ती के बीच में हो या उजाड़ में हो, निर्जन स्थान हो या गुलजार हो, कहीं भी यह मन जा सकता है, इसके लिये कहीं कोई रुकावट नहीं है। इसकी गति निरापद है, कोई उसे अवरूद्ध नहीं कर सकता। शरीर की गति का अवरोध हो जाता है, वचन को भी जब तब विराम मिल जाता है, पर मन की गति को कभी विराम नही है, न कहीं भी कोई रुकावट है। आप चाहे ध्यान में बैठे हैं, पर मन तो जयपुर में सैर-सपाटे पर चला जाता है। मन कब कहाँ चला जावेगा पता नहीं। जिसको इस जन्म में कभी आपने देखा नहीं, जिसके बारे में कभी सुना नहीं, ऐसे स्थान पर भी वह चला जाता है। कभी मेरु की यात्र करता होगा, कभी स्वयंभूरमण की ओर गति करता होगा। देखा क्या, कैसा होता है स्वयंभूरमण समुद्र ? नरक की भी यात्र करता है। इसे कही बाधा नहीं। कवि कहते हैं- भगवन् ! क्या बताऊँ आपको बड़ी विचित्र बात है। साँप किसी व्यक्ति को काटता है तो काटने के बाद भी उसका मुँह खाली का खाली रह जाता है-

साँप खाय ने पोथू मुजड़ा.........।

क्या मिलेगा इसे ? साँप किसी को काटे उसके बावजूद मुँह स्वादरहित रहता है। यही दशा मन की है। ये कहीं भी चला जाता है, आकाश, पाताल कहीं रूकावट नहीं, उसके बावजूद थोथा ही रहता है। स्वाद चख नही पाता, स्वाद से ये दूर का दूर ही रहता है। खाने के समय रसना को आगे कर देता है। वह चटोरी चट कर लेती है और यह दूर ही बना रहता है। फिर भी सोचता है मै आस्वाद ले रहा हूँ। पर कहाँ ले पा रहा था ? आँखों से विविध दृश्य देखता है किन्तु थोडी देर में ही वहाँ से गति कर लेता है। यह मन बड़ा विचित्र है। यह मन बहाने

भी बहुत कर लेता है। यह भुलावे मे भी बहुत डालता है। मन मे थोडी सी कमजोरी हो जाये तो मन बोलेगा आज तो माथा दुःख रहा है, आज नही चले सतो के यहॉ। यह प्रमाद है या क्या है ? यह मन को समझाने की बातें हैं, पर मन ऐसे बहुत बहाने ढूंढ लेता है। कोई दृढधर्मी ही होगे जो बहाने नही ढूंढते हों। मैने यही देखा है ऐसे एक दृढधर्मी साधक को। सीढियो से चढ़ने में तकलीफ होती है, फिर भी अष्टमी को पहुँचकर पौषध करते हैं। नहीं तो कह सकते है कि मैं तो आ नहीं सकता, घर में ही कर लूंगा। परन्तु लाल भवन तक पहुँचने का लक्ष्य रखते हैं। कई भाई घर मे सामायिक-पौषध कर लेगे, मन भले न लगे। पर उनका धर्मस्थान तक पहुॅचने का लक्ष्य नही बन पाता। कई बहाने निकाल लेते हैं- आज मेहमान आ गये, फोन आ गया, बीमारी आ गई आदि। सारे काम दुनिया के हो सकते है, पर नही होगा तो धर्म। यह काम फुर्सत का है। जिसे और कोई काम न हो या तो बेकार हो वह अपनावे धर्म को। यह कदर धर्म की। इसी प्रकार यदि धर्म को समझा है तो क्या धर्म हमारी रक्षा करेगा ?

दुःख में सुमिरण सब करे, सुख में करे न कोय।
जो सुख में सुमिरण करे, तो दुःख काहे को होय॥

किसी से पूछे- "नमस्कार मंत्र गिनते हो ?" कहे- "हॉ गिनता हूँ।" "कितने ?" 5, 7, 11 . ...., पर कहाँ आवश्यकता है ? हम कहते है एक नमस्कार ऐसा गिन लो कि बार-बार गिनने की जरूरत ही न पड़े। किसी से कहे कि आनुपूर्वी गिन लिया करो तो मानो मेरू का भार पड़ गया। हमारी तैयारी हो नहीं पाती। यदि इतना ही जंजाल लगता है नवकार से तो एक ऐसा गिन लो कि पुनः पुनः गिनने की आवश्यकता ही न पडे, बल्कि आपको लोग गिनने लग जाये।

ऐसो पंच णमोक्कारो, सव्व पावप्पणासणो.........।

सभी पापो का नाश करने वाला है, पर हमने नहीं समझा तो समझ ले कि यह सर्वपापों का नाश करने वाला है, यह सर्वोषधि है। अन्य औषधि तो किसी एक बीमारी मे काम करती है, पर यह सर्वोषधि है। कौन-सी बीमारी है जिसमे नमस्कार मत्र का सफलतापूर्वक उपयाग

न किया जा सकता हो ? एक नहीं अनेक बीमारियों के प्रसंग के उदाहरण दिये जा सकते हैं जहाँ नमस्कार मंत्र की शरण लेकर उन्हें दूर कर दिया गया हो। तब इस मंत्र के प्रयोग के बाद कौन-सी बीमारी सता पाएगी ? और एक बात समझ लीजिये कि मोहकर्म के छेदन का नमस्कार मंत्र बहुत महत्त्वपूर्ण साधन है, पर हमने समझा कहाँ है ? हम दुनिया के सारे काम कर लेते हैं किन्तु धर्म की आराधना या महामंत्र की साधना जैसे कार्यों से अलग ही रह जाते हैं। ज्ञानियों ने बताया है कि दिन-रात की चार संध्याएँ निरन्तर साधनामय बन जाये। सूर्योदय का समय, मध्याह्न का समय, सूर्यास्त का समय और अर्धरात्रि का समय, ये चार संधिकाल हैं। यदि इन चारों कालों की साधना संवरयुक्त सही बन जाये तो फिर आप देखिये कि क्या रौनक आ जाती है और ऐसी कौनसी कामना है जो सफल नहीं हो सकती ? पर पता नहीं क्यों व्यक्ति परवश होकर इधर-उधर भटकता रहता है ? वह अपनी घर की निधि को ही नहीं जानता।

ज्ञानीजन कहते हैं कि मनुष्य इधर-उधर भटकने में जिन्दगी बर्बाद कर देता है किन्तु पाता क्या है ? मन भी बहुत भटका है, पर पाता क्या ? अभी थोड़ी देर पहले संतों से सुन रहे थे- "सब जगह भटक आये हैं" इतने भटकते रहे पर मनुष्य तन पाकर भी भटकन को दूर नहीं किया तो क्या किया ? घर में कोई बच्चा भटकने वाला बन जाये या उसका पढाई में मन नहीं लगता हो तो क्या करोगे ? उसके प्रति कितना खेद होगा ? समझाने का प्रयत्न करोगे, पर नहीं माना और वश चला तो दो-चार चाँटे लगा दोगे। और इतने में भी न माने तो ऐसे शब्द भी मुँह से निकल जाते हैं- "निकल जा घर से"। पर आपको कौन कहे कि आप बिगड़ैल हो या सुधरैल हो ? आपकी आत्मा तो अनादिकाल से बिगड़ी हुई है। गोते खा रही है, पर आज तक अपने घर नहीं पहुँची है। संत कबीर ने इसी भटकन को लक्ष्य कर कहा था- **"साधो, कबहुँ न निज घर आये"**। यदि घर का एक सदस्य भी समय पर नही पहुँचे तो कहेगे- "कहाँ रहा था ?" यदि नहीं माने और आपका वश नही चले तो भले मन मसोसकर रह जाये, पर वश चलेगा तो

कहेंगे- "9-10 बजे के बाद बाहर नही रहना, समय पर पहुँच जाना"। पर हम अपने घर को देखे। हम घर आये हैं या बाहर ही भटक रहे हैं ? हमारा मन कहॉ-कहाँ भटकता रहता है इस पर भी तो विचार करें।

भगवान महावीर एक बार उस क्षेत्र में पहुँचे जहाँ अछन्दक नामक ज्योतिषी रहता था। लोगों में उसकी धाक थी कि यह ज्योतिषी है, नीतिक है। लोग उससे भय भी खाते थे। भगवान की सेवा में रहने वाले सिद्धार्थ देव ने लोगों से कहा यह ढोंगी है। उसने अपनी कई पोप लीलाएँ लोगों को बताई, जिससे उसकी आजीविका पर संकट आ गया। जब अछन्दक की आजीविका पर संकट आया तब वह भगवान के पास पहुँचा और उसने निवेदन किया- "भगवन् ! आप करुणावत्सल हैं, फिर मेरे जैसे व्यक्ति की वृत्ति उच्छेद कर कैसी करुणा कर रहे हैं ? आप कहीं भी विचरण कर सकते हैं, पर मुझे तो यहीं आजीविका अर्जित करनी है"। प्रभु ने सुना तो तत्काल विहार कर गये। सोचा, नहीं मुझे किसी की आजीविका का छेदन नहीं करना है। और आपकी क्या वृत्ति रहती है ? कोई ग्राहक पड़ौसी की दुकान पर चढ़े तो क्या करोगे ? उसकी पेढ़ी पर एक पैर रखा किन्तु उस व्यक्ति ने नहीं देखा है। आपने देखा कि उसने नही देखा, तो फिर क्या करोगे ? थोड़े से पैसे के लिए दूसरे की रोजी रोटी पर कहीं कुठाराघात तो नहीं कर देते है ? घर मे रहने वाले नौकर की वृत्तिच्छेद का प्रसंग तो नही उत्पन्न करते है ? उनके साथ न्याय-नीति का व्यवहार तो रहता है ? कौन जाने। तो आप लोग अपने-अपने घर को देखे। अपने घर का समीक्षण-परीक्षण करेंगे तब ही अपने मन की सही स्थिति का मूल्यांकन कर पायेगे। पर कौन करे परीक्षण ? पढ़ाई खूब की पर परीक्षा नही दे तो अक कैसे मिलेंगे ? आप हृदय का, चित्तवृत्ति का समीक्षण करिये। समीक्षण करेंगे तो परीक्षण सामने आ जायेगा। खून का टेस्ट किया जाता है, ले जाकर देखने मात्र से नही किन्तु दूसरे-दूसरे केमिकल मिलाकर उसमे होने वाले परिवर्तनो की परीक्षा की जाती है। उसकी परीक्षा करने के बाद ही डॉक्टर रिजल्ट देता है कि रक्त में शुगर कम हुई है या बढी है, कॉलेस्ट्रोल अधिक है या बराबर है। जैसे परीक्षा होने पर ही रिजल्ट सामने आता है वैसे ही

हमारे लिये परीक्षा का यह अवसर प्रस्तुत हुआ है। इसलिए हम भी पहले अपनी चित्त शक्तियों का अध्ययन करें कि वे किधर डोल रही हैं- भ्रमित हो रही है या कैसे-कैसे उतार-चढ़ाव इनमें आ रहे हैं। यदि समीक्षा की तो मन की परीक्षा संपन्न होने मे देर नहीं लगेगी।

कवि को यह बताया गया है कि मन के द्वारा ही शांति प्राप्त हो सकती है। तो पूछा मन की परीक्षा कैसे हो ? पहले मन का समीक्षण करें कि मन क्या कर रहा है। समीक्षण क्या है ? यह भी आपके लिए एक अजूबा बन जावेगा। समीक्षण का कौन-सा मंत्र है ? बाजार में जाकर पूछेंगे तो नही मिलेगा। "सम-ईक्षण" अर्थात् समभाव से देखना। अपनी तरु से कोई सुझाव नहीं देना है। केवल मन की गतिविधि को देखते रहे। उसमें शुभ-अशुभ का विभाग नही करें, न ही उसे प्रेरणा दें, केवल देखे। कोकिल अंडे देती है, पर अंडे को सेती नहीं है। इसका मतलब यह नही है कि वह लापरवाह हो जाती है। अडे को कौवी सेती है। कोकिल दूर रहकर निगरानी रखती है कि कोई बिगाड़ न कर दे। जब देखती है पूरे पक गये है, फूट गये है तब उन्हें प्राप्त कर लेती है। लेकिन कब ? जब निरन्तर समीक्षण किया होता है, तब। उसने कौवी को हटाने का प्रयत्न नहीं किया था कि वह कैसे दबा रही है। वह तो केवल दूर रहकर देखती रही थी। वैसे ही आप दूर रहकर देखते रहे। समीक्षण की अवस्था बनेगी तब ही जान पाओगे कि मन क्या-क्या गति कर रहा है।

पुलिस वाले क्या करते हैं। चोर का अड्डा कहाँ है, जानते है पर चलने देते है। बस निरीक्षण करते रहते हैं। जब तक गाड़ी धकती है, धकने देते हैं किन्तु जब आदेश जारी होता है कि 24 घंटे में लाकर खड़ा कर दो, तो वे वैसा कर देते हैं या नहीं ? इसीलिये कि उनर्क लगातार निगाह बनी रहती है कभी न कर पायें यह बात अलग है, प ऐसा बहुत कम ही होता है। परन्तु उनकी निगाह बराबर बनी रहती है कि अपराधी कहाँ छुपे हो सकते है। वैसे ही समीक्षण की निगाह रहे वि मन क्या-क्या गतिविधि करता है। फिर जब कहे कि अपराधी को लाकर खड़ा करना है तो खड़ा करें और कहे दिशानिर्देश, तो दिशानिर्देश

के रूप में खड़ा कर सकते हैं। जिस मन के लिए कहते है कि मन व: मे नहीं है वही मन पालतू कुत्ता बनकर खड़ा रहेगा। अगर इस प्रका समीक्षण करते रहें तो मन से जैसा चाहे वैसा करवा सकते है।

यह समीक्षण मन की वृत्तियो का किस प्रकार शुद्धीकरण करता है, इसका मैं एक और उदाहरण देता हूँ- चण्डकौशिक का। एक साधु साधना कर रहा था। भिक्षा के लिए निकला। कहते है कि पाँव के नीचे मेंढ़की आ गई। कहीं आता है कि सूखी मेढ़की थी। शिष्य ने कहा- "गुरुदेव मेंढ़की पैरों से मर गई।" गुरुजी को गुस्सा आया। वहाँ पर और भी सूखी मेढकी पड़ी थीं। पूछा- "वे भी मेरे पैर से मरी हैं क्या ?" शिष्य ने सोचा रास्ते में विवाद करना ठीक नहीं। अतः जब शाम को प्रतिक्रमण हो गया तब शिष्य ने सहज भाव से गुरुदेव से तथ्य निवेदन कर दिया। गुरुदेव को आ गया गुस्सा और उसे मारने के लिए जैसे ही उठे खभे से टकरा गये। कहीं आता है ऊपर टाण्ड से माथा टकराया और मृत्यु हो गई। मरकर कहाँ गये ? ज्योतिषी देव में पहुँचे। वहाँ से निकलकर कनखल आश्रम मे जन्म लिया। तब उनका नाम था- कौशिक। वहाँ तपस्या तो की किन्तु क्रोध की मात्र इतनी कि प्रत्येक तपस्वी को परेशान कर डाला। फिर पूरे आश्रम पर आधिपत्य जमा लिया। हठधर्मिता इतनी कि आश्रम से लगे वनखण्ड में से भी किसी को फल-फूल लेने नहीं देता था। आखिर सारे तपस्वी परेशान होकर चले गये। एक बार कुछ राजकुमार उधर आये और उन्होने उस वन मे से फल-फूल तोड़ लिये। खा-पीकर मौज-मस्ती करने लगे। उधर कौशिक जंगल से वापस आ रहा था। हाथ मे लकड़िया थी। वन को कुछ तहस-नहस स्थिति में देखा। पूछा, तो ग्वालो ने कहा- हमने तो नहीं किया, वे राजकुमार आये हैं उन्होने फल-फूल खाये है। उसने लकड़ियाँ पटकीं, आश्रम से तेज धार की कटार निकाली और राजकुमारो को मारने दौडा। राजकुमार भी दौडे। सोचा तपस्वी है कुछ कर न दे। किन्तु कौशिक तो क्रोध के उफान मे था। गड्ढे मे गिरा, हाथ मे नंगी कटार थी, सीधी छाती मे जा घुसी और वह वही काल कवलित हो गया। देखिये ! मन की गति की स्थिति और उसके परिणाम। क्रोध की

अवस्था मे मरकर क्या बना ? सर्प बना।

पूर्व के भव का उसका नाम था कौशिक और अब चड अवस्था थी इसलिए नाम पड़ा चण्डकौशिक। अपने आश्रम से अपार मोह था। इस कारण उसी वन प्रान्त में सर्प बन गया। अब भी उसमें किसी को प्रवेश नहीं करने देता था। पहले मानव के रूप में, अब जन्तु के रूप में सबका काल बन रहा था। भगवान महावीर भी उसी वन-प्रान्त से होकर गुजर रहे थे। खतरा था किन्तु खतरे से महावीर घबरा जायें तो महावीर कैसे ? आज के बच्चो का नाम भले महावीर रख दें किन्तु बिल्ली घूर कर देख ले तो रोने लगेंगे क्योकि मम्मी ऐसे संस्कार देती हैं पर महावीर कहॉ भयभीत होने वाले थे। कोई उनके निमित्त से कष्ट पाये तो भले चले जाये, पर उन्हे भय दिखाकर मार्ग नहीं पलटाया जा सकता था। तभी वे आचारांग में बोल सके-

सव्वओ पमत्तस्स भयं सव्वओ अपमत्तस्स नत्थि भयं।

अप्रमादी को कहीं कोई भय हो नहीं सकता। वे निर्भयता से आगे बढ़ते रहे। दूर से ही चंडकौशिक ने देखा। आज ये हिम्मत करके कौन बढ़ा चला आ रहा है ? दूर से दृष्टि प्रक्षेप किया, पर कोई प्रभाव नही पड़ा। कोई फर्क नही दिखा। वे तो बांबी पर ध्यान लगाकर खड़े थे। ऑखो मे ऑखे डालीं, पर कोई प्रभाव नहीं। बल्कि उनकी ऑखो से अमृत टपक रहा था, करुणा का वर्षण हो रहा था। फिर भी वह शात नही हुआ। व्यक्ति भीतर से ठंडा हो जाये पर उसका ईगो, (अहं) ठंडा नही पड़ता। अंदर से वह हार मान चुका होता है, पर अकड़ बनी रहती है। मेरी मूँछ का बाल नीचा नही होना चाहिये। भले जान ले कि मेरी गलती है, कमजोरी है, पर बात मेरी ही ऊँची रहनी चाहिये। उसी को आजमाने के लिए भीषण अह से ग्रस्त चण्डकौशिक ने भगवान के पैर के अगूठे पर डंक मार दिया। जैसे ही रक्त का प्रवाह चला, उसे रक्त मे वहुत अंतर लगा। यह अंतर था रक्त में व्याप्त श्वेत कणो के कारण। श्वेत कणो की विशेषता क्या होती है। श्वेत कण, प्रेम, करुणा, वात्सल्य, अहिंसा के द्योतक है। श्वेत कणों से हमारे भीतर प्रतिरोधक क्षमता वनी रहती है। उनकी कमी होने पर प्रतिरोध की क्षमता घट जाती

है। यदि प्रतिरोधक क्षमता है तो बीमारी घर नहीं कर सकती। यही अहिंसा का प्रयोग है। आपको बीमारी आने का कारण क्या है ? प्रतिरोधक क्षमता का कम हो जाना। आप अहिंसा का पालन करने लग जाये तो वह अपने आप बढ़ जायेगी।

प्रशममुनिजी म.सा. गठिया की बीमारी से 12 वर्ष की उम्र मे ही जकड़ गये थे। उनकी माता ने सतों से कहा- दर्शन दे दो। शासन प्रभावक श्री धर्मेशमुनिजी म.सा. ने दर्शन दिये। कहा- संकल्प कर लो, बीमारी दूर हो जाये तो साधु बन जाओगे। माता से भी कहा कि बीमारी दूर हो जाये तो अंतराय नहीं देना। माता ने कहा- इसे इतना कष्ट है, दीक्षा ले ले तो अच्छे से देख तो सकूंगी। अतः कह दिया- मैं अंतराय नहीं दूंगी। 6 महीने में गठिया साफ। आज हजारों कि.मी. की यात्र कर लेते है। महाराष्ट्र, राजस्थान, दक्षिण भारत, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ विचरण कर चूके है- गठिये का नामोनिशान नहीं। ये है अहिंसा का प्रयोग। पर हम अहिंसा का प्रयोग करना नही चाहते है। ऐलोपैथिक चिकित्सा पद्धति में ऐसी कौनसी औषधि है, जिसमें हिसा न होती हो ? हर औषध का प्रयोग जीवित पशुओ पर किया जाता है। प्रयोग से वे छटपटाते हैं। उनमें उत्तेजना आती है। आप ने तो गोली ली और गले के नीचे उतार ली। माथा दुखता था ठीक हो जाएगा। अरे ! भला क्या ठीक हो गया ? भीतर कितनी बीमारी और प्रवेश कर गई यह पता चला क्या ? यदि पशुओ के आर्त्तध्यान का सबंध जोड़ो तो वह आपके भीतर कैसे रसायन पैदा करेगा, यह सोचते है क्या ? वह आपके चित्त को चलायमान बना सकता है। किन्तु यदि अहिंसा को अपनाने का प्रयास किया होता तो फिर देखते कि बीमारी कैसे जड़ से दूर होती है। भावो में परिवर्तन आया कि चमत्कार हो जाता है किन्तु भाव-परिवर्तन हम करना कहाँ चाहते हैं। हमारी तो भेड़िया घसान चाल है। बस, दूसरे के पीछे चल पडते है। हम स्वयं समीक्षा-परीक्षा न करे तो आत्मा मे वीरता का संचार हो कैसे सकता है ? भगवान महावीर तो मौनपूर्वक चित्तवृत्ति का समीक्षण-परीक्षण कर रहे थे। कैसे-कैसे उपसर्ग-संकट आये पर वे निश्चल बने रहे। चडकोशिक स्वयं निढाल हो गया। उसने जितना करना

था, कर लिया। उसी क्षण भगवान महावीर ने कहा-

संबुज्जह, किं न बुज्जह.........।

बोध को प्राप्त कर। देख-देख पिछले जन्मों को। प्रतिक्रमण कर ले। उसका समीक्षण कर ले और जैसे ही मुडता है, पिछला जीवन चलचित्र की तरह सामने आ जाता है- मैं कौशिक था। आर्त्त-रौद्र ध्यान मे सर्प बना। ओहो। मैं ज्योतिषविमान में देव बन गया। वस्तुतः मैं साधु बना हुआ था किन्तु एक क्रोध ने मुझे कहाँ से कहाँ ला पटका, मेरी कैसी दुर्दशा कर दी। वह प्रभु महावीर के चरणों मे गिरकर पश्चात्ताप करने लगा- मै प्रतिज्ञा करता हूॅ, अब से मैं किसी का प्रतिकार नहीं करूँगा। किसी पर प्रहार नहीं करूँगा। मेरी दृष्टि मे जहर है, उसे बिल में ही समेटे रखूंगा ताकि मेरे कारण किसी का प्राण अपहृत न हो। पर भगवान महावीर तो आगे बढ़ गये। ग्वालों ने देखा वे चले जा रहे थे। मरे नहीं थे। उन्हें जिज्ञासा हुई देखें तो सही कहाँ क्या हुआ था। वे पत्थर फेंक कर परीक्षण कर रहे थे- जिन्दा है या मर गया ? देखा जिन्दा था, पर हिलता-डुलता नहीं था। अरे ! ये तो बापजी प्रकट हो गये ! बापजी ने सर्प के रूप में अवतार ले लिया था। वे घी, दूध, शक्कर ले चढ़ावा करने लगे, जिसके कारण चींटियाँ आकर उसे सालने लगी। वह हिल-डुल नहीं रहा था। उसे चिन्ता थी कि उसके हिलने से कोई चींटी नीचे दब न जाये।

आप सामायिक मे चलें तो ध्यान रहता है कि कोई चींटी पैर के नीचे आ तो नहीं रही है ? आपका पैर तो परमात्मा का पैर है। आ भी गई तो स्वर्ग में जायेगी। जैसे यज्ञ में कहते हैं कि जो बलि में मरे वह स्वर्ग मे जाता है। आप भी यदि ऐसा ही सोचें तो बात अलग है। बाकी सामायिक में कर्त्तव्य है कि दिन में देखकर, रात्रि मे पूंजकर चलें। ओघा घुमाने से काम नही होगा। होना यह चाहिये कि एक भी पैर बिना पूंजे नही पड़े। पर यदि देखें किधर, पूंजे किधर और चले किधर। अरे भाई, तू नाव की पतवार थोड़े खे रहा है ? पहले हृदय मे दया होनी चाहिये तभी ये अनुष्ठान सफल होंगे। जीवों के प्रति दया नही, तो ये अनुष्ठान फीके ही रह जाएंगे। शांति मिल नही पाएगी।

चण्डकौशिक हिला-डुला नही। अनशन करके अपनी आत्मा का उद्धार कर लिया। धर्मबोधि से उसने इतना परिवर्तन कर लिया। पर बंधुओ ! हमने महावीर की इतनी वाणी सुनी, सुना- 'संबुज्जह किं न बुज्जह' हमें भी बोध दिया जा रहा है किन्तु सुनकर भी क्या हम कहीं क्रोध अहं में तो नहीं जा रहे है ?

चण्डकौशिक ने अपने मन का समीक्षण किया, उसकी भव-भवान्तर की काषायिक वृत्ति में परिवर्तन आ गया। वह तो तिर्यंच था आप और हम तो मनुष्य है, श्रावक एवं साधु हैं। जब चण्डकौशिक समीक्षण से अपना परिवर्तन कर सकता है तो क्या हम अपना परिवर्तन नहीं कर सकते ? अवश्य कर सकते हैं आवश्यकता है मन के समीक्षण की।

4.11.2000

❖ ❖ ❖

14. परम धर्म है औषधि

धरम परम अरनाथ नो........।

कुंथुनाथ भगवान की स्तुति में मन की व्यथा को प्रस्तुत करते हुए कहा गया है- भगवन् !

मनहू किम ही न बाजे........।

मै कितना ही कुछ करता हूँ किन्तु यह मन केन्द्रित हो ही नहीं पाता है, न ही वह अपने भीतर रही बात को व्यक्त ही करता है। यह चाहता क्या है ज्ञात ही नहीं हो पाता। यह तो अपनी गति से ही चलता रहता है।

कोई व्यक्ति किसी चीज की कामना करे, चाह करे और स्पष्ट भी कह दे तब तो जानकारी मिले कि उसे अमुक वस्तु की कामना है। उस स्थिति में उस चाह को पूर्ण करना भी संभव हो सकता है। किन्तु इस मन की स्थिति अजीब है, यह कुछ झलकाता तो नही, क्षण मे कहीं तो क्षण में कहीं उछाला खाता रहता है। इस स्थिति मे कैसे इसे लाईन पर लाया जाये ?

बंधुओं ! इस प्रश्न का उत्तर अत्यंत सरल है। यदि इसे लाईन पर लाना है तो धर्म का आश्रय लिया जाये। धर्म ही एकमात्र ऐसा माध्यम है जो मन को केन्द्रित कर सकता है और उसे अमन की यात्र करवा सकता है। धर्म ऐसा तत्त्व है, जिससे मन की परेशानी दूर हो सकती है, तो सहज ही वह उस तत्त्व को प्राप्त करने का प्रयत्न करे। कवि आनन्दघनजी भी बोल गये है- प्रभु के चरणो मे भगवन् ! मैने जाना कि मन की अवस्था को ठीक करने का, मन की विक्षेखलित स्थिति को व्यवस्थित करने का धर्म ही एकमात्र माध्मय है। परन्तु तभी उनके लिये एक नई समस्या उत्पन्न हो गई। उन्होने यह तो जाना कि अरहनाथ का

धर्म परम श्रेष्ठ है, किन्तु-

किम जाणू भगवंतो रे........।

उसे समझूं कैसे, जानूं कैसे ? ये ही मेरे लिए बडी विडम्बना है।

बंधुओं ! सत्य तो यह है कि धर्म के नाम पर आज एक प्रकार का बियावन फैला हुआ है। धर्म एक अरण्य के स्वरूप में हमारे सामने आ गया है। जैसे भयंकर जंगल को पार करना दुरूह होता है, वैसे ही आज के युग में धर्म के नाम पर जो व्यवस्था चल रही है उसमे परम धर्म को पाना अत्यंत कठिन हो गया है। जंगल में अनेक औषधियाँ होती हैं, पर साथ ही इतना सारा घास भी उग आया होता है कि उसमे पता ही नहीं लगता कि औषधि, जड़ी-बूटी कौन-सी है। यह औषधि है या घास है ?

रामायण के प्रसंग से भी एक बात सामने आती है। लक्ष्मण को जब शक्ति लगी, तब वे बेहोश हो गये। उनके उपचार के लिए संजीवनी बूंटी की आवश्यकता थी। हनुमानजी से संजीवनी बूंटी लाने के लिये कहा गया। हनुमानजी गये भी पर वहॉ इतनी सारी हरियाली थी, औषधियाँ और जडी-बूटियो के साथ इतना सारा घास-फूस भी उगा हुआ था कि वे चक्कर में पड गये। हालांकि हनुमान को पहचान भी बतायी गई थी किन्तु नाना प्रकार की वनस्पतियों के बीच उनकी बुद्धि काम नहीं कर पायी। वे संभ्रम में पड़ गये कि कौनसी ले जाएॅ ? कैसे पता चले कि ये सजीवनी है या सामान्य वनस्पति है। ले भी जाऊॅ और वह काम भी न आये। प्रभु का जीवन कही मेरे निमित्त से खतरे में न पड जाये। उन्होने तो समाधान निकाल लिया- एक जड़ी-बूटी नहीं वल्कि पूरा पहाड उठाकर ले आये, पर हमारे पास पहाड उठाने की क्षमता नही है। हम तो वैसे ही भ्रमित मति वाले है। चले भी जाये और रास्ता भी न मिले, मार्ग भटक जाये तो वियावन जंगल मे कहाँ पहुँचेगे ? तव वहाँ सजीवनी वूंटी या कोई और जड़ी-वूंटी कैसे मिलेगी ? यही स्थिति आज धर्म के नाम पर वनी हुई है। प्रत्येक धर्म में प्रलोभन की स्थितियाँ सामने

आती है। कहा जाता है- इस धर्म में आ जाओ ये हो जायेगा, वो हो जायेगा। मैं पूज्य गुरुदेव आचार्य श्री नानेश का उदाहरण दे रहा हूँ।

आचार्य पूज्य गुरुदेव जब जागृत हो गये तब उनकी यह लगन बन गई कि मुझे तो साधु बनना है, साधना करनी है। आप जानते हैं कि साधु बनने के लिए, साधना के लिए, दिशाबोध की आवश्यकता रहती है। आकाश में वायुयान उड़ता है किन्तु उसके लिए भी दिशा-सूचक यंत्र लगे रहते हैं। उन्हीं के आधार पर उसकी गति रहती है और वह दिशा निर्धारित करता है। वैसे ही साधना के क्षेत्र में दिशासूचक यंत्र की आवश्यकता होती है। दिशासूचक यंत्र के रूप में गुरु होते हैं। तो आचार्यदेव ने भी संतों की खोज प्रारंभ की। पहुँचे एक स्थान पर, संतों की सेवा में भी रहे। कई श्रावक सामने आ गये। कहने लगे- वैरागीजी ! आप पक्का निश्चय कर लो कि यहीं दीक्षा लूंगा। हम अभी से दस्तावेज लिख देते हैं, आपको ही संघ का आचार्य बनाया जायेगा। आचार्यश्री सोचने लगे- अभी तो मेरी साधना का पता नहीं, न ही मुझे कुछ आता है और ये कहते हैं कि आचार्य बना देंगे, पूज्य बना देंगे। मुझे आचार्य बनने के लिए साधु नहीं बनना है; पैर पुजवाने के लिए भी साधना नहीं करनी है। पैर पुजवाने के लिए यदि साधना की तो वह उद्धार नहीं कर पाएगी। कहेंगे कि इतने लोग वंदन करेंगे तो हम भी साधु बन जायेंगे। लोग मत्थएण वंदामि कहेंगे। यदि पैर पुजवाने में ही लग गए तो साधना का जो लाभ मिलना चाहिये वह मिल नहीं पाएगा क्योंकि वहाँ तो यह लक्ष्य ही नही होगा। लक्ष्य के अनुरूप ही तो गति होती है। लक्ष्य न बने तो गति बन नहीं पाती है। आचार्यश्री वैरागी अवस्था में भी रहे, उम्र चाहे छोटी हो पर दृष्टिकोण पूर्ण परिपक्व एवं स्पष्ट था। प्रतिभा और अंतर की प्रज्ञा इतनी जागृत थी कि उन्हे ऐसे प्रलोभन विचलित नहीं कर सके। आचार्यश्री ने समझ लिया कि इस प्रकार मुझे साधना का जो मकरंद मिलना चाहिये वह नहीं मिल पाएगा। वे आगे बढ़ गये खोज में।

आगे देखा- बहुत बड़ा पाटा लगा है, स्थूलकाय संत-महंत विराजमान है। एक पाटे पर बडे-बडे पोथे रखे हैं। विद्वत्ता का पूरा स्वरूप उजागर हो रहा है। पहुँचे नानालालजी और कहने लगे- "गुरुदेव !

मैं धार्मिक अध्ययन करना चाहता हूँ।" उत्तर मिला- "भाई । पहले विचार कर लो, मेरे पास दीक्षा लेते हो तो ही पढ़ाएंगे।" आप जरा सोचिये- ये क्या कोई सौदेबाजी है ? दीक्षा लो तो पढावें नहीं तो नही । उन्होने देखा यहाँ भी काम नही चलेगा तो और आगे बढ गये। मन में चिन्तन चलने लगा- पता नही वीतराग की उपासना करने वालों के मन मे भी राग का प्रसंग कैसे बन जाता है ? जैसे नींबू के नाम से मुँह मे पानी आने लगता है वैसे ही वैरागी को देखकर वीतरागता की उपासना करने वालों के मुँह मे लारें पड़ने लग जाती हैं। ऐसी स्थिति क्यों बनती है ? एक जगह पर और आचार्यश्री पहुँचे। कहा गया- ये नये पातरे रंगे हुए है। तुम दीक्षा लो तो तुम्हारी नेश्राय मे कर देगे। देखा यहाँ भी धर्म के नाम पर धोखा है। वस्तुतः विरले ही नर होते है जो अपनी प्रज्ञा से धर्म के सही स्वरूप की खोज कर सकें। नानालालजी ने युवाचार्य श्री गणेशीलालजी म सा के पहले कभी दर्शन नही किये थे और सुना था कि आचार्य श्री जवाहरलालजी म.सा. खादी पहनते हैं और जब खादी का रेशा ऐसा जुड़ा है कि वे खादी पहनते है तो सादगी का जीवन जीने वाले भी होंगे। आचार्य श्री जवाहरलालजी म सा तो गुजरात मे विराज रहे थे, पर सुना था कि उनके ही उत्तराधिकारी श्री गणेशीलालजी म सा. हैं जो कोटा में विराज रहे हैं तो सहज ही विचार बना और निर्णय कर लिया कि मुझे युवाचार्य श्री गणेशीलालजी म.सा के दर्शन करने जाना है। उनसे कहा गया- "वहाँ क्या मिलना है, फूटे-टूटे पातरे मिलेगे, ऐसे नये-नये नही मिलने हैं।" निर्णय लिया था तो सोचा दर्शन तो कर लूँ। पहली बार दर्शन किये। न कोई बात, न कोई चीत। व्याख्यान चल रहा था। व्याख्यान का इतना प्रभाव पडा कि व्याख्यान पूर्ण होते ही निवेदन कर दिया- "गुरुदेव ! मैं आपके पास दीक्षा लेना चाहता हूँ।" गुरुदेव ने कहा- "भाई । दीक्षा कोई सामान्य बात नहीं है, बच्चो के रमकडे नहीं है कि थोड़ी देर खेल लिया, फिर छोड दिया। यह जिन्दगी भर का सवाल है। यह नहीं कि आज शादी कर लो, कल तलाक दे दो। जिन्दगी भर साधना मय जीवन व्यतीत करना होता है। दीक्षा की अभी कोई जल्दी नहीं है। पहले हमारे पास रहकर हमे देखो, हम तुम्हे देखेंगे फिर तुम्हारी स्थिति का अनुभव करेंगे, तुम्हें भी जब विश्वास हो जाये तब

दीक्षा का प्रसंग बनेगा।"

आप लोग क्या करते हैं ? जब लड़के की शादी तय करते हैं तो कई जगह देखकर फिर एक को पसन्द करते हैं। साधना के क्षेत्र में भी यह परख होनी आवश्यक है। आचार्यश्री ने भी परख की। बंधुओं ! मैं कोई जीवन चरित्र नहीं सुना रहा हूँ। मैं बता रहा हूँ कि धर्म की खोज करें तो कैसे करें। कवि के सामने भी यह समस्या रही थी और आज भी वह मौजूद है कि कहीं व्यक्ति क्रियाओं में उलझकर रह जाता है और कहीं वैचारिक लच्छेदार अवस्था या विचारों का ऐसा ताना-बाना बुना जाता है कि व्यक्ति उसमें उलझ कर रह जाता है। पर इन विचारों और क्रियाओं में कभी धर्म प्राप्त हो नहीं सकता। दुनिया में विचार करने वालों और क्रियाएँ करने वालों की कमी नहीं है, कमी है तो दोनों के बीच सामंजस्य बैठाने वालों की।

दोपहरी में चर्चा का प्रसंग चल रहा था उसमें कुछ स्थल विशेषावश्यक भाष्य के चल गये थे। वहाँ सामायिक की बहुत-सी परिभाषाएँ की हुई है। एक स्थल पर बताया गया है- जानना सामायिक है। जो पापों से छुटकारा दिलाये, ऐसा जानना सामायिक होता है। वहाँ पर सामायिक के पर्यायवाची शब्दो का भी विवेचन किया गया है। उसमें एक शब्द आया था 'परिज्ञा'। परिज्ञा-सामायिक कैसे ? चारों ओर से पाप के परित्याग के लिए जो जानना होता है, वह परिज्ञा कहलाता है। ऐसी सामायिक वीतरागो की होती है। वे चारों ओर से जानते हैं, प्रत्येक आत्मप्रदेश से जानते हैं। तीर्थंकर देवों का, सर्वज्ञों का एक-एक आत्मप्रदेश जानता है, देखता है। यह नहीं कि अमुक आत्मप्रदेश ह जानते हैं या अमुक ही देखते हैं। इसलिए उन्हें देखने के लिए आँख की आवश्यकता नहीं। वहाँ आँखे हैं तो भी ठीक है, आँख बंद कर ल है तो भी देखने में अंतर नहीं आएगा। यह बात मैं यहाँ इसलिए बत रहा हूँ कि शब्दो की परिक्रमा में व्यक्ति कैसे भ्रमित हो जाता है। किन्त उसके अर्थ का सामजस्य बिठाने मे प्रज्ञा समर्थ है तो यहाँ भ्रमना क स्थिति बनने के बजाय समाधान की स्थिति बन जायेगी।

कविता में कहा गया है-

धरम परम अरनाथ नो.........।

यहाँ पर भी एक प्रश्न उपस्थित होता है कि अरनाथ का धा परम है तो क्या बाकी के तीर्थंकरों का धर्म परम नहीं है ? कहा अंत है ? उत्तर- अंतर नहीं है। फिर अरनाथ के धर्म के साथ परम विशेष की आवश्यकता कहाँ रह गई। क्यों है परम विशेषण की आवश्यकता प्रश्न नही उठता है। आपके उठा ? नहीं उठा, तो उठाना है। जेवर बनक नहीं सुनना है। यदि जेवर बनकर, मिट्टी के माधो बनकर सुने तो व मात्र पादपूर्ति होगी। जब कोई श्लोक या गाथा बनाने का प्रसंग होता और एकाध अक्षर कम पड़ता है तब छंदबद्ध करने वालों ने छूट दी पादपूर्ति के लिए। वैसे ही हमारा सुनना हो सकता है, पर उससे कह कुछ घटित नहीं हो पाएगा। अरनाथ का धर्म परम है इसलिए दूस तीर्थंकरो के लिए धर्म परम नही है, यह नहीं मान लेना है। किन्तु हमा धर्म और तीर्थंकर धर्म में अंतर है। उनका धर्म परम है और हमारा धा सराग धर्म है। उनका धर्म वीतराग धर्म है। यह अंतर है या नहीं सरागता और वीतरागता मे अंतर है। भगवन् ! आपका धर्म परम है किन् हमारा अभी परम धर्म नहीं है। परम धर्म को प्राप्त करना है, किन्तु अभ मैं सरागता मे हूँ। जहाँ-तहाँ राग का भाव जोडता रहता हूँ। हमारा किस न किसी से राग है किन्तु वीतराग का किसी से कोई राग नहीं है इसलिए कहा, आपका जो धर्म है वह परम धर्म है। मेरी आँखों में त राग भाव का मोतिया छाया हुआ है। तब-

केम जाणू भगवंतो रे.........।

हम आपके परम धर्म को कैसे जाने ? उसे जानने के लि आँख मे अजन होना आवश्यक है। जब तक मोतिया या कालापानी पूर दूर नहीं हो जाता तब तक परम धर्म को जानना संभव नहीं है। मोतिय है राग भाव का, कषाय भाव का। जब तक डॉक्टर को दिखा नही दे और अजन, इलाज या ऑपरेशन नही करवा ले तब तक आँखों से जाले दूर नहीं होगे और तब तक परम धर्म को जानना भी मामूली या सहज

बात नही होगी। जानना है तो पहले इलाज करवाना होगा। भगवान महावीर साधना मार्ग पर आरूढ़ हैं। आने वाले उपसर्गों की विचित्रता है पर वे न तो घबराते हैं, न ही भयभीत होते हैं। उनके शरीर का एक रोम भी प्रकंपित नही होता। गौतम, महावीर की चरणोपासना में लम्बे समय तक रहे फिर भी उन्हें उस परम धर्म का दर्शन नही हो पाया। इसलिए भगवान महावीर ने एक बार कह दिया–

न हु जिणे अज्ज दीसर........।

गौतम ! अभी तू जिन को नहीं देख रहा है। आप किसे देख रहे हैं ? मेरे को या महावीर की मूर्ति को ? उस समय देखा होगा तो भगवान महावीर के शरीर को। वे तथा बहुत से लोग देख रहे होगे। किन्तु जो नौ गणधर जिन का, महावीर का जो रूप देख पाया वह गणधर गौतम ने उस समय तक नही देखा था। नौ गणधर देख चुके थे। कैसे देख चुके थे ? उन्होंने उस परम धर्म को प्राप्त कर लिया था, वीतराग धर्म को प्राप्त कर लिया था। सर्वज्ञ–सर्वदर्शी अवस्था प्राप्त कर ली थी इसलिए उन्होंने अपने उस ज्ञान में प्रभु महावीर के यथार्थ रूप को जान लिया था, उसके दर्शन कर लिये थे।

कवि कहते हैं– आपके धर्म को कैसे जानें ? बड़ी ग्रन्थियाँ हैं। राग–द्वेष की ग्रंथियाँ बनी हुई हैं। इतनी गहरी ग्रंथियाँ हैं इन्हें खोलें कैसे ? ऐसी शिलाएँ पड़ी हैं, जिन्हें जब तक दूर न करें तब तक परम धर्म प्राप्त नहीं किया जा सकता। समझना तो हो सकता है किन्तु वह भी औपचारिक रूप से समझना हो सकता है। सागरोपम–पल्योपम के लिए शास्त्रें में उदाहरण दिये हैं। बातें जटिल पड़ रही हैं, पर एक दिन इस मार्ग से गुजरना तो पड़ेगा ही। तो क्यों नहीं आज ही इस मार्ग को अपना लें। कठिन मार्ग को प्राथमिकता देनी ही चाहिये। सागरोपम आदि को बड़े रूप में उपमा से बताया गया है। बता दिया किन्तु वैसा न किया, न करते है, न करेगे किन्तु उपमा देकर स्वरूप दर्शाने का प्रयत्न किया गया है। ऐसे ही उपमा से तीर्थंकर के परम धर्म को जान सकते हैं किन्तु यथार्थ तो तब जानेंगे जब अंजन आँखों मे आंजा जायेगा। जब वीतरागता आएगी, जब सरागता हटेगी तभी उसे जान पाएगें। किन्तु वह

न हो तब तक समझने में सफल हुआ जा सकता है न प्रयत्न करने से जाना जा सकता है। इसे एक उपमा से समझें।

उववाईसूत्र में बताया गया है कि सिद्धों का सुख कैसा होता है। जैसे किसी आदिवासी को राजा राजसी भोजन करवा दे और वह आदिवासी जिसने जिन्दगी मे कभी मिठाई खाई नही, वह घर जाकर कहे कि मैंने मिठाई खाई, बहुत मीठी थी। वह घर वालों को कैसे बताये कि मिठास कैसी थी ? घर वाले कितने-कितने फलों के नाम लें, परन्तु वह कहता रहे कि वह मिठास इन सबसे भिन्न थी, तो क्या वह अपने आस्वाद को व्यक्त कर पायेगा ? तो वह उन अनादियों को कैसे बतावें ? रसगुल्ले का स्वाद वे कैसे बताये जिन्होंने कभी रसगुल्ला खाया ही नहीं ? भले ही परिवार वाले कहते रहे कि ये तो झूठा है किन्तु मिठाई खाने वाला जानता है कि मै झूठा नहीं हूँ। इसी प्रकार जो परम धर्म का स्वाद चख लेता है उसे फिर दुनिया की बातो में रुचि नही आ सकती। उसे लगेगा कि ये सब नीरस बाते है, जैसे उस आदिवासी को सभी मीठे फल उस रसगुल्ले के सामने फीके लग रहे थे। वैसे ही जब तक गौतम परम धर्म को प्राप्त नही कर पाये तब तक भगवान के स्वरूप को नही देख सकते थे।

प्रसंगोपात भगवान महावीर द्वारा वीतरागता की साधना मे बढ़ाये जा रहे कदम की झलक पा ले। भगवान महावीर उस जाल को तोड़कर सरागता से वीतरागता की ओर कदम बढा रहे थे। चंडकौशिक का उद्धार कर वे तो निर्विकार भाव से आगे चल पडे। कहीं भी मन मे यह भाव पैदा नही हुआ कि मुडकर देखूं कि कितने लोग इस चमत्कार को देख रहे है ताकि यह इतिहास मे सुरक्षित रहे और लोग कहे कि कैसा अद्वितीय साधक निकला था। आज थोडी-सी कोई बड़ी बात हो जाये तो कामना होगी कि यह नोट होनी चाहिये, इतिहास में आनी चाहिये। देखिये कहाँ तक लालसा बढ़ जाती है। किन्तु भगवान ने तो मुडकर भी नही देखा। वे उत्तर वाचाला पहुँच गये और 15 दिन की तपस्या का पारणा नागसेन के घर किया।

एक प्रश्न अनेक बार व्यक्त होता है कि भगवान वे पात्र भी नहीं रखते थे। करपात्र (हाथ) में ही भोजन ग्रहण कर लेते थे। तो आज के साधु पातरे, झोली लेकर क्यों चलते है ? ये बातें भी समझने की हैं। तीर्थंकर ने जो किया, वह नही करता है; जैसा कहा है, वैसा करना है। उनकी बात अलग थी। वे तो वीतरागता में कदम बढ़ा चुके थे। वे खोज करते हैं। अपनी बीमारी को दूर करने में लगे थे। आप जानते है कि डॉक्टर कैसे शोध करते हैं। जैसे वे पहले खोजकर, परीक्षण कर, निदान कर दवाई का प्रयोग करते है कि इसका किस प्रकार का प्रभाव हो सकता है, तब उसे उपयोग हेतु घोषित करते हैं वैसे ही तीर्थंकर प्रयोग करते हैं। प्रयोग करने के बाद देखते हैं कि मैं जिस मार्ग पर घूमकर आया हूँ वह मार्ग सुलभ है तब उस मार्ग की प्ररूपणा करते हैं, तब कहते हैं- इस मार्ग पर गति हो। इसीलिए कहा है कि तीर्थंकर प्रभु महावीर ने जो किया वह नहीं करना है। कहा है वैसा आचरण करने की आवश्यकता है।

भगवान महावीर की एक जीवनी ही परम धर्म और सामान्य धर्म का बोध कराने में पूर्ण समर्थ है। भगवान महावीर के ही जीवन वृत्तान्त के कुछ प्रसंग प्रस्तुत है। आवश्यक निर्युक्ति व इतर ग्रंथों में ऐसी बात आती है कि सुरभिपुर जाते हुए उन्होंने नौकारोहण किया था। उस समय निमित्तक ने बात बतायी कि भयंकर तूफान आने वाला है। नौका जब बीच नदी में पहुँचेगी तब भयंकर तूफान आयेगा, सारे यात्री समाप्त हो जायेगे। पर महावीर के नौका पर आरूढ़ होने के कारण बचाव होने की स्थिति बनी। भगवान महावीर के नौकारोहण के संबध में बताया गया है कि त्रिपृष्ठ के भव में जो सिंह था और जिसे त्रिपृष्ठ ने जबड़े पकड़कर चीर दिया था। वह सिह कई योनियों मे भ्रमण कर सुदृष्ट नाम का देव बना। जब उसने महावीर को देखा तब उसका पुराना वैर जागृत हो गया। बदला लेने के लिए जब नौका नदी में चल रही थी और बीच भंवर मे पहुॅची तो उस सुदृष्ट देव ने भयकर तूफान उत्पन्न किया, पर उपसर्गो के पश्चात् भी नदी पार करके प्रभु महावीर सुरभिपुर में नदी के परले किनारे पहुँच गये। वहॉ एक निमितज्ञ ज्योतिष की गणना करता

हुआ पहुँचा। उसने वहाँ उनके पैरो के चिन्ह देखे, सोचा इधर से कोई बड़ा चक्रवर्ती सम्राट निकला है। निकले अधिक समय नहीं हुआ है क्योंकि पदचिन्ह ताजे हैं। अतः मैं जल्दी पहुँचूं, ताकि कुछ न कुछ दान-दक्षिणा प्राप्त हो जाये। बंधुओं ! अपनी-अपनी सभी सोचते है। वह भी वहाँ पहुँच गया, चरणो में। वहाँ एक साधक को देख वह चकित रह गया। यह तो भिक्षुक है। शरीर के लक्षणों को देखा। लक्षणो से तो स्पष्ट है, पर ये तो अकिंचन है ! उसका विश्वास डिगने लगा। धिक्कार है मेरी ज्योतिष को। इतना समय बर्बाद किया। ये पोथे सारे थोथे हैं। बंधुओं ! उसने तो सोच लिया पर हम तो कभी नहीं सोचते कि क्या पड़ा है इन आगमों में। वस्तुतः पोथे क्या करेंगे। वे निर्जीव हैं, पर उनमे जो अंकित है उसे सही तरीके से समझे तो उनमें ही सबकुछ पड़ा है। उनके अतिरिक्त कहीं कुछ नहीं है।

ज्योतिषी का विश्वास डिग गया। मेरी ज्योतिष झूठी है। झूठी है तो इतने ग्रंथों का भार ढोकर क्यों चलूं ? बताया जाता है उस समय उसके मन में आया कि इन्हें फाड़कर फेंक दूं, नदी मे विसर्जित कर दूं, जिससे ऐसे गलत ग्रंथों को पढ़कर दूसरे लोग भ्रमित नही हों। मैं डूबा सो डूबा, दूसरे तो न डूबें। इनका तो पृथ्वी पर रहना ही उचित नही है। वह नदी में ग्रन्थों को डालने की तैयारी कर ही रहा था कि देवराज इन्द्र को ध्यान आया कि देखे भगवान कहाँ विचरण कर रहे हैं। ओ हो ! अनर्थ हो जायेगा। ये एक व्यक्ति नास्तिक बनकर कितनो का अकल्याण करेगा। बंधुओं ! एक की श्रद्धा डिगती है तो वह कितनो की ही श्रद्धा डिगा देता है। एक भारी भरकम मकान हिलता है तो पास-पडौस की कितनी ही झौपड़ियो को ले बैठता है। कोई निकट से गुजर रहा हो तो उसे भी नही बख्शता।

एक की श्रद्धा डिगती है तो वह ऐसे खोटे तर्क प्रस्तुत करता है, जिनका हम एकाएक समाधान नही कर पाते। तर्क के आधार पर लगेगा बात एकदम सही है, किन्तु क्या सही है, क्या गलत यह निश्चय कैसे हो क्योंकि तर्क या भाव जिधर बिठाओ उधर बैठ जाता है। जिसके पीछे श्रद्धा का संबल नहीं है उसे तर्क भटका सकते हैं। भगवान ने भी स्पष्ट किया है कि तर्क में ही चलते रहे तो मोक्ष मार्ग में, आत्मदर्शन

मे उपस्थित नही हो पाएंगे। आत्म अनुभव में कोई तर्क नहीं लगता। कोई कहे मुझे आत्मज्ञान हो गया, तो तर्क कहेगा कैसे हो गया ? यहाँ तर्क का, गति का प्रवेश हो नहीं सकता। वहाँ का दिव्यलोक देख ले तो मति चकराती है। मति में सरागता होती है। वह उसे झेल नहीं पाती। हमारी समझ ऐसी है जो देवों का दिव्य रूप झेलने मे समर्थ नहीं है। इसलिए देव भी तीर्थंकर देवों के समवशरण में अपना रूप, उत्तर वैक्रिय रूप बनाकर पहुँचने की कोशिश करते हैं। हमारी मति में भी उस परम धर्म को प्राप्त करना असंभव नहीं है किन्तु कठिन जरूर है।

कवि कहते हैं- 'केम जाणूं' - कैसे जानूं ? कैसे जानेंगे ? ये तो वैज्ञानिक खोज है। वैज्ञानिक खोज करते हैं, कैमिकल्स मिलाते रहते हैं। मिलाते-मिलाते कुछ बना देते हैं। तर्क कहाँ काम आता है ? आप जानते हैं कि वकील कोर्ट में तर्क से सच्चे को झूठा और झूठे को सच्चा कर देते है। ये काम वकीलों का नही, तर्क का है। वकील क्या कर पाएगा। उसके पास तर्क की तिकड़म होती है वह उसके आधार पर यदि किसी को बचा सकता हैं तो किसी को डूबा भी सकता है। किन्तु परम धर्म में मति का, तर्क का प्रवेश नहीं हो सकता।

इन्द्र ने ज्योतिषी से कहा- "क्या कर रहे हो।" उसने उत्तर दिया- ये पोथे काम के नही हैं। मेरी जिन्दगी बर्बाद हो गई। मैं आज तक इन पर विश्वास करता रहा, पर आज विश्वास टूट गया है। यह है सरागता का सजीव चित्रण कि कितना ही विद्वान् हो यदि परम धर्म का स्पर्श नहीं कर पाया तो वह विचलित हो जाता है। इसका प्रत्यक्ष अनुभव आज के परिवारो से हो सकता है। आज परिवारो मे संघर्ष, अशांति क्यो है ? भाई-भाई में, देवरानी-जेठानी मे बनती क्यो नहीं ? एक व्यक्ति दूसरे भाई की 20 बार बात मानता था किन्तु एक बार किसी प्रसंग पर वह बात नही माने, सम्मान नहीं करें और उसे लगा यह मेरी बात मानता नहीं, मेरा सम्मान करता नही। 20 बार का सम्मान तो भूल गया, एक बार यदि सम्मान नहीं किया तो वह कोई तिरस्कार नहीं, पर वह अपने मन मे कुविचार भर लेता है। गाँठ बाध लेता है। वहीं से पूरी की पूरी प्रक्रिया बदल जाती है। बाते कुछ भी नहीं होती, छोटी-सी बात के पीछे ऐसी स्थिति बन जाती है।

इन्द्र ने निमितज्ञ से पूछा- इन ग्रंथों के माध्यम से आज तक कितने निर्णय किये ? ज्योतिषी ने कहा- बहुत सारे। तब इन्द्र ने समाधान किया- एक सही नहीं बैठा तो सारे ग्रन्थ झूठे बता दिये ? जिनके आधार पर सैंकड़ों निर्णय सही हुए वे झूठे कैसे ? तुमने सोचा था चक्रवर्ती सम्राट होंगे। पर ये तो अकिंचन निकले। किन्तु ऐसा नहीं है। ये विभूति हैं। सामान्य भिक्षुक नहीं है। इनके चरणों में लक्ष्मी लोट-पोट करती है। ये महान् पुरुष हैं। चक्रवर्ती तो एक क्षेत्र के अधिपति होते हैं, पर ये तो तीन लोकों के अधिपति होने वाले हैं। तीन लोकों में जिनका ज्ञान सर्वत्र प्रसृत रहेगा, उतना इन्हें उपलब्ध होगा। इनकी भीतर की शक्ति इतनी प्रखर हो जाएगी कि आत्मप्रदेश का फैलाव हो तो तीनों लोकों में कोई बाधा नहीं आ पायेगी। विश्वास करो तुम्हारा शास्त्र-गणित निमित्त गलत नहीं हैं। इसलिए विश्वास को दृढ़ रखो।

बंधुओं ! ये तो भगवान महावीर के जीवन से संबंधित कुछ दृष्टान्त थे। इनके माध्यम से आप समझें कि परम धर्म क्या है और उसकी प्राप्ति कैसे संभव है। बात बहुत बड़ी है, बहुत महत्त्वपूर्ण भी है किन्तु एक छोटी-सी बात यदि ध्यान में बनी रहे तो मार्ग सुगम हो सकता है। यह छोटी-सी बात है- विश्वास को डिगने न दें, आस्था और श्रद्धा भाव को दृढ़ रखें तथा साधना के मार्ग पर वैसे ही बढ़ते रहें जैसे प्रभु महावीर बढ़ते रहे थे। तब परम धर्म की प्राप्ति का मार्ग हमारे लिये भी खुल सकता है। मैं हमेशा कहता हूँ कि धर्म में श्रद्धा सभी भटकनों और सभी दुर्बलताओं से छुटकारा दिला देने वाली होती है।

अरनाथ के परम धर्म के सबंध मे ये विचार मत करो कि **'किम जाणू भगवंतो रे.........।'**, कैसे जानूँ, कैसे समझूँ ? बस पूर्ण श्रद्धाभाव से, भगवान महावीर ने धर्म की जैसी प्ररूपणा की है उसी को एकमात्र सत्य मानकर, विश्वासपूर्वक उस पर आचरण करते चलो, परम धर्म को प्राप्त करने के तुम अधिकारी बन जाओगे।

5.11.2000

15. चित्त बने राडार

परमात्मा के चरणों मे भावना व्यक्त करते हुए कवि कहा है-

धरम परम अरनाथ नो, किम् जाणूं भगवंतो रे,
स्व-पर समय समझाये, महिमावंत महन्तो।

भगवन् आपकी महिमा अनंत है, उसका कोई पार नहीं है। परम धर्म को समझाने मे आप ही सक्षम है और आप उस परम धर्म के स्वरूप को उजागर भी कर सकते है। मैं उस अकिंचन धर्म को कैसे जानूं।

सन्मति से उत्तर मिला यदि तूं धर्म को और धर्म के परम स्वरूप को जानना चाहता है तो तेरे लिये स्व-समय पर-समय को समझना आवश्यक है, क्योंकि अरनाथ का धर्म इसी कारण परम है। जब तक स्व-समय पर-समय को नही जान लिया जावेगा तब तक उस परम स्वरूप को जानना भी संभव नहीं होगा। उसी की व्याख्या की गई है-

शुद्धात्म अनुभव सदा,
स्व-समय एह विलासो रे।

निश्चयनय से कहे या व्यास्तिकनय से तो जिस समय शुद्ध आत्मिक श्रधान का आत्मा अनुभव करता है और सदाकाल उसे शुद्ध आत्म-स्वरूप मे चलता है, वह स्व-समय है अधिकांश तथा हम ... करते है कि स्व-समय अर्थात् जैन सिद्धांत पर समय अर्थात सिद्धांत। यह तो स्थूल व्याख्या हुई किन्तु गहन व्याख्या के अंतर्गत निश्चयनय के रूप में जो व्याख्या सामने आती है, वह कहती है कि जिस समय जो कार्य घटित हो रहा है उस रूप मे उसका कथन किया जा सकता है। उदाहरणार्थ इन्द्र ऐश्वर्य का जिस समय भोग कर रहा हो उस समय इन्द्र है, जिस समय ऐश्वर्य का भोग नही किन्त दर्जन सहार

की अवस्था से कुछ कर रहा हो तो निश्चयनय कहता है कि उस समय यह इन्द्र नही है। व्यवहारनय कहता है कि युद्ध कर रहा है, तब भी इन्द्र है, भगवान की उपासना कर रहा है, ऐश्वर्य का भोग कर रहा है, तो भी इन्द्र है। किन्तु निश्चय अपनी कुछ महत्ता रखता है। इसे एक ओर उदाहरण से समझें।

एक घड़ा है, उसमें घी भरा जाता है। तो व्यवहार में वर्तमान में अभी घी है या नही है इसका कोई महत्त्व नहीं है। खाली है तो भी कथन किया जाता है कि घी का घड़ा है। निश्चयनय कहता है जिस समय घी भरा है उस समय वह घी का घडा है, परन्तु जिस समय घी नही है वह पानी का घड़ा है। यदि पानी नही है तो पानी का घड़ा नही कह सकते। यह कथन शैली है, तत्व को जानने का मार्ग है। नय को जानने का मार्ग कहा गया है। जितने जानने के मार्ग होते है उतने नय होते हैं। उन नयो का समावेश स्थूल रूप से दो नय मे कर दिया गया है 1. निश्चयनय 2 व्यवहारनय। व्यवहार मे तो कह दिया जैन सिद्धांत स्व-समय, पर सिद्धांत पर-समय है। निश्चय मे कहा शुद्ध आत्म-अनुभव जब घटित हो रहा है वह स्व-समय है। वहाँ पर छाया मात्र नही है। जहाँ पर भी छाया पड़ती है वह पर-समय का सूचक करने वाला है।

एक व्यक्ति अपनी साधना मे बैठा है। वह साधना मे इतना तन्मय हो गया है कि बाहर के सारे विषयो से, बाहर की सारी बातो से कोई सबध नही रहा है, तो निश्चयनय कहता है कि वह स्व-समय है। नही तो साधु जीवन की आराधना भी कर रहा है किन्तु आत्मा का अनुभव नही कर पा रहा है, शुद्ध आत्मभाव मे रमण नही कर पा रहा है तो निश्चयनय कहता है कि उस समय वह स्व-समय नही है। प्रसन्नचन्द्र राजर्षि का उदाहरण आपका जाना-पहचाना है। अतः उन्ही की बात रख रहा हूँ ताकि तुरन्त समझ मे आ जाये।

श्रेणिक ने जब पूछा कि इस समय कालधर्म करके कहाँ जा सकते है, तो उत्तर दिया गया कि सातवी नरक मे। तो क्या उस समय वे साधु नही थे, निश्चय मे नहीं थे। बाहर से देखने वाले साधु उन्हे भले साधु के रूप मे ही देखते हो किन्तु निश्चयनय कहता है कि इस समय

साधु नहीं थे क्योंकि तब पर-समय की छाया पड़ चुकी थी। वे उस समय पर रमण कर रहे थे, स्व में नहीं। जब तक 'स्व' में रमण नहीं हो और शुद्ध आत्म-स्वरूप की उपलब्धियाँ नहीं हो तब तक वह स्व-समय नहीं है। जो स्व-समय है वही धर्म का परम स्वरूप है, बाकी तो क्रियात्मक रूप में धर्म का परम् स्वरूप है। बाकी जो क्रियात्मक रूप में धर्म की आराधना की जाती है, उसमे किसी समय निश्चयनय का घटना होता भी है, परन्तु हर समय निश्चय का सद्भाव उसमें हो ही जाता है।

ऐसा नहीं कर सकते है, गुणस्थान का उतार-चढाव अध्यवसाय के आधार पर होता है। यदि अध्यवसाय में उतार-चढाव है तो भले पौशाक है, पर अध्यवसाय के आधार पर अंतर आएगा। एक व्यक्ति सम्यकदृष्टि है, किन्तु संशय मोहनीय का वेदन करते हुए मिथ्यात्व में चला जाता है, मिथ्यात्व से फिर सम्यक्त्व में, फिर मिथ्यात्व में। जैसे तैराक थोड़ी देर नीचे, फिर ऊपर, फिर नीचे आ जा रहा है। हम उसे डूबा हुआ नहीं कहते। किन्तु तैराक कहते हैं- वह हर समय तैर नहीं रहा है, डुबकी भी लगा रहा है। वैसे ही जिस समय तैर रहा है उस समय सम्यक्दृष्टि है और जब डूब रहा है तब मिथ्यादृष्टि है। हमारे अध्यवसायों में कभी तैरने की स्थिति रहती है, कभी डूबने की। जब भंवर में गहरे उतरें तो मिथ्यात्व या मित्र का स्वरूप आ जाता है। जब तैरकर ऊपर आने का स्वरूप आता है तब सम्यक्दृष्टि का, परन्तु वह सब भीतर घटित होता रहता है। जो जागृत होता है वह अनुभव करता है कि मैं खिसक रहा हूँ, स्व-समय से हट रहा हूँ। जिसे माइग्रेन की तकलीफ हो उसे सिर दर्द होने के पहले या दस मिनट अथवा कुछ सैकिंड पहले अहसास होने लगता है कि मेरे सिर मैं दर्द चालू होने वाला है। ऐसे व्यक्ति को डॉक्टर इलाज क्या देते हैं ? कहते है कि जिस समय लगे कि दर्द होने वाला है दवाई ले लो तो वह शांत हो जाएगा, उसका प्रभाव नहीं होगा। जैसे डॉक्टर उससे कहते है कि जैसे ही आभास हो आप दवाई ले लीजिये, वैसे ही हमें जागरुक रहना है। जैसे ही लगे कि अब आत्मा कषाय मे जाने की तैयारी कर रही है, मस्तिष्क

में तनाव प्रारंभ होने वाला है, वैसे ही उपयुक्त उपाय कर लीजिये। उपाय क्या इसे भी समझिये।

किसी ने कुछ कह दिया या तिरस्कार कर दिया कि तनाव उभर आता है। यदि उस समय एक क्षण के लिये जाना जाये, दृष्टि को आनंद केन्द्र पर स्थित कर ले और यदि आनंद केन्द्र का ज्ञान न हो तो शरीर को शिथिल कर ले तो फिर कोई तनाव नहीं रहेगा और हम देखेगे कि जो तूफान आने वाला था वह साइड से निकल गया है। तब हम उससे किसी भी प्रकार से प्रभावित नहीं होगे। हम अपने अंदर तूफान को मोड़ना चाहें तो सावधानी रखनी आवश्यक है। सावधानी न रहे तो दुर्घटना घटित होगी ही। आपने रेल्वे स्टेशन पर लिखा भी देखा होगा– **'सावधानी हटी, दुर्घटना घटी।'** इस नारे को जीवन के साथ जोड़ लीजिये। हमारी सावधानी हटने पर ही हम दुर्घटनाग्रस्त होते है। सावधानी बरकरार रहे तो जीवन में दुर्घटनाएँ घटित नहीं हो सकतीं। आने वाले तूफान के पूर्व यदि हम इतनी तैयारी कर लेंगे तो फिर हमारे ऊपर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

आकाश में हवाई जहाज उड़ता है, पर उसका चित्रण राडार पर आता रहता है। हमारी चित्रकृति राडार है। मन, वचन, काया की जो प्रवृत्ति होती है उसका चित्रण चेतना में पहले से ही अंकित होता रहता है। एकदम सजगता रहे तो एक्सीडेन्ट से बच सकते हैं। जैसे यदि पायलट सजग है तो वायुयान को दुर्घटना से बचा सकता है। किन्तु हम है कि जानकर श्री अंजान बने हुए है।

इस संदर्भ में एक बात और समझ लीजिये कि आत्मा पुरुष प्रतीक है। भगवान महावीर ने उसे पुरुष की संज्ञा दी है।

पुरिसा ! तुममेव तुमं मित्र........।

हे पुरुष ! तू ही तेरा मित्र है। बाहर के मित्र की आकाक्षा मत कर। पुरुष का अर्थ हम क्या लेंगे। जिसके हाथ, कान, नाक, मुँह आदि हो। पुरुष कौन ? मूछो पर ताव दे वह नहीं, जो पुरुषार्थशील है वह है पुरुष। यदि उसमें कायरता कूट-कूट कर भरी हो, लोगों के बीच गिर

भी नहीं उठा सकता हो तो, उसे पुरुष कौन कहेगा ? यह स्वरूप तो अबला का, नारी का बतलाया गया है। भगवान महावीर ने आत्मा को पुरुष कहा है। वैदिक संस्कृति में जहॉ भक्ति को प्रधान माना गया है वहॉ आत्मा को पुरुष न बताकर नारी कह दिया गया है। कृष्ण के साथ गोपियॉ मिलेगी आपको, किन्तु भगवान महावीर पुरुषार्थ की बात कहते हैं।

वे तो कहते हैं अपने भीतर के पुरुषार्थ को जागृत करोगे तभी तुम संसार सागर में तैर पाओगे। तैरने का मार्ग कोई भी बता सकता है, सहयोगी कोई भी बता सकता है किन्तु सहयोगी पहुँचा नहीं सकता। वह तो जहॉ तक तुम नही जानते वहाँ तक मार्ग दिखाकर, दिशाबोध करवा सकता है किन्तु कदम तो तुम्हें ही बढ़ाने होगे। तुम्हारा पैर ही तुम्हें मंजिल पर पहुँचायेगा। जब हमारा पुरुषार्थ का स्वरूप है तो हम कहाँ उलझना चाह रहे है। यदि हम कायरता को स्वीकार करते चलते है पुरुषार्थी स्वरूप को नही जान पायेंगे, क्योंकि हमारी आत्मा तो पर समझ में पड़ी हुई होगी। कोई दो कठोर शब्द कहेगा तो हमारे मन में तूफान आ जायेगा और हमारी स्थिति को शिथिल कर देगा। एक बार का तूफान कितनी तबाही कर देता है इससे आप परिचित होंगे। आप अंतरंग तूफान को भले न जानें, पर बाहर के तूफान को देखकर तो अनुभव कर ही सकते है। सुना होगा कि उड़ीसा में जो तूफान आया था उस तूफान ने मनुष्य व पशुओं की अत्यंत विकट स्थिति बना दी थी। एक-एक दाने के लिये इसान मोहताज हो गया था। कितने व्यक्ति मकान छोड़कर भागे थे। सारे क्षेत्र के हिसाब से देखा हो तो एक तूफान ने ही भयंकर तबाही कर दी थी। तब हमारे भीतर आने वाले तूफानो से कैसी तबाही आएगी, क्या कभी सोचा है। हम सोच नहीं पाते हैं बल्कि उसे और आगे बढ़ाने की कोशिश करते है। अंतर का एक ही तूफान इतनी तबाही कर देगा कि शुद्ध आत्मिक स्वरूप का दिग्दर्शन भी कठिन हो जाएगा। वैसी अवस्था में परम धर्म को हम समझ नहीं पाएंगे, फिर वही शिकायत रह जाएगी।

किम जाणू भगवन्तों रे.........।

हे भगवन् ! कैसे जानूं ? इस परम स्वरूप को जानने का साधन तो मन है और जब मन ही तूफान में तबाह हो चुका हो तब पहले तो जो तबाही हो चुकी हो उसी का तनाव रहेगा। तो उस परम स्वरूप को कैसे समझ पाएगें। इसीलिए आचारागसूत्र मे कहा है- **"अहो लोए परिजुण्णे"**।

आर्त्तभाव से वह जर्जरित हो जाता है। जैसे अंधड़ और बाढ़ की प्रलयंकारी अवस्था, चाहे वह बाहरी तूफान हो। जैसे अंधड़ और बाढ या अंतर तूफान जैसे क्रोध, मान, माया, अहंकार, लोभ के लिये ये सारे विनाशकारी होते है। आंतरिक तूफान कभी तो केवल आंधी के रूप मे हवा की तरह चलता है और कभी महाभयानक रूप ले लेता है। उस समय व्यक्ति आपे से बाहर हो जाता है, उसे ध्यान ही नहीं रहता हैं मै कौन हूँ। उस समय परिवार के सदस्य हो या मित्र हो, एक को भी वह नही छोड़ता। व्यक्ति ऐसा क्यों बनता है, कैसे बन जाता है। हर क्षेत्र मे तूफान नही आते, तूफान परिचित क्षेत्र मे आते हैं। जैसे तूफान समुद्र के नजदीकी में आते है वैसे ही हमारे तूफानो का जहॉ कषायो की आर्द्रता है, वही प्रभाव होता है। समुद्र के किनारे आर्द्रता होती है, गीलापन होता है, वहाँ तूफान ज्यादा आते है। वैसे ही हमारे भीतर कषायो का पानी है, नमी है तो तूफान भी आएंगे। पर यदि पहले से बचाव के लिऐ सजग रहे जैसे आज सरकार की घोषणा सजग कर देती है कि इतने-इतने समय मे तूफान की सभावना है और लोग यदि चेतावनी सुनकर सभल जायें, संपत्ति लेकर स्थान छोड़ दे तो बच सकते हैं। वैसे ही हमें चेतावनी मिलती है, पर ये बात अलग है कि हम संभल नही पाते है। हमे लगता है कि अदर से सकेत मिल रहे हैं, पर हम सोचते है कि करूंगा तो कायरता होगी। मुझे तो अहंकार के पोषण के लिये चाहे मर मिटना पडे तो मर मिटना है। जब ऐसा ही अहंकार पागलपन हमारे भीतर उत्पन्न हो जाता है कि हम हारे हुए जुआरी की तरह दाँव खेलने के लिए उत्साही हो जाते है और अतर की उस चेतावनी को दबोच लेते हैं। अतर मन तो बात-बात पर चेतावनी देता हे। हम सब सुनने के लिए सजग नही होते है तो कब तक देता रहेगा ? जब हम इसे अनसुना कर देते

हैं तब तूफान से बचाव भी कर नहीं पाते हैं। कवि कहता है- भगवान! मैं उस स्व-समय पर-समय को समझना चाहता हूँ। जहाँ शुद्ध आत्मा के स्वरूप की स्थिति है, वहाँ विलास/केलि/आनंद है किन्तु जहाँ कषाय, राग, द्वेष, विषय वासना की स्थिति है वह अवस्था पर-समय की है। वह व्यक्ति को पुनः पुनः निवास की ओर ले जाता है और आवास की व्यवस्था करता है। पर जिसे शुद्ध आत्मा की अवस्था प्राप्त हो जाती है वह आवास की व्यवस्था नहीं करता है। नमिराजर्षि साधु बनने को तैयार हुए। इन्द्र ने परीक्षा लेने के लिए कहा- "अभी कहाँ जा रहे हो, बहुत सारे मकान, स्थायी निधि आदि बनाईये।" उन्होंने कहा- "जिसे संशय होता है, जिसकी पर-समय में गति है, वही मकान की सोचेगा, उसे ही आवास-निवास की आवश्यकता होगी। किन्तु शुद्ध आत्मा में रमण करने वाले को अस्थायी निवासों की आवश्यकता नहीं है। वह अपने शाश्वत स्थान को जानता है।"

भगवान महावीर विहार करते हुए पहुँचते थे तो कौन-सा मकान निवास के लिये अनुकूल है इस पर कभी विचार करते थे ? क्या कभी विचार किया कि वहाँ मच्छर काटेंगे, रह नहीं सकता। उन्होंने कभी कोई अपेक्षा ही नहीं की। चलते-चलते जहाँ आवास मिला, रुक गये। मच्छर काटे तो काटे, बिच्छू काटने आए तो आए। किसे काटेंगे ? आत्मा को साँप, बिच्छू काट नहीं सकते। कहते हैं यदि तुम्हारे भीतर भय है तो भय से जहर पनपेगा, उसे उत्तेजना मिलेगी। सर्प काटने का मतलब है किसी से कठोर डंक मारने जैसी बात कह देना। कभी-कभी कोई शब्द कलेजे में ऐसा गहरा चुभ जाता है कि संलिप्त ही रहता है। यदि हम डक से अपने को प्रभावित करें तो प्रभाव पड़ता है। यदि उसे ग्रहण न करें तो प्रभाव कैसे पड़ेगा। सामने वाले के पास जो सामग्री है वही तो वह दिखलाएगा। कोई न खरीदे तो वह किसके पास रहेगी ? विचार कीजिये कि एक सेठ जिसे अपनी संपत्ति नीलाम करनी है, वह उसकी मुनादी लगा दे और कहे कि नीलामी की बोली लगाये, कोई लगाये ही नहीं, तब सेठ कहे मुफ्त में ले जाओ, मुझे तो सफाई करनी है, फिर भी कोई न ले जाये तो वह माल किसका रहेगा ? वैसे ही कोई हमें कितना ही

परोसे, हम स्वीकार ही न करें तो माल उसी का तो रहेगा। हमारा कुछ आया नही, कुछ गया नहीं। कहना-सुनना तो सरल होता है, परन्तु जब अनुसरण करने की बात आती है तब व्यक्ति का सावधान रहना बड़ा कठिन होता है। इसलिए भगवान ने कहा है-

सुन्ता अमुणी, मुणिणो सया जागंरति।

अमुनि सोया रहता है, मुनि तो सदा जागता है। वे कौन से नय से कथन है ? शास्त्र मे तो ऐसा बताया नही है किन्तु हमें यह अनुप्रेक्षा से जोड़ना पड़ेगा कि यह निश्चयनय का कथन है जो जागृत रहता है। वह मुनि है, परन्तु क्या मुनि सोते नहीं है। द्रव्य विज्ञ से सोते है, कभी भावनिद्रा भी आ सकती है। भाव निद्रा आ गई तो वह व्यवहार से मुनि है, पर निश्चय से नहीं। भगवान महावीर ने भव्य आत्माओ के कल्याण के लिये देशना दी है, नहीं तो उन्हें क्या आवश्यकता थी। क्या उस देशना से उन्होंने अपना कल्याण किया। हम मानते है कि उन्होंने तीर्थंकर नामगौत्र का बंध किया है, पर शास्त्र की मूल प्रवृत्ति का सबंध जन-जन के कल्याण की भावना से है-

सव्वजग जीव रक्खण दयट्टयाए भगवया
पावपणं सुकहियं।

ऐसे करुणाशील पुरुष स्व-समय पर-समय का बोध कराते है। अब यह हमारे ऊपर निर्भर है कि हम उस पर चिंतन कर कितने शुद्ध आत्म-स्वरूप मे रमण करते है और कितने परभाव मे जाते हैं। इस परभाव और आत्म-स्वरूप को भगवान महावीर के उदाहरण से समझिये।

भगवान महावीर विचरण करते हुए दूसरा चातुर्मास राजगृह के नालन्दा पहाड़ो मे एक तन्तुवाय की शाला मे सम्पन्न किया। एक महीने की तपस्या स्वीकार कर प्रथम मासखमण का पारणा नालन्दा के ही विजय सेठ के यहाँ पर किया। देवों ने दान की महिमा को वताने के लिए पाँच प्रकार की वृष्टि की और अहोदाण-अहोदाणं का उद्घोष किया। पूरे राजगृह नगर में विजय सेठ की महिमा का यशोगान होने लगा। धन्य हो, धन्य हो विजयसेठ, जो ऐसे तपस्वी को दान देकर कृतार्थ

हो गये। दान लेने वाले तो कृतार्थ होते ही है देने वालों की महिमा भी अपरम्पार रही है। ऐसे महिमावन्त महन्त को देने वाला भी दान देकर तिर जाता है।

सुपात्रदान सभी दानों में श्रेष्ठ कहा गया है। आप कहेंगे सुपात्रदान ? शास्त्र में तो अभयदान को श्रेष्ठ कहा गया है-

दाणाणं सेट्ठं अभयप्पदाणं

हम विवक्षा से बात करेंगे। अभयदान की यहाँ विवक्षा नहीं की है। वैसे वह भी श्रेष्ठ है किन्तु सुपात्रदान को भी महत्त्वपूर्ण माना गया है। इस संबंध में मान्यता यह है कि लेने वाला और देने वाला दोनों सुपात्र थे। लेने वाला सुपात्र है, पर देने वाला सुपात्र नहीं है तो भी काम बनता नहीं है। लेने वाला सुपात्र न हो तो उतनी महिमा नहीं हैं। देने वाला, लेने वाला दोनों तो सुपात्र हो हीं, द्रव्य भी शुद्ध हो। ये तीनों शुद्ध होते हैं तो ऊपर से धन बरसता है किन्तु वेश्या व बहुरूपिया साधु की बात हो तो पत्थर बरसेंगे।

नगर में यशोगान होने लगा। गौशालक भी वहीं चातुर्मास संपन्न कर रहा था। उसका कोई सिद्धांत निश्चित नहीं था। साधना के मार्ग को वह नहीं जान रहा था। कोई बुला ले उसी से भिक्षा लेकर ग्रहण कर लेता था। इस प्रकार दान-दक्षिणा लेकर वह जीवन बसर कर रहा था। जब भगवान महावीर के तप के दिवस में उसने सुना तो बड़ा प्रभावित हुआ। इतने बड़े तपस्वी है कि कोई दान दे तो पाँच दिवस दृष्टि और अहोदाणं का उद्घोष होता है। जरूर उनमें कोई चमत्कार है। बस, लग गया पीछे कि देखूं क्यों तपस्या करते है ! एक दिन पारणा फिर मासखमण। अरे बाप रे ! यह तो मुझसे नही होगा। दूसरा पारणा आनंद के यहाँ और तीसरा सुनंद के यहाँ हुआ। अब गौशालक ने दृढ़ धारणा बना ली जब-जब पारणा होता है तब-तब चमत्कार होता है। उसने भगवान से निवेदन किया कि आप जरूर विशिष्ट ज्ञानी है। यही कारण है कि देव उद्घोष करते है। मैं आपके ज्ञान को जानना चाहता हूँ कि आज मुझे भिक्षा में क्या मिलेगा। भगवान तो मौन थे, उन्हें तो बोलना

नहीं था किन्तु इन्द्र के आदेश से सेवा में जो सिद्धार्थ देव चल रहा है था, उसने कहा बासी भात, खट्टी छाछ और दक्षिणा में एक खोटा रुपया मिलेगा।" गौशालक ने कहा- ये भविष्यवाणी झूठी है। यह सच है या झूठी यह तो परीक्षण से ज्ञात होगा। परीक्षण करना है तो समीक्षण से अज्ञात रहिये। किन्तु जब विषमता होती है तो बुद्धि कुछ भी ग्रहण करने को तैयार नहीं होती। एक तरफ ग्रहण करें तो दूसरी तरफ प्रतिकार करें कि ये बात कैसे कही और उसके प्रतिकार का प्रयास करें। तो ये कैसे हो सकता है। यदि उस वाचा को गलत सिद्ध करने का प्रयत्न है तो समझ लो वहाँ श्रद्धा नहीं है। ये श्रोता की अवस्था नहीं है। श्रोता-श्रावक कौन होता है ? श्रावक-श्रद्धा से सुनता है, वितण्डा के लिये नहीं सुनता है। सुनने का सार अंतर भावों में रमण करता होता है। अतः सुनकर जीवन को जानें, सुन्दर कल्याण मार्ग पर कदम बढ़ायें, बखेड़ा खड़ा नहीं करें।

गौशालक वैसे ही उत्कृण्ड था, फिर मति में ये बात आ गई कि परीक्षण करना है। सोचा आज बड़ी-बड़ी हवेलियों में जाऊंगा, फिर तो वाणी झूठी हो जाएगी। किन्तु संयोग देखिये जहाँ भी गया वहाँ से वापस लौटना पड़ा। कहीं से भिक्षा प्राप्त नहीं हुई। इतना दिन चढ़ गया। भूख से तिल-मिला रहा था, चक्कर आने लगे, गिर पडा, चोट लग गई। जा रहा था तो एक व्यक्ति ने कहा आ जाओ, कोठों का बासी भात मिला और साथ में खट्टी छाछ। प्रणाम करके उसने खोटा रुपया भी दे दिया। गौशालक ने देखा, मैंने कितना ही प्रयत्न किया, आखिर जो होना था वहीं हुआ। वहीं से दिमाग में बैठ गया नियतिवाद। होनहारवाद कितना भी पुरुपार्थ करें, कोई मतलव नहीं है। किन्तु भगवान का दर्शन यह नहीं है। भगवान कहते है- जब तक मेरे भीतर उत्थान-कर्म, वल, वीर्य, पुरुपाकार, पराक्रम है तव तक मुझे क्रियाशील रहना है। वे हाथ पर हाथ रखकर बैठने की बात नही कहते। जो होना होगा हो जायेगा। यदि ऐसा ही होता तो साधु बनते ही किसलिए ? घर में ही केवलज्ञान हो जाता। कार्य की सिद्धि के लिये जब सारे समवाय मिले तो तब ही सिद्धि होती है। पर उसने तो दिमाग में यही बिठा लिया कि जो होना है वही होगा।

मैने कितना ही पुरुषार्थ किया, पर जो चाहा वह नहीं मिला। तब निश्चित है कि जो मिलना है, वही मिलेगा। इसलिए वह नियतिवाद का कथन करने लगा।

कार्तिक पूर्णिमा के पश्चात् भगवान का विहार हो गया। गौशालक भगवान को ढूँढने लगा। तन्तुवाद की शाला में भगवान मिले नही। है ही नहीं, कहाँ चले गये ? पूछताछ की, पर पता नहीं चला। उसके पास जो भी कमण्डल, कम्बल थे, दान में दे दिये और खोज में निकल पड़ा। चलते हुए कोल्लाक सन्निवेश पहुँच गया। वहाँ भगवान के चौथे मासखमण का पारणा बहुल के यहाँ हुआ था। वहॉ दान की चर्चा सुनी तो उसने निश्चय किया कि ऐसी महिमा निर्ग्रन्थ ज्ञातपुत्र के अलावा किसी की नही हो सकती। खोज करने पर भगवान मिल गये। निवेदन किया– "भगवन् ! मैं आपका शिष्य, चरण किंकर बनकर रहना चाहता हूँ।" शास्त्र कहता है कि भगवान ने उसकी वाणी को सुन लिया। सुनने का मतलब लिया जाता है कि उसे शिष्य रूप में स्वीकार कर लिया। ज्ञान मे देख लिया कि यही भवितव्यता है, यही योग है, टाला नहीं जा सकता अन्यथा छद्मस्थ अवस्था मे वे शिष्य बनाते ही नहीं। यदि बनाते तो दीक्षा पचखा दी होती। भगवान ने उस रूप में शिष्य नही बनाया किन्तु वह स्वयं को शिष्य निरूपित करके चलने लगा। एक तरफ भगवान थे जो शुद्ध आत्म–स्वरूप मे रमण कर रहे थे। यह था स्व–समय का विलास। दूसरी तरफ गौशालक था, जो भगवान का शिष्य भी बना था किन्तु पर–समय में भटक रहा था। पर–समय मे कैसे ? उसने भगवान के दान की महिमा देखी थी, समझा था कि ये बडे चमत्कारी तपस्वी हैं इसलिए इनकी शरण स्वीकार करनी चाहिये। इनकी शरण स्वीकार करके चलूँगा तो पारणे में मुझे भी अच्छे–अच्छे पदार्थ मिलेगे। मेरी नैय्या चलती रहेगी। इस प्रकार शुद्ध आत्म–स्वभाव मे रमण की उसकी अवस्था नहीं बनी थी। सिर्फ औपचारिक या शरीर पोषण की भावना थी कि इनके सहयोग से आसानी से जीवन बसर हो जायेगा। ये आत्म–स्वरूप नही है इसीलिए कहा है कि हमें सावधान रहना है। धर्म क्रिया करें किन्तु स्व–समय को छोड़कर नही। यदि शुद्ध आत्म–स्वरूप

ही अनुभव करते है तो वह क्रिया ...

निज स्वरूप से किरिया साधे-
तेह अध्यात्म कहिये रे.........

निज स्वरूप को साधने की क्रिया से अभिप्राय है वह क्रिया जिसका निष्कर्ष निज स्वरूप को साधने मे होता है। वह क्रिया है अध्यात्म की। क्रिया कितनी भी करे यदि निज स्वरूप को साध नही पा रहे हैं तो वह आध्यात्मिक नहीं है। वह क्रिया धार्मिक कहला सकती है, पर आध्यात्म का पुट उसमे नही रहेगा।

मैंने प्रसन्नचन्द्र राजर्षि का उदाहरण दिया था। धार्मिक और आध्यात्मिक क्रिया के अंतर को उनके उदाहरण से समझे। स्व-समय और पर-समय की विवचेना इसी से जुड़ी है। हम अधिकतर आत्म-स्वरुप के अनुभव की गइराई तक उतर ही नही पाते है। हाँ, धार्मिक क्रियाएँ करते अवश्य दिखाई देते हैं। तब आध्यात्मिकता कहाँ से आयेगी ? धार्मिक होना और धार्मिक दिखना दो अलग-अलग बातें हैं, दोनो अलग-अलग स्थितियाँ है, पर इन्हे समझ कौन पाता है। देखने वाला तो केवल अनुमान करता है और फल का भोक्ता भी वह नही होता। धर्म की क्रिया का फल तो धर्म करने वाले को मिलता है। उसी को पता भी होता है कि वह किस स्थिति में है। यदि वह सावधानी रखे, अपनी चित्तवृत्ति के राडार से मार्गदर्शन लेता रहे तो मन-वचन-काया की प्रवृत्तियो का सही स्वरूप उसके सामने उजागर होता रह सकता है। उसके वाद भी क्रिया, उसके स्वरूप, दिशा एवं गति पर नियंत्रण और उनका निर्धारण तो उसे ही करना होता है। राडार जो दिखा देता है उसके अनुसार प्रतिरोध तो सैनिक को ही करना होता है। तव समझ ले कि हम सैनिक हैं और हम सैनिक हे भी क्योंकि हम गाते है- "महावीर के हम सिपाही वनेगे।"

वहुत अच्छी वात है सिपाही वनो, पर महावीर के प्रति सिपाही वाली, सैनिक वाली, समर्पण वाली, निष्ठा वाली आर कादारी वाली दृष्टि भी तो रखो। सैनिक का कर्त्तव्य तो आदेश की पालना करना होता है, हर परिस्थिति मे आज्ञा का निष्ठापूर्वक पालन करना होता है, उसका

सबकुछ जीवन, ज्ञान, शक्ति, सामर्थ्य सभी कुछ आदेश को निष्ठापूर्वक पालना के लिये होता है। हम सभी वैसी है निष्ठा, स्वामी भक्ति, समर्पणा और कर्मठता का प्रदर्शन करें तभी महावीर के सिपाही के रूप में हमारा जीवन सफल व सार्थक होगा। मैं आपके स्व-समय और पर-समय के स्वरूप को जानकर तदनुरुप सक्रिय बनने की अपेक्षा करता हूँ। आपकी आत्मा का राडार आपको लगातार आपकी स्थिति की जानकारी देता रहता है। उस पर विश्वास करें, सावधान रहें और अपनी चित्तवृत्तियों पर नियंत्रण रखें। कर्त्तव्य पथ तो भगवान महावीर ने आपको दिखा ही रखा है। बस स्व-समय और पर-समय का ध्यान रखकर उस पर बढ़े चले। एक-एक क्षण अनुभव करें कि कितना आत्म-स्वरूप में और कितना पर-समय में रमण हो रहा है; भीतर उठने वाले तूफान की सूचना मिलती है या नहीं और संवेदना का अनुभव करना प्रारंभ कर दिया है या नहीं। एक सप्ताह यह प्रयोग करके देखिये कि संवदेनात्मक स्तर पर यह अनुभव हो रहा है कि नहीं कि अगले हफ्ते क्या घटित होने वाला है। आपको आने वाली स्थिति का आभास होने लगेगा। आपका अंतर आप से कह देगा। उसे यदि आप समझें, समझने के प्रति सतर्क रहें और उसके अनुसार अपने आचरण को ढालें तो निश्चय ही आप आत्म-स्वरूप की उपलब्धि की दिशा में बढ़ रहे होंगे। परम धर्म की प्राप्ति का भी यही मार्ग होगा। प्रयास करके देखिये।

6.11.2000

❖ ❖ ❖

16. धर्म बिना सब सून

धरम परम अरनाथ नो....

धर्म की व्याख्या करते हुए कहा गया है-

धारयति इति धर्मः।

जो धारण कहे वह धर्म है। प्रश्न होता है कि क्या यह व्याख्या या परिभाषा पूर्ण है ? किसे धारण करें ? कैसे धारण करें ? तो इस संबंध में कहा गया है-

दुर्गतौ पततां जनानाम्

दुर्गति में गिरते प्राणियो को जो आधारभूत होता है, जो नीचे गिरते को रोक देता है, वह धर्म है।

कभी-कभी व्यक्ति मान लेता है कि पुण्य का कोई कार्य कर दिया, भूखे को भोजन दे दिया, कही स्कूल, धर्मशाला का प्रसंग उपस्थित कर दिया तो मैंने धर्म कार्य कर लिया। पर ऐसा नहीं है। ऐसे सब कार्य पुण्य के कार्य नहीं होते है, पर जब व्यक्ति समझ नहीं पाता तो धर्म व पुण्य को एक कर देता है। पुण्य वह है जो आत्मा को पवित्र करता है। चादर मैली हो गई सावुन, सोडा, सर्फ का प्रयोग कर मैल दूर करने का प्रसंग उपस्थित किया तो मैल दूर हुआ। जैसा वह कार्य है वैसा ही कार्य है पुण्य का कार्य। इसी प्रकार पुण्य आत्मा को पवित्र और पाप आत्मा को मलीन करता है। पुण्य अलग है, पाप अलग हैं और धर्म अलग हैं। ऐसी गलती कभी-कभी हो जाती है कि लोग पुण्य व धर्म को एक ही खाते में खतियार करने लग जाते हैं। धर्म अंतर्मुखी होता है। बाहर से धुलाई होना पुण्य हो सकता है, पर अन्तर की अनुभूति धर्म के बिना नहीं होती। बिना धर्म के वह दुर्गति से बचाव नहीं कर सकता।

कभी हम सोच लें तिर्यंच और नरक की ही दुर्गति होती हैं, किन्तु ऐसी बात नहीं है। देव भी दुर्गति में आता है। मनुष्य की गति को भी दुर्गति कहा है। कहेगे मनुष्य की गति को दुर्गति ? देव की दुर्गति कैसे ? देव तो परमाधामी भी हैं, अनुत्तर विमानवासी भी। किल्विषी व परमाधामी देव होते हुए भी देव दुर्गति का उपयोग करने वाले हैं। वैसे ही मनुष्य जन्म प्राप्त होने के बाद भी व्यक्ति अनार्य कर्म मे चल रहा है। हिंसा, चोरी, व्यभिचार आदि-आदि कार्यों मे लगा रहता है। जिन हाथों मे चाकू-छुरियाँ बनी रहती हैं और जो निरन्तर हाथों को खून से रंगता रहे, तो उसे भी सद्गति नहीं कहा है। वह भी दुर्गति का उपभोग कर रहा है। इसलिए मनुष्य गति में रहते हुए ये जरूर चिन्तन करने की आवश्यकता है कि हम मनुष्य की सद्गति का उपभोग कर रहे हैं या हमें मनुष्य की दुर्गति प्राप्त हो रही है।

भगवान ने चार अंग दुर्लभ बताये है। कभी-कभी भाई प्रश्न करने लगते है कि मुनष्य जन्म को तो दुर्लभ कहा है, पर आज तो जनसंख्या बढ़ रही है। सरकार परेशान हो रही है। सरकार ही नहीं अंतराष्ट्रीय जगत् में बढती आबादी पर चिन्ता व्यक्त की जा रही हैं। आने वाले समय की हालते विचित्र नजर आ रही हैं। अभी बहुत से गॉवों मे पीने के पानी की किल्लत के कारण वहॉ बच्चों को आधी छुट्टी के बाद रवाना कर दिया जाता है क्योंकि स्कूलों में जो पानी उपलब्ध होता है वह आधी छुट्टी तक ही कठिनाई से चलता है। और पढ़े तो पानी उपलब्ध नही। इसलिए आधी छुट्टी में पूरी छुट्टी करने की स्थिति बन रही है। ये स्थितियॉ वर्षाकाल मे बन जायें तो आने वाली ग्रीष्म ऋतु का दृश्य व्यक्ति के सामने उभर आता है। इसके लिए पूरा विश्व चिन्तित बना हुआ है। गहरे खोद-खोद कर गहराई से पानी निकाल लिया। पानी का दुरुपयोग करते हुए मन में विचार नही आता कि हम प्रकृति प्रदत्त पदार्थों का कितना दुरुपयोग कर रहे हैं। क्या ये धर्म के खाते में जाएगा ? आप अपने विलास के लिए जिन पदार्थो को बरबाद कर रहे है वे पदार्थ समाप्त हो रहे हैं। उतने पदार्थों से कितनो का गुजारा हो सकता है। आज एक घर मे जितना पानी बहाया जाता है उससे कितने

प्यासों की प्यास बुझाई जा सकती है ? पर दूसरों की आवश्यकता का लक्ष्य नहीं रहता। लक्ष्य रहता है, मेरी शान-शौकत के लिए सब उपलब्ध होना चाहिये। हमारे पास सम्पत्ति है। हम पुण्य करके आये है, उपभोग होना चाहिये। किन्तु सारे पुण्य का उपभोग हो गया, केवल पाप ही रह गया तो ? आपने सुना ही है कि वह कौशिक-चंडकौशिक का रूप बनकर रह गया। वैसे ही पुण्य समाप्त हुआ, आसक्ति बनी रह गई तो सर्प आदि के रूप में जन्म लेना पड़ सकता है। तब क्या काम आयेगा पुण्य ?

जनसंख्या वृद्धि की समस्या से मै बता रहा था कि विश्व चिन्तित है। बढ़ती आबादी को कैसे रोका जाये ? यदि मनुष्य गति दुर्लभ है, पुण्य से प्राप्त होती है, तो उसे सभी चाहेंगे, उसे रोके क्यों ? रोकने का कारण है मनुष्य सद्गति का उपभोग करने वाले कम होते हैं। इस गति के माध्यम से दुर्भाग्य का रोना रोने वालों का आधिक्य होता है इसलिए वह दुर्लभ अंग नहीं है। दुर्लभ अंग के साक्ष दस बातों की जोगवाई प्राप्त होती है, इसलिए दुर्लभ माना है। आर्य क्षेत्र न मिला, उत्तम कुल के बजाय ऐसे कुल में जन्म लिया, जहाँ धर्म कर्म की बातें नहीं, तो वह कैसे जीवन को सही बना पाएगा ? भगवान महावीर ने उत्तम कुल, आर्य क्षेत्र में जन्म लिया और जन्म लेकर आर्य कर्म को अपनाने का प्रयत्न किया। आर्य कुल में जन्म लेने वाले भी कार्य से कभी अनार्य हो सकते हैं। आर्य क्या है ? 'आरात् हेय धर्मेभ्योः' जो हेय-त्याज्य कर्म हैं, ऐसे कार्यों का त्याग कर जो सही कर्म करता है, उसे आर्य कहा गया है और जो पापाचार करता है, जो कर्म मानव जाति के लिए कलंक स्वरूप है वे कर्म करता है, उसे अनार्य कहा गया है। वहुत से व्यक्ति मनुष्य जन्म प्राप्त करके भी अनार्य कर्म में उपस्थित हो जाते हैं। उस अनार्य कर्म के कारण जो पुण्य का संयोग वह लाया था उसे खोता चला जाएगा और पाप का भाटा बाधता चला जावेगा।

भगवान महावीर ने पूरे विश्व की हलचल को जाना, देखा कि वह किस प्रकार सतप्त है। उस संताप को दूर किया जा सकता है। उसके लिए प्रवचन-सदेश भी दिये, पर प्रवचन देने के पहले उन्होंने

जीवन को भली प्रकार समझने का प्रयत्न किया। कितने-कितने उपसर्ग-परिषह-संकट उन्होंने सहन किये ? उन्होंने ये दिखा दिया कि वक्ता बनना कठिन काम नहीं है उपदेश देना इतना कठिन नहीं है, पर वह उपदेश अनुभूतिपरक हो। अनुभूतिपरक बात व्यक्ति के गले जल्दी उतर जाती है। यही कारण है कि तीर्थकर जब समवशरण में धर्मदेशना देते है तो अनेक के भाव त्याग के लिए उत्कंठित होते है। कोई साधु जीवन स्वीकार करता है, कोई श्रावक जीवन और कोई यदि गृहस्थ धर्म में रहते हुए 12 व्रत स्वीकार नहीं भी कर सके तो भी विभिन्न त्याग-प्रत्याख्यान स्वीकार कर अपने ग्रर्हस्थ्य जीवन की गाड़ी को कम से कम अनार्य कर्म से चलाने का प्रयत्न नहीं करता है। वह अपने जीवन को धर्म के सन्मुख करने का प्रयत्न करता हुआ जीवन को साधने का लक्ष्य बनाता है।

बधुओं ! साधना का मार्ग बड़ा सरल है, पर जितना सरल है उससे बढ़कर जटिल भी है। सरल कैसे और जटिल कैसे ? जिसने खोज करना सीख लिया उसके लिए तो बड़ा सरल है। सर्कसकार आपने भी देखे होंगे। एक रस्सी लगाकर कलाकार दौड़ लगा लेते हैं और इलायचीकुमार को भी सुना होगा। बाँस खड़ा कर उस पर कील और कील पर नाच। यह कठिन काम है या नही है ? किन्तु जो साध लेता है, उसे कठिन कुछ लगता ही नहीं है। वह आराम से करता है। देखने वाले आश्चर्यचकित हो जाते हैं। कई दाँतों तले अंगुली दबा लेते हैं। कभी लगता है वह गिर न जाये, किन्तु वह अपने आप में सधा रहता है। देखिये, चाह के लिए व्यक्ति कैसे-कैसे कष्ट सह लेता है, किन्तु कष्ट सहता हुआ भी व्यक्ति रुकता नहीं, आगे बढ़ता है। क्योंकि वहाँ उसकी अभिलाषा जो जुड़ी हुई है वैसा ही साधना का मार्ग है। गहराई में उतरेगा, वह गुत्थियों को सुलझा पाएगा, कहीं थकावट नहीं, कोई कष्ट नहीं। कोई सोचे ये तो कठिन है तो बहुत-सी कठिनाई आएंगी। थोड़ा-सा संकट आ भी जाये, किन्तु हमारी सावधानी रहे तो वह संकट लंबे समय का नही होता। चलते रहो, रुको मत, रुक गये तो आने वाला संकट हावी हो जाएगा और चलते रहे, रुके नही तो कहते हैं पुरुषार्थी

को, उद्यमी को मार्ग अपने आप मिल जाता है।

उद्योगिनः सिंह भुषैति लक्ष्मी।

उद्यमी लक्ष्य को प्राप्त कर लेते हैं, अनुद्यमी के पास मे लक्ष्मी भी बिखरी रहे तो भी वह उसका उपभोग कर नही पाते। भगवान महावीर के पुरुषार्थ पर दृष्टिपात करें। चातुर्मास कोल्लाण शन्निवेश में पूर्ण हुआ। उसके पश्चात् स्वर्णकल की ओर विहार किया। गौशालक भी साथ-साथ चल रहा था। बीच में एक जगह देखा, ग्वाले खीर पका रहे थे। खीर देखकर गौशालक का मन मचला। खीर बन जायेगी तो खाकर आगे बढ़ेंगे।

साधु को स्वादु नहीं होना चाहिये। इसलिए कहा गया कि साधु कहीं गोचरी गया हो, देखे कि अमुक-अमुक अच्छे-अच्छे पदार्थ बन रहे हैं इसलिए थोड़ी देर नीचे बैठकर परिवार वालों को सेवा करवा दे। जब तैयारी हो जाएगी, गोचरी कर लेंगे। क्यों, कोई दिक्कत है ? ये तो नही समझोगे कि महाराज ने हमारे पर इतनी दया कर दी ? आज के लोग तो खुशियाँ मनाएंगे कि महाराज की जय हो। ये नही सोचा कि महाराज ने धर्म के परम स्वरूप को कितना निखारा, कितना संवारा। इन पुद्गलो के प्रति प्यार है या धर्म के परम स्वरूप से ? लेकिन पर की, दूसरो की छाया जब किसी पर पड जाती है तब धीरे-धीरे वह धर्म को विसार देता है। गौशालक जो एक तरफ यह कहता था कि मै आपका शिष्य बनकर आपके साथ विचरण करना चाहता हूँ उसका मन कैसे पर की ओर डोल गया। कहॉ तो पूर्णिमा का प्रकाश और कहाँ अमावस्या की काली रात । कहाँ तो शुद्ध आत्मभाव मे रमण करने वाले जिनका पुद्गलो के प्रति कोई ममत्व नही और कहॉ आत्मभाव का बहाना लेकर चले पर मन पुद्गलो से घिरा रहे, लालसा बनी रहे तो वहाँ वैसी ही अवस्था बनती है। इसलिये मै कहता हूँ कि यदि धर्म के परम स्वरूप को समझना है तो कषाय से उपरत हो तभी आत्मस्वरूप दृष्टिगत होगा। कषाय की लाय उठती रही, वासना के तरफ चलते रहे तो परमधर्म की अनुभूति कर नही पाएंगे। आप साधु पद की वदना मे कहते है- वुझाय कषाय लाय, किरिया भण्डारी है। इसलिए उन्हे नमन करते हैं। आप भी

उसे बुझाने में समर्थ हो जाएंगे। उस आग को शमित करने का प्रयत्न करें, उसे किसी हालत में बढने न दें। उसे शांत करके शुद्ध आत्मस्वरूप को प्राप्त करने का प्रयत्न करें तो जीवन को धन्य बना पाएंगे। तभी दुर्लभ अंगों की प्राप्ति सार्थक सिद्ध हो पायेगी।

7.11.2000

❖ ❖ ❖

17. आलौकित हो आत्मप्रदेश

धरम परम अरनाथ नो.........।

आत्मा अनंत गुणों का स्वामी है। एक-एक आत्मप्रदेश आलोकमय है, परन्तु कर्मों का आवरण होने से उसका आलोक हम प्राप्त नहीं कर पाते हैं। इसलिए कभी-कभी ऐसी जिज्ञासा मन में उठती है कि जब हम अपने शरीर को देखते हैं और मानते है कि इसमें आत्मा रहा हुआ है तब इसका वह आलोक बाहर क्यों प्राप्त नहीं होता है ? यदि यह आलोकमय है तो बाहर भी आलोक प्राप्त होना चाहिये। परन्तु आत्मा का आलोक केवल मस्तिष्क मे होता है क्योंकि हमारा सारा सोच-विचार और चिन्तन-मनन मस्तिष्क में ही होता है। तो यह मानना चाहिये कि मस्तिष्क के आत्मप्रदेश ही आलोकमय हैं। शरीर के आत्मप्रदशों में आलोक नहीं है। उनमें संवेदन भी नहीं है। परन्तु उक्त प्रशन भी अपने आप में समीचीन है और जितने प्रश्न होते है, उनके समाधान भी मौजूद होते हैं। यह बात अलग है कि हमारा क्षयोपशम न हो परिणामस्वरूप उसका ग्रहण न हो। किन्तु जब-जब क्षयोपशम होता है तो बुद्धि उन्हे ग्रहण कर लेती है। हम समाहित हो जाते हैं, जिज्ञासा शांत हो जाती है।

आत्मा के प्रदेश में संवेदन शक्ति है और सभी प्रदेश आलोकमय है, ये नहीं कि केवल मस्तिष्क के भाग मे ही संवेदन हो। हम जानते है कि यदि शरीर के किसी भी भाग पर चिन्गारी गिर जाये तो संवेदन का तत्काल संप्रेषण होगा और मष्तिष्क में सूचना पहुँच जायेगी कि वहां चिन्गारी गिर गई है। साथ ही मस्तिष्क से भी तुरन्त निर्देशात्मक सूचन का प्रसारण होगा और हाथ उसे हटाकर अलग कर देगा। इतना शीघ्रगामी तत्र है संवेदन का। इसके बराबर शीघ्रगामी कोई भी अन्य तंत्र हो नहीं सकता। आज विज्ञान ने जो कुछ आविष्कार किये हैं, वे हमारे सामने मौजूद है। व्यक्ति सैकिण्ड मे नही तो मिनटो मे हजारो कि मी दूर की

वार्ता कर लेता है। अपने लिखित अक्षर हजारों कि.मी. दूर पहुँचाने में भले कुछ मिनट या कुछ सैकिण्ड लगते हों किन्तु हमारे आत्मा के तंत्र मे इससे भी अल्पसमय लगता है। सूचना भी पहुँच जाती है और संकेत भी प्राप्त हो जाता है और तत्काल क्रियान्विति भी हो जाती है। पैर में काँटा गड़ा, सूचना पहुँची और तत्काल हाथ वगैरह काम करने लग जाते हैं। सरकार का कोई विभाग भी इतना जागृत-सक्रिय या शीघ्रगामी नहीं हो सकता। आत्मप्रदेशों मे रही हुई ज्ञान की अवस्था से ही संभव है। यदि उन आत्मप्रदेशों में ज्ञान नहीं होता तो कोई सूचना मस्तिष्क तक तत्काल नहीं जा सकती थी। इस प्रकार प्रमाणित है कि आत्मा के प्रत्येक प्रदेश में ज्ञान रहा हुआ है। यह बात अलग है कि संवेदन कभी मद, मंदतर, मदतम होता है और कभी तीव्र, तीव्रतर, तीव्रतम होता है। उसका कारण भी स्वयं होते हैं। इसे एक उदाहरण से समझिये।

एक किसान, हल जोतने वाला, बीड़ी सिगरेट उपयोग में लेता है। संयोग से यदि वह बीड़ी पीकर नीचे डाले और वह उसी के पैर के नीचे आ जाये और परिवार के सदस्य कहें कि बीड़ी पैर के नीचे आ गई है और वह यह पूछे कौन से पैर के नीचे है ? तो यह स्वाभाविक है क्योंकि उसके पाँव खुले होते हैं, जूते-चप्पल ना पहनने से नीचे की चमड़ी कड़ी हो जाती है परिणामस्वरूप तत्काल सवेदन प्राप्त नहीं कर पाते। दूसरे शब्दों मे कहे वह चमड़ी मृतप्राय: हो जाती है तो संवेदन मिल नहीं पाता। अब समझिये जैसी उसकी हालत है वैसी ही हमारी अवस्था होती है- जब राग-द्वेष-कषाय की गहरी परत आत्मप्रदेश पर आ जाती है तो ज्ञान की संवेदन शक्ति मंद-मंदतर हो जाती है। एकदम लुप्त तो नहीं होती किन्तु मंद-मंदतर हो जाती है, परन्तु जैसे ही राग-द्वेष अज्ञान की परत अलग होती है तो पुनः संवेदन शक्ति जागृत हो जाती है। सूर्य, चन्द्र, तारों की रोशनी हमे अलग-अलग लगती है किन्तु विज्ञान कहता है कि चन्द्र की रोशनी अलग नहीं है, सूर्य के प्रकाश से ही उसमे प्रकाश आता है। विषय किसी रूप में हो किन्तु सूर्य यदि अलग हो जाये तो चन्द्र, ग्रह, तारों का प्रकाश नजर आता है। रात्रि में तारो का प्रकाश टिमटिमाता है। चाँदनी रात हो तो चन्द्र

का प्रकाश नजर आता है किन्तु जैसे ही सूर्योदय होता है, सूर्य का प्रकाश प्रसृत होता है तो ग्रह-नक्षत्र-तारों का प्रकाश तिरोहित हो जाता है। हमें ये अलग-अलग गृह-नक्षत्र लगते हों किन्तु जैसे ज्योतिष चक्र एक है वैसे ही हमारे आत्मा का चक्र भी है। इसे किंचित् विस्तार से समझें।

ज्ञानावरणीय के 5 अलग-अलग आवरण हैं- मतिज्ञानावरणीय, श्रुतज्ञानावरणीय, अवधिज्ञानावरणीय, मन:पर्यवज्ञानावरणीय और केवल-ज्ञानावरणीय। कभी तारे की तरह आत्मसवेदन होता है, कभी नक्षत्र की तरह किन्तु केवल्य लोक के रूप में सूर्य की तरह आलोकिंत अवस्था हो जाये तो फिर चन्द्र, तारो की रोशनी उसी में तिरोहित हो जाती है। उस आत्मशक्ति को जागृत करने हेतु धर्म की आवश्यकता होती है। उसके लिए ही कवि कहते हैं-

धरम परम अरनाथ नो........।

धर्म अरनाथ का परम है, श्रेष्ठ है। उसके द्वारा हम आलोक को प्राप्त कर सकते है, परन्तु वह होता स्वसमय के आधार पर ही है। एक तरफ हम परम धर्म की बात करते हैं, पर दूसरी तरफ परधर्म के रस में इतने मस्त हो जाते है कि परधर्म मे झूमने लग जाते हैं। वैसी स्थिति मे परम धर्म को कैसे प्राप्त कर सकते हैं।

आज से 50 वर्ष पहले सतों की कोई ऊँची-नीची बात होती थी तो श्रावक उनकी सेवा में निवेदन कर देते थे। निवेदन का कारण था- जब श्रावक के जीवन में भी वैसी ही साधना होती थी, कोरा जीवन नही होता था। श्रावको का जीवन भी तप-स्वाध्याय से मंडित होता था। आज हमारे जीवन मे तप-नियमों के प्रति उतनी समर्पणा नही रही है। छोटे-छोटे प्रत्याख्यान मे भी इधर-उधर मुँह डालने लगते है। एक नवकारसी या माला की बात भी भारी लगती है। पार्श्वनाथ परम्परा के संतो के सामने गौशालक ने अंट-संट कहा था, पर वे क्रोध मे नहीं आये थे, शांत रहे। वस्तुत: साधु जीवन का लक्षण शांत भाव ही है। जो शांत रमण को साध लेता है, वह फिर कैसे भी परिषह आये उद्वेलित नही होता। यदि शांत भाव की आराधना नही है तो छोटी-मोटी बात मे भी मन

में उतार-चढाव आ जाता है। व्यक्ति अपना धरातल व्यवस्थित रख नहीं पाता है, बोरियत लगने लगती है। ऐसी स्थिति में यदि साधु जीवन में हो तो भी रस नहीं आएगा। श्रावक है तो श्रावक जीवन मे आनंद नहीं आएगा। लगेगा यह कैसा त्याग-प्रत्याख्यान है, यह तो बंधन है ! बंधन समझें तो कहना होगा कि पर की छाया पड़ी हुई है। अतः हम स्वसमय को समझने का प्रयत्न करें। ज्ञान-दर्शन-चारित्र यह स्वसमय है इनकी आराधना की तैयारी होती है तो प्रश्न होता है ये आत्मा से भिन्न है या अभिन्न ?

जैन दर्शन एकांत कथन कहाँ करता है ? वह कहता है कथंचित्, भिन्न है, कथंचित् अभिन्न है। प्रश्न होगा- यह भिन्नता-अभिन्नता क्या है ? बताईये आपके हाथ आपसे भिन्न है अभिन्न है ? जब हम यह कहते हैं कि यह मेरा हाथ है तो मैं और हाथ में अंतर करते है या नहीं ? क्या अंतर है ? 'मेरा' यह वस्तु से भिन्नता को प्रदर्शित करता है अर्थात् मैं अलग हूँ और मेरा जिसके लिए संकेत कर रहे हैं, वह मुझसे भिन्न है। वह मेरा भाई है, वह मेरी पुस्तक है, यह मेरा मकान है। यहाँ "मैं" अलग है और "भाई, मकान, पुस्तक" अलग हैं। तो जिसमें मैं का संबोधन होता है, वह हो गया अभिन्न और जिसमें मेरा का संबोधन होता है, वह भिन्न है। यदि कहे कि ये मेरा हाथ है तो वह भिन्नता लेकर खड़ा होता है। किन्तु वैसे चिन्तन करें तो हाथ शरीर से जुड़ा है, अलग नहीं है। वैसे ही आत्मा के साथ ज्ञापन का ऐसा भी संबंध होता है कि यह मेरा ज्ञान है। प्रयोग में मेरा ज्ञान है ऐसा न भी कहें, पर ऐसा तो कहते हैं- "मैं अपने ज्ञान से जानता हूँ"। यहाँ जानने वाला आत्मा है, ज्ञान माध्यम है। मैं हाथ से अमुक वस्तु उठाता हूँ। यहाँ उठाने वाला और है तथा हाथ माध्यम है। जिसके माध्यम से जाना जाता है वह ज्ञान है। जिसके माध्यम से दर्शन की स्थिति बने वह दर्शन है। जिसके माध्यम से आचरणपूर्वक कार्य की प्रक्रिया हो वह चारित्र है। किन्तु ये कथंचित् आत्मा से अभिन्न भी हैं। भगवान पार्श्वनाथ के शिष्य कालश्यवेशी अणगार ने पूछा कि स्थविरों क्या आप सामायिक को जानते हो ? सामायिक का अर्थ क्या है ? आप जानते हो तो बतलाओ। स्थविरों

ने कहा- आत्मा ही सामायिक है। आत्मा ही सामायिक का अर्थ है क्या फिर 48 मिनट की सामायिक रहेगी ? ये 48 मिनट तो जब तक हम सामायिक की पूर्णता में प्रवेश नहीं कर पाते हैं, इसलिए अभ्यास करते है। धीरे-धीरे ऐसा प्रसंग उपस्थित करें कि सदा-सर्वदा सामायिक में आ जायें। जब एकात्म भाव की स्थिति घटित हो जाएगी तो सदा-सर्वदा आत्मा सामायिक में आ जाएगा, फिर वहाँ किसी के कटुवचन आ भी गए तो कोई परेशानी नहीं रह पाएगी।

प्रभु महावीर को किसी ने कितने भी उपसर्ग दिये, कैसे भी परीषह आये किन्तु भगवान सामायिक में ही रहे। अभी आपको कोई सामायिक मे गाली दे दे तो क्या करोगे ? बोलने में भी जोर लग रहा है। क्या कहोगे है पता ? हम सामायिक में हैं, नही होते तो ? उत्तर होगा- तो देख लेते। देख तो अभी भी रहा है। पर वह देख लेना कुछ और ही होता है। इसलिए यह औपचारिक सामायिक है। यथार्थ सामायिक वह है, जिसमे कोई प्रतिक्रिया न हो, मात्र सहज अनुभूति हो। जहाँ प्रतिक्रिया का दौर चलता है तो समझ लीजिये वहॉ सामायिक-साधना हम उपचार से कर रहे हैं। कर्मों का ये चक्कर तो चलेगा, उसका संवेदन करो। प्रभु पर कितने उपसर्ग आये पर वे अपने भीतर कोई प्रतिक्रया प्रकट नही होने देते थे। दबाव से नही, किन्तु इतना सहज-सरल बना लिया था उन्होंने स्वय को कि कोई प्रतिक्रिया प्रगट नही होती थी।

मुनिचन्द्र आचार्य के वर्णन मे भी बताया गया है कि उपसर्ग आने पर उन्होने कोई प्रतिक्रिया नही की। अपितु अपनी साधना मे दृढ़ रहे। उनके सत भी उपशम भाव मे रमण करते रहे। वह आख्यान इस प्रकार है- मुनिचद्र आचार्य के शिष्य भिक्षार्थ परिभ्रमण कर वापिस लौटे। उपनाथ कुंभकार सुरापान कर अपनी मित्र मंडली के साथ निकला था। सुरापान के कारण बेभान था। उसे उपहास सूझा। पहले मुनियो को यातना दी। मुनियों ने देखा, उपगर्स आया है तो ध्यान मे दृढ़ हो गये। उन व्यक्तियो को आक्रोश आया और गला दवाने के लिए प्रस्तुत हो गये। एक ग्रंथ में मिलता है कि मुनिचन्द्र केवली बन गये किन्तु आचार्य हेमचन्द्र के अनुसार उन्हें अवधिज्ञान प्राप्त हुआ। जिसे ग्रथ मे वताया है

कि केवलज्ञान प्राप्त हुआ उसमें यह भी बताया है कि फिर देवों ने महोत्सव का प्रसंग उपस्थित किया। गौशालक ने कहा- मेरे शाप से उपाश्रय जल गया। सिद्धार्थ देव ने कहा- जल नहीं रहा है, जल भी नहीं सकता क्योंकि वे साधनाशील संत है। उनके तप तेज से जल नहीं सकता। पूछा- तो फिर प्रकाश काहे का है ? तो बताया कि मुनिचन्द्र आचार्य आज ध्यान में अवस्थित हुए। कुंभकार ने उपसर्ग दिया। उन्हें केवलज्ञान हुआ और वे निर्वाण को प्राप्त हो गये। इसलिए देव पहुँचे हैं। गौशालक को तो थोड़ा मिलना चाहिये था। वह पहुँचा उपनाथ के यहाँ। संतों से कहा- खा-पीकर आराम से सो रहे हो। तुम्हारे धर्मगुरु-धर्माचार्य के कालधर्म की स्थिति बन गई है। तुम लोग सो रहे हो। गौशालक के कहने से वे जगे। उन्हें पश्चात्ताप हुआ, वे विचार करने लगे- हाँ ! हम शयन किये रह गये और हमारे धर्मगुरु, धर्माचार्य कालधर्म को प्राप्त हो गये। गौशालक ने जली-कटी सुनाई, फिर भी वे शांत भाव से सुनते रहे, किन्तु उस पर क्रोध नहीं किया।

तो समझिये साधु के लिए उपशम भाव महत्त्व रखता है। जैसे उपशम भाव की आराधना साधु करता है, वैसे ही श्रावक भी कर सकता है। कई श्रावक ऐसे हुए हैं जिन्होंने आराधना की है। अग्निशर्मा ने गुणसेन राजा के जीव को कई जन्मों तक भयंकर उपसर्ग दिये, पर प्रत्येक बार गुणसेन की आत्मा शांत भाव रखती रही और उपशम भाव मे ही रमण का लक्ष्य बनाये रखा। यदि उपशम का रस एक बार प्राप्त हो जाये तो फिर देखिये जीवन में आनन्द आता है या नहीं। जब उधर लगाव नहीं है तो मन में थोड़ी-सी स्थिति बनते ही मन विचलित होगा, किन्तु उपशम शात भाव का आनंद लेने वाले में चल-विचल अवस्था आ नहीं सकती।

मैं प्रभु के जीवन के प्रसंगों के विवरण सुनाता रहता हूँ किन्तु सुनने का सार है कि हमारे भीतर उपशम रस की मात्र बढे। उपशांत अवस्था हमारे भीतर बननी चाहिये। यदि हम ऐसी अवस्था जागृत करने में सक्षम हुए तो तीर्थंकर का चारित्र सुन परमधर्म को भी प्राप्त कर पाएगे। परन्तु सुनकर ही न रहे और चिन्तन-मनन करे। उपशांत भाव

शांत भाव प्राप्त करने का लक्ष्य बने तथा हर परिस्थिति में अपने को शांत रखने का प्रयत्न किया जाये तो जीवन धन्य बनेगा एवं हमारे आत्मप्रदेश पर पड़ी पर्तें दूर हो सकेंगी। उन पर्तों के दूर होते ही हमारे आत्मप्रदेश पूर्ण रूप से आलोकित हो उठेंगे।

8.11.2000

❖ ❖ ❖

त्सर, ईर्ष्या, डाह आदि। ये सारे आत्मा के अनुचर हैं, अर्थात् सेवक हैं। मल्लिजिन के भी ये अनुचर थे किन्तु जैसे ही उन्होने धर्म के परम स्वरूप को जाना, उन्होंने इन सबसे नाता तोड़ लिया और इन सबके प्रति पूर्ण उपेक्षा भाव विकसित कर लिया। जब तक वे अपने स्वरूप को नहीं जान पाये थे तब तक इनके साथ उनका मेल-जोल बना रहा था। जब उन्हें मालूम पड़ गया कि मेरा स्वरूप क्या है तब उनकी दृष्टि बदल गई। वे समझ गये कि मुझ में अनंत शक्ति है, मैं सामान्य नहीं हूँ। तब मैं परवश क्यों रहूँ। अब तक उनकी स्थिति भिन्न रही थी किन्तु अब जब उन्हें उनके वास्तविक स्वरूप का बोध हो गया है तब उन्हे यह ज्ञात हो गया है कि ये सारे क्रोधादि भाव आवर्जित हैं इन्हीं के कारण मेरी आत्मा विपदा मे उलझी है, तनावग्रस्त होती रही है। ऐसी स्थिति में इनका आदर नही करना है, इन्हें बढ़ावा नही देना है। इसलिए भगवान ने इन्हें आदर देना बंद कर दिया और उनके प्रति पूर्ण उपेक्षा भाव विकसित कर लिया।

बंधुओ ! ध्यान दीजिये, बातें जटिल हो सकती हैं किन्तु इन्हे समझना होगा। समझोगे नहीं तो छोड़ कैसे पायेंगे। यदि जानेंगे कि इन्हीं के कारण हमारी बर्बादी हो रही है तो ही इनका परिहार कर पाएंगे। जब तक लगेगा कि इनसे हमारा जीवन आबाद है तब तक उन्हें अलग कर भी नही पाएंगे। जब व्यक्ति जान ले कि मेरे संबंधी ही मेरी जड़ काट रहे है, तब फिर उनसे वह कितना सबंध रखेगा ? जैसे ही अवसर मिलेगा धीरे-धीरे उन्हे हटाने का प्रयत्न करेगा। आप भी ऐसा ही करेंगे। पहले उन्हें चेतावनी पत्र दे देंगे ताकि वे हड़कंप न मचा सकें। वैसे ही आप जानते हैं कि ये सेवक कहलाते हैं। मालिक जब रुख कड़ा करता है तो ये चापलूसी करने लगते हैं। जैसे रोटी देखकर कुत्ता दुम हिलाता है, वैसे ही वे सेवक चरण पकडकर चापलूसी करते हैं। पर जैसे ही असावधानी हुई कि ये हावी हो जाते है, शेर बन जाते है। इसी कारण आत्मा के सद्गुणों की बर्बादी होती रही है। यही बात जब मल्लिजिन ने जान ली तो इनसे किनारा कर लिया, संबंध विच्छेद कर लिया कि मुझे अहकार नही चाहिये। मुझे अहकार रूपी गुरिल्ला अगरक्षक और

जेड सुरक्षा नहीं चाहिये। काम-क्रोध-मत्सर ये सभी परस्पर जुडे हुए हैं। भारत में तो कई नेताओं को जेड सुरक्षा व्यवस्था प्राप्त हो रही होगी, पर हमें तो अनादिकाल से जेड सुरक्षा प्राप्त है या नही ? कोई थोड़ा-सा तिरस्कार कर दे तो ये जेड सुरक्षा वाले बमबारी की तैयारी कर लेते हैं। ये कहाँ से आती है ? ये हमारे साथ मे अनादिकाल से है, इसी कारण हमारी आत्मा जकडन मे आ गई है।

बंधुओं ! देखें कि आज नेताओं की हालत क्या है ! वे सुरक्षा कर्मियों से घिर कर रह जाते है। वे खुली हवा मे अर्थात् आम जनता के बीच नहीं आ पाते हैं। यही दशा हमारी है। इसीलिए हम अपने ही भाईयो से दूर होते चले जाते हैं। ये जेड सुरक्षा हमारे स्वरूप वाली आत्मा से हमें दूर करती चली जाती है। भगवान कहते हैं कि यदि ये जेड सुरक्षा समाप्त हो गई, हमसे हटा ली गई तो प्रत्येक आत्मा के साथ हमारा मैत्री संबंध हो जायेगा।

पूज्य गुरुदेव गाँवो में कथा सुनाते थे। कथा लंबी है, पर मैं संक्षेप मे सुना रहा हूँ। एक पिता ने मृत्यु के क्षणो मे पुत्र को शिक्षा दी- तू इकलौता पुत्र है, इसलिये तुझे कुछ शिक्षा देना चाहता हूँ। मेरी शिक्षा मानेगा तो जीवन सुखी बन जायेगा। फिर उसने ये शिक्षाएँ दीं- 1 सदा मीठा भोजन करना। 2 जाना हो तो सदा छाया में जाना ध्यान रखना कि कभी धूप की चिलकी न लगे। 3 हड्डियों की बाड़ बनाकर रखना। 4 यदि ये सारी स्थितियाँ न रहे तो गंगा जमुना के बीच मे मैंने धन गाड़ रखा है उसका उपयोग कर लेना। इतने पर भी सुखी न हो तो मेरे मित्र से सम्पर्क कर लेना।

इधर पिता ने प्रयाण किया, उधर पुत्र आज्ञा पालन मे लग गया। पुत्र रोज मिठाई खाने लगा। शुगर हो गई लेकिन पिता ने कहा था तो भी रोज मीठा भोजन करता रहा। घर वालो ने कहा, ऐसा कैसे चलेगा पर उसने कहा- नही, मुझे तो आज्ञा का पालन करना है। डॉक्टर ने मना किया तो भी उसने उत्तर दिया- कुछ भी हो मै तो पिता की शिक्षा को अमली रूप देना चाहता हूँ, शिक्षा को आलमारी में मजाकर नहीं रखना चाहता।

प्रारब्ध मे था तो एक अनुकूल दृष्टि वाला डॉक्टर भी मिल गया। उसने कहा- "खाते रहिये, मै इलाज करूँगा।" क्या ऐसा डॉक्टर चाहिये जो मन के अनुसार इलाज करे ? डॉक्टर तो स्वार्थी, पूर्ण रूप से व्यावसायिक मनोवृत्ति वाला था ही। उसने सोचा- मेरा क्या जा रहा है ? मरे तो ये मरे। वह तो इंस्युलिन के इंजैक्शन लगाता रहा। खाना है तो खाते रहो। 40 यूनिट काम न करे तो भले 100 यूनिट डालना पडे, पर खाते रहिये। मरीज कहे छोडू नहीं और डॉक्टर भी सोचे मैं कमाई क्यों छोडूं ? वह भी बचा रहे और मेरा काम भी चलता रहे। सभी काम चलाना चाहते हैं। काम नहीं रुकना चाहिये। बंधुओं ! इस काम चलाने के पीछे व्यक्ति जिन्दगी बर्बाद कर लेता है।

दूसरी शिक्षा थी- छाया में आना जाना। मुनीमजी से कहा- घर से लेकर दुकान तक पर्दे बंधवा दो। खा-पीकर सेठजी 11-12 बजे एक बड़ी बग्घी में दुकान जाते। सूर्यास्त से पूर्व लौट आते। बिना मालिक की खेती और बिना मालिक की दुकान नही चलती। मालिक सोया रहे तो दुकान नहीं चलती, आप जानते हैं। पर यहाँ आकर वापिस भूल जाते हैं। यदि ऐसे सोये रहे तो खेती उजड़ जाती है। जहाँ हमें सतर्क रहने की आवश्यकता है, वहाँ हम कान में तेल डालकर, गाढी नींद मे आ जाते है। भौतिक पदार्थों में तो बडे चौकस रहते है, परन्तु यहाँ सजगता हवा मे उड़ जाती है, इसलिए ज्ञानीजन कहते हैं- जागो ! बड़ी कठिनाई से यह मनुष्य तन मिला है-

चेतन चेतो रे, दस बोल जगत में
मुश्किल मिलिया रे........।

कौनसे दस बोल है जानते है ? उनमे मनुष्य जन्म प्राप्त होना भी एक बोल है। इसलिए ज्ञानी कहते हैं, मनुष्य जन्म प्राप्त हुआ है, उसे योही गंवा दिया फिर क्या मिलने वाला है ? फिर हाथ मलना ही बाकी रह जाएगा। परन्तु सेठजी के साथ कुछ ऐसा ही हुआ। उनके लिए रोज नये-नये पर्दे बनते, किन्तु रात को लोग खोलकर ले जाते। फिर नये बनते। दुकान चौपट हो गई। तब पिता ने जो तीसरी शिक्षा दी थी- हड्डियो की बाड बनाकर रखना, वह याद आई। उन्होने नौकरो से

कहा- गॉव के बाहर जितनी हड्डियॉ मिले लाकर घर के चारों ओर गाड दो। नौकरो ने आज्ञा का पालन किया, पर उनसे भयंकर दुर्गन्ध आने लगी। लोग कहते प्रदूषण फैल रहा है तो उनका उत्तर होता मै तो पिताजी की आज्ञा का पालन कर रहा हूँ। इस पर लोग कहते- हमे क्यों परेशान करते हो ? सारे लोग विरुद्ध हो गये और उन पर मुकद्दमा दायर कर दिया। उन्होने कहा- मेरे पिताजी की आज्ञा है। उत्तर में तर्क मिला- ये आज्ञा कैसे चलेगी ? खैर कुछ ही दिनों में सम्पत्ति प्रायः समाप्त हो गई। सोचा आज्ञा पालन करने के बाद भी दुःख झेलने पड़ रहे है।

देखिये बंधुओं ! ऐसी स्थिति आ गई, फिर भी शब्दों की मारामारी करने मे लगा है, अर्थ समझ ही नही पा रहा है। तो हमने भी क्या समझ लिया है पिता की क्या आज्ञा है ? क्या हम भी पिता की आज्ञा का पालन कर पा रहे हैं ? जिनेश्वर देव की आज्ञा का पालन करे फिर भी जीवन में शांति प्राप्त न हो, तनाव-द्वन्द्व बने रहें तो कभी सोचा कि कहीं हम गड़बड़ी तो नहीं कर रहे है। आज्ञा का अर्थ समझा भी है या नहीं ? मीठा भोजन करना है तो मिठाईयाँ उड़ाये ? छाया में आने-जाने के पीछे प्रमाद में तो नही जा रहे हैं ? मृतको की हड्डियॉ लगाकर प्रदूषण तो फैला नहीं रहे हैं ? आज्ञा को यदि सही संदर्भ में नहीं समझा जायेगा तो ऐसी ही स्थिति बन जायेगी। तब सेठ ने सोचा गंगा-जमुना के बीच का धन निकाल लूं। उसमे तो रही-सही सारी सम्पत्ति समाप्त हो गई। तब पिता द्वारा मित्र से सम्पर्क करने के निर्देश का ध्यान आया। पिता के मित्र के पास पहुँचा। वे पहचान नही पाये, पूछा- कौन हो ? बताया, मैं अमुक का पुत्र हूँ। सारी बातें बता दीं। पिता के मित्र ने पूछा- आज्ञा का पालन कैसे किया ? रोज मिठाई खाता, इंस्यूलिन के इंजेक्शन लगवाता, पर आज्ञा पालन नही छोडी, आदि-आदि। वाह रे वाह शेर ! ऐसा आज्ञापालक ! ऐसा दूसरा उदाहरण नहीं मिलेगा। तब उसने समझाया- पिता की आज्ञा ये नहीं थी। मीठा खाना खाने से उनका तात्पर्य था- कडाके की भूख लगे तब भोजन करना। मिठास रसगुल्ले व शक्कर में नही है। आप भी जानते है और कहते है- "भूख मीठी कि लापसी ?" भूख नही हे तो लापसी भी देखने का मन नही

एक सेठ जो प्रायः नशे मे रहता, उसने घर मे नौकर रखने का विचार किया। नौकर को आदेश दिया- मुझे रोज अच्छी मलाई का दूध मिलना चाहिये। नौकर ने कहा- ठीक है। जब नौकर ने देखा कि सेठजी तो नशे में रहते हैं तो पहले वह 4 रु. लीटर में दूध लाता था। अब उसने 3 रुपये का दूध लाना शुरू कर दिया और एक रूपये के बराबर का पानी मिला देता। सेठ को लगा ये गड़बड़ करता है तो उसे हटाकर दूसरे को लगाया। थोड़े दिन तो ठीक चला फिर उसने भी आधा दूध और आधा पानी देना शुरू कर दिया कि पता नहीं कब सेठ छुट्टी कर दे। मंत्री भी यही सोचते हैं कि पता नहीं सरकार कब मंत्रीमंडल से छुटी कर दे तो जितना लाभ उठा सकूं उठा लूं। तीसरा नौकर आया। कुछ दिन बाद उसने भी एक भाग दूध और उसमें तिगुना पानी मिलाना शुरू कर दिया। उसकी भी छुट्टी हो गई। सेठ ने कहा- सब चोर ही आते हैं, कोई दूध पिलाने वाला नहीं आता। चौथा नौकर रखा गया। वह और भी उस्ताद था। वह बाजार जाता चवन्नी की मलाई खरीदता दो कागजों के बीच में मलाई लाता और सेठजी के होठो पर लगा देता। सेठजी तो नशे में ही रहते थे। सेठजी दर्पण में मुँह देखते तो होठों पर मलाई लगी दीखती और सोचते- हाँ, ये नौकर मलाई का दूध पिलाता है। ऐसे सेठ और ऐसे नौकर हो जाये तो क्या कहा जाये। चार आने की मलाई मिल रही है और सेठ सोच रहा है ये दूध पिलाता है। किन्तु परम धर्म को जान लिया जाये तो फिर यह अवस्था रह नहीं सकती।

एक सेठ वह भी था जिसने अपने जीवन का निष्कर्ष पुत्र को शिक्षा के रूप मे बताया था। उसकी तीसरी शिक्षा थी- हड्डियों की बाड़ लगाना। उसका तात्पर्य था कि जीते-जागते व्यक्तियों की हड्डियो की बाड़ लगाना ताकि किसी भी क्षण कोई भी व्यक्ति जान देने को तैयार हो जाये।

सेठ के पुत्र ने कहा- चौथी बात का अर्थ भी बता दो कि धन कहाँ है ? मैने तो पैसे पानी बधाने मे लगा दिये, पर पानी नही बंधता। उन्होंने पूछा- तुम्हारे घर मे गाये कितनी है ? उत्तर मिला- दो। एक का नाम गंगा और दूसरी का नाम यमुना है। पिता के मित्र ने कहा उनके

चरने के ठान के बीच धन गाड़ रखा है। पुराने समय में ऐसे ही गाड़ते थे। अब क्या था उसके पैरों में जैसे जान आ गई। उसने सोचा खोदने के लिये नौकर को बुलाया तो हल्ला मच जायेगा। अतः उसने स्वयं ही कुदाली उठाई, खोदा तो सोने के चरू निकले, उनमे हीरे-मोती भरे थे ।

ऐसी ही अर्थपूर्ण और हितकारी है जिनवाणी-
यह मधुर श्री जिनवाणी, कोई सुनेगा उत्तम प्राणी।
भरी है इसमें सुन्दर ज्योति, सत्य के चंदन हीरे-मोती।।
सफल करे जिंदगानी कोई करेगा.........।

हीरे-मोती मिल जाये तो फिर और क्या चाहिये ? जब भी कोई संकट की स्थिति आ जाये तो भगवान ने हमें भी खजाना बताया है। पर कोई भगवान का मित्र नहीं मिला कि जो उनकी वाणी का रहस्य बता देता। लेकिन रहस्य समझने के लिए हमारी तैयारी कहाँ है ? वैसे भाव बने तो आगे के मार्ग मिलते हैं। रुकावट आये तो दिशाबोध प्राप्त हो सकता है। जैसे उसे पिता के मित्र ने संकेत का रहस्य समझाया था वैसे ही भगवान के संकेतो का रहस्य समझाने वाले उपलब्ध है। शास्त्र हैं, संत हैं और धर्मसभाएँ हैं, पर इन सब तक उस वणिक पुत्र की तरह आस्थामय पहुँच तो बने। संतप्त भाव से हम पहुँचे तो। हम तो औपचारिकता का निर्वाह करने उन तक पहुँचते हैं। मन में जिज्ञासा नही और भावों मे तन्मयता नहीं तो फिर ज्ञान कैसे मिले ? बिना कुंजी के खुले न ताला के अनुसार बिना गुरु के ज्ञान नहीं हो पाता।

कहते हैं गुरु के बिना ज्ञान नहीं और बिना वैराग्य भाव के ज्ञान टिकता नहीं। वैराग्य भाव का मतलब है; सब रागो को त्यागकर, सब रागो के प्रति विरक्ति भाव बनाकर, केवल मार्गदर्शन प्राप्ति के भाव से, ज्ञान के उस स्रोत तक पहुँचे जैसे वह वणिक पुत्र सब ओर से निराश होकर, पूर्ण समर्पण भाव रखकर तथा पिता के मित्र के संकेत में पूर्ण आस्थाभाव रखकर पहुँचा था। तो आप लोग विचार करे कि आप मे कितना अनन्य भाव है; कितनी श्रद्धा है; कितनी जिज्ञासा है और रागो के प्रति कितना विराग है। मल्लिनाथ जिनके उदाहरण से प्रेरणा ले और सेवा-सेवक दोनो के रूप को भी समझें। धर्म के परम स्वरूप को समझ

पाना भी तभी संभव होगा। मल्लिजिन को क्या शोभता था और आपको क्या शोभना चाहिये इसका विवेक स्वयं की बुद्धि से करें तो आपका कल्याण होगा।

9.11.2000

❖ ❖ ❖

19. क्रान्त पथ के पथिक : सिरीवाल

चारो गतियो मे मनुष्य जन्म को श्रेष्ठ कहा गया है। नरक गति में आत्मा को भयंकर पीड़ाएँ और यातनाएँ मिलती है। जो आत्माएँ या प्राणी पापाचरण करते हैं, हिंसा, झूठ, चोरी आदि मे अपने जीवन को गँवाते हैं वे दण्ड से बच नहीं सकते। संसार की प्रशासनिक व्यवस्था मे तो सरकार की निगाहों से बचा जा सकता है, वकील के माध्यम से भी बचाव किया जा सकता है किन्तु प्रकृति के दरबार मे देर भले हो जाये पर अंधेर नही है। जो-जो क्रियाएँ घटित होती हैं उन क्रियाओ की प्रतिक्रिया भी घटित होती ही है। एक व्यक्ति चोरी करता है, चोरी से जो धन-सम्पत्ति मिल जाती है वह उससे भले हर्ष मना ले किन्तु यदि वह पलटकर देखे कि जिसकी वस्तु उसने चुराई थी उसे कितनी पीड़ा या वेदना हो रही होगी, वह कितना परेशान हो रहा होगा तो उसे पता चले कि उसने कैसा पाप किया है। धन चला जाये या धन का कोई हरण कर ले उससे भीषण मानसिक द्वन्द्व की स्थिति ही उत्पन्न नही होती मानसिक पीडा भी पहुँचती है। इसलिए चोरी को अनार्य कर्म कहा गया है, पापाचार बताया गया है। चोरी जैसे पापों का जो सेवन करता है वह भले यहाँ बच जाये किन्तु कही न कही उसे दण्ड भोगना अवश्य पड़ता है। ऐसे पापों का दण्ड भोगने के लिए ही नरक गति बताई गई है। वैदिक संस्कृति की दृष्टि से उस नरक गति मे यमदूत अनेक यातनाएँ देते है। व्यभिचार करने वालो तथा शराब पीने वालो सभी के लिए वहाँ यातना तैयार है। कहते हैं- नरक मे गरम-गरम सीसा उबाला जाता है और यमदूत वह गरम शीशा पापी पर उडेलते जाते हैं और कहते जाते है- "उस समय शराब के नशे में मदहोश रहते थे, अब इसका स्वाद चखो।" पापी भागना चाहते हैं किन्तु उन्हे भागने नहीं दिया जाता है। जो भागता है उसको पकड़कर पिटाई की जाती है। जो व्यभिचार का सेवन करते हैं उनके शरीर का गर्म-गर्म लोहे के खभो के

साथ स्पर्श कराया जाता है और कहा जाता है कि वहाँ व्यभिचार सेवन किया था अब इसका परिणाम भोग ले। चोरी करने वालो के शरीर को अनेक यातनाएँ दी जाती है और कहा जाता है कि तुमने दूसरों को पीडा पहुँचाई थी अब यहाँ तुम भी पीड़ा का अनुभव कर लो। ऐसी होती है नरक गति, जहाँ व्यक्ति पाप के फल का भोग करता है।

दूसरी गति तिर्यंच की है। जो माया, कपट, ठगाई आदि करता रहता है और मन में खुश होता रहता है कि मैंने बुद्धि की चतुराई से दूसरे को ठग लिया, चंगुल में फँसा लिया या ऐसी ही भावनाएँ रखता है, उसे जो कर्मबंधन होते हैं वे उसे पशुयोनि में डाल देते हैं। परिणामस्वरूप उसे पशुओं के समान कठोर श्रम करना पड़ता है। परन्तु यदि आत्मा पहले से ही कुकर्मों से बचाव कर ले और ऐसे पापाचरण से स्वयं को मुक्त रखें तो ऐसे आत्मा का बचाव हो सकता है।

यदि कोई विचार करे कि पहले हमने पाप बहुत किये है उनका फल भोगना पड़ेगा इसलिये अब सदाचरण करने से क्या प्रयोजन ? क्योंकि पापाचरण के परिणाम तो भोगना ही पड़ेगा तो उनके लिए ज्ञानीजनो ने बताया है–

पाप पराल को पुंज वण्यो
अति मानों मेरू आकारो।
ते तुम नाम हुताशन सेती,
सहज प्रज्वलंत सारो।
पद्म प्रभु पावन नाम तिहारो.........।

प्रायश्चित्त भाव से यदि ऐसा व्यक्ति परमात्मा का नाम स्मरण करता है तो जैसे घास की गंजी दियासलाई की तीली की रगड़ से निकली चिन्गारी से अल्पसमय मे ही जलकर राख हो जाती है वैसे ही बहुत सारा पाप का ढेर भी थोड़े समय में ही जलकर नष्ट हो सकता है यदि परमात्मा की शरण को स्वीकार कर लिया जाये। सच्चे दिल से परमात्मा का स्मरण किया जाये तो पापी का भी उद्धार हो जाता है। वाल्मीकि जो रामायण के रचयिता है, वे पहले कौन थे आप जानते होगे ? वे डाका डालकर, चोरी मे लिप्त रहते थे किन्तु जैसे ही

सत-सगत मिली उन्होंने परमात्मा की शरण को स्वीकार कर लिया शरण स्वीकार करने से वे चोर-हत्यारे नहीं रहे, संत बन गये औ रामायण तैयार कर दी।

बधुओ । व्यक्ति भटक सकता है, ठोकर खाकर गिर सकता है ना समझ कुसस्कारो के कारण पाप की स्थिति से जुडकर आपराधिक प्रवृत्तियाँ अपना सकता है। बड़े-बडे घरों के व्यक्ति और बडे-बड़े राजकुमार भी पापाचारी बन सकते है किन्तु संतो की संगत से जीवन सुधार कर संत-महन्त का रूप भी पा सकते है। अतः यह न सोचे कि पापी का कभी उद्धार नही हो सकता, वह तो डूबने वाला ही है। हाँ जब तक पापाचार करेगा तब तक उद्धार नही होगा। परमात्मा का नाम स्मरण करें, तो उद्धार हो सकता है, किन्तु ऐसे नहीं कि मुँह में राम बगल मे छुरी। उस स्थिति में क्या रामजी राजी हो सकते हैं ? नही । कहा भी है-

राम झरोखे बैठकर, सबका मुजरा लेत।
जाकी जैसी चाकरी, वैसा ही फल देत।।

जैसी चाकरी-सेवा होती है, वैसा ही फल मिलता है।

पूज्य गुरुदेव कई बार फरमाते थे- एक सेठ थे मोतीलालजी। उनकी दो पत्नियाँ थी। लौड़ीजी और बडीजी। बड़ीजी एक माला लेकर मोतीलालजी के नाम का जाप करती रहती थी। एक बार सेठजी गर्मी में तमतमाते हुए आये। दरवाजा बंद था। पसीना चू रहा था। द्वार बजा रहे थे। बडी पत्नी ने सुना, पर कहा- "ठहरो, मैं आपके नाम की माला गिन रही हूँ। माला पूरी होगी तब खोलूँगी। मेरी भक्ति मे विघ्न नहीं होना चाहिये।" अब आप ही बताईये कि क्या उसकी भक्ति स्वीकार होगी ? पति धूप मे तडफ रहा है और वह नाम स्मरण करती रहे तो ऐसा नाम स्मरण क्या स्वीकार होगा ? जिसकी भक्ति कर रही है वह तड़फता रहे तो क्या भक्ति हुई ? छोटी पत्नी ने आवाज सुनी, वह भोजन वनाने में लगी थी, परन्तु आवाज सुनते ही काम छोड़कर आई, द्वार खोला। पति को अंदर ले जाकर पसीना पौंछा, सांत्वना दी फिर पैर धोकर शीतल जल पिलाया और शीतलता प्रदान की। दोनो पत्नियो मे से सेठ किस पर

राजी होगा यह आप स्वयं सोच लीजिये।

बंधुओं ! काम प्यारा होता है, नाम प्यारा नहीं होता। चमड़ी किसी की उजली हो पर काम न करे तो माता को भी बेटा भारी लगने लगने लगता है। पर जो भले काला-कलूटा हो, चमड़ी कैसी भी हो, किन्तु काम करता हो, वह सबके चित्त चढ़ जाता है। जो समाज में रहकर काम करने वाला है, लोग तत्काल उसे आगे लाने का प्रयत्न करते हैं। जैसे काम प्यारा होता है वैसे ही यदि नाम के साथ परमात्मा की शरण स्वीकार करते हैं तो उस अवस्था में जीवन का बदलाव भी होना चाहिये। जब वह बदलाव बनता है तभी जाकर सच्चे रूप में परमात्मा की शरण स्वीकार मानी जाती है।

बंधुओं ! आज जिन ओसवालों को आप देख रहे हैं उनका भी इतिहास है। वे ओसियां गांव से निकले, जहाँ धर्माचार्य ने उपदेश दिया था। उपदेश ऐसा लगा कि सुनकर प्रतिज्ञा को स्वीकार किया। उसी प्रतिज्ञा के कारण वे महाजन बन गये और महाजनों के रूप में उनकी पहचान बन गई। नहीं तो एक व्यक्ति कितनी ही संपत्ति कमा ले किन्तु शराब पीने में लगा दे तो वह महाजन थोड़े ही होगा। पूज्य गुरुदेव छत्तीसगढ़ की घटना सुनाते थे कि वहाँ की धरती उपजाऊ है फिर भी लोग गरीब के गरीब हैं। लोग चोरी करने, पशु लड़ाने या अन्य पाप करने में लगे रहते हैं। संतो ने पूछ लिया कि मिट्टी उपजाऊ है फिर भी गरीबी क्यों है ? धन का अभाव क्यों है ? उत्तर मिला- भगवन् ! ये लोग जब तक पैसा हाथ में होता है, तब तक मौज-शौक, शराब-खोरी जैसे दुर्व्यसनों में पूरा पैसा उड़ा देते है। आज भी ऐसे व्यक्ति है जो यदि आज पैसा आ गया तो आज ही उड़ाकर समाप्त कर देते हैं, कल के लिए रखते ही नही हैं। कल का जुगाड़ कल। इसीलिए गरीबी इनका पीछा नही छोड़ रही है। जो व्यक्ति अपने बलबूते पर कमाता है, कडी मेहनत करता है और बचे हुए समय मे परमात्मा का स्मरण करता है, उसका पैसा बच जाता है तब एक बीघा जमीन वाला भी अपनी आजीविका तो चलाता ही है। उसके पास अनाज इतना होता है कि वह दूसरों का भी भरण-पोषण करने वाला बनता है। इसलिये समझ लीजिये

कि यदि जीवन का सर्जन करना है तो सात्विकता, सदाचार और प्रामाणिकता, ये तीन गुण होने चाहिये। इन्हें पहिचान कर जीवन को मजबूत बनावे तो जीवन का अभूतपूर्व उत्थान हों।

इसे एक सत्य घटना से समझिये। जब आचार्यदेव नागदा जंक्शन विराजे हुए थे तब चैत्र बदी नवमी के दिन सीताराम बलाई आये और पीछे खड़े हो गये। कहने लगे- "हमारा उद्धार करिये। लोग हमे घृणा से देखते हैं।" आचार्यदेव ने कहा- भगवान महावीर के यहाँ भेद-भाव की बात नहीं है। वहाँ तो पापी से भी घृणा नहीं है। दृष्टि रहती है कि उसके पाप का परिहार करवाना चाहिये। वह पाप छोड़ दे तो उसका जीवन उन्नत बन सकता है। उन्होंने तो ऐसे व्यक्ति को दीक्षा भी दी थी जिसने 1141 लोगो की हत्या की थी। इसीलिए कहा गया है-

पाप पराल को पुंज वणयो.........।

हालाँकि भगवान महावीर के समय में भी ऐसे धर्म पंथ चल रहे थे, जिनकी मान्यता थी कि जो शूद्र कुल में जन्मा है वह सदा शूद्र ही रहेगा, कभी उन्नत नही हो सकेगा। ऐसी संकुचित मान्यता का प्रतिकार करते हुए भगवान महावीर ने कहा-

कम्मुणा बम्भणो होइ, कम्मुणा घेर खत्तिओ।
वइसो कम्मुणा होइ, सुद्धो हवइ कम्मुणा।।

उन्होने स्थापित किया कि सत्कर्म से शूद्र व चाण्डाल भी ब्राह्मण हो सकता है और ब्राह्मण कुल में जन्मा भी यदि पापाचरण में पडे तो शूद्र हो सकता है। कर्म ही प्रधान है, वही बलवान है। कर्म को सुधार लेने वाला एक दिन परमात्मा का रूप उजागर कर सकता है। इसलिए बंधुओ ! हमे जीवन मे परिवर्तन लाना चाहिये ताकि जीवन सार्थक हो सके।

आचार्यदेव ने सीतारामजी के निवेदन पर एक साधु को साथ लेकर विहार कर दिया। गुराडिया मे 70 गाँवो के लोग विवाह प्रसग से इकट्ठे हुए थे। आचार्यदेव ने उनके सम्मुख मानव-जीवन का स्वरूप उद्घाटित किया। वे लोग व्याख्यान मे कहने लगे- "हमारा काला तिलक

हटाईये। हम इसे धोना चाहते हैं।" उन्होने वचन दिया कि यहाँ पर उपस्थित व्यक्ति शराब-माँस का सेवन नही करेंगे, जुआ नहीं खेलेंगे, शिकार नहीं करेगे, वेश्यागमन और परस्त्रीगमन नहीं करेंगे। इस प्रकार उन्होंने सप्तकुव्यसनों का त्याग कर दिया।

बंधुओं ! लोग कहते हैं कि जीवन बदलता नहीं है किन्तु तीर्थंकर देवो की वाणी से तो एक बार में ही परिवर्तन हो जाता है। परन्तु यह अनुभूति का विषय है। आचार्यदेव के एक व्याख्यान से बलाईयो का जीवन परिवर्तित हो गया। संघ ने भी लक्ष्य बनाया, पदयात्रएँ निकाली, उन्हें समझाया कि कैसे जीवन जीया जाये, घर की सफाई कैसे की जाये, बच्चों को संस्कार कैसे दिये जाये आदि। दृढ़ निश्चय से ये सारा प्रसंग उपस्थित हुआ था।

भाई रामलालजी बावरी कुछ समय पहले उपस्थित हुए तो कहने लगे कि हमारी जाति का उत्थान होना चाहिये। उन्होंने यहाॅ 35 की तपस्या भी की। गत वर्ष मासखमण किया था। कोठारीजी जाकर आये तो बताने लगे कि गाँव के लोग इन्हें महाराज के नाम से जानते हैं। इन्होंने विचार व्यक्त किये और इन्हीं की प्रेरणा से जो व्यक्ति उपस्थित हुए हैं वे भी विचार करें कि हमे ऐसे खोटे आचरणों में नहीं पडना है। तो आपको क्या करना है ? छोड़ना है माँस, मदिरा, शिकार आदि। किसकी तैयारी है ? जिनकी तैयारी हो, दबाव की बात नहीं, मन में पक्का विचार हो, तैयारी हो तो खड़े हो जायें, बहिने भी खड़ी हो जायें। उनके संकल्पित मन से खड़े हो जाने के बाद यह प्रतिज्ञा दिलाई।

प्रतिज्ञा- आज से हम मॉस सेवन नहीं करेंगे, शिकार नही खेलेंगे, जुआ नहीं खेलेंगे, शराब नहीं पीयेंगे; परस्त्री गमन का प्रसंग उपस्थित नहीं करेंगे; वेश्यागमन का प्रसंग भी उपस्थित नहीं होने देंगे; चोरी नहीं करेंगे।

ईश्वर की साक्षी से आपको नियम दिलाये जाते हैं। 120 व्यक्तियो ने प्रत्याख्यान लिये, जिसमे 40 व्यक्तियो के उपवास भी थे। आज से आपका ये लक्ष्य बने कि आपका जीवन प्रामाणिकता के साथ

चलेगा, किसी प्रकार की अप्रामाणिकता नहीं रहेगी। अप्रामाणिकता झूठ के कारण होती है। परिणामस्वरूप प्रतिष्ठा प्रभावित होती है। प्रतिष्ठा रखनी है तो ऐसे कामों में जीवन नहीं लगाना है। जीवन को सही बनाना है। आपका जीवन सही होगा तो आपकी भावी पीढ़ी का जीवन भी सही बनेगा। इसलिए आपको चिन्तन करने की आवश्यकता है। भाई कहने लगे- ये भी धर्मशाला के रूप मे रहें हालाँ कि धर्मपाल तो बलाई के रूप में रहे थे। आज वे भी सामायिक, पौषध करते हैं। अब उन्होने यह संकल्प भी कर लिया है कि जो माँस-मदिरा का सेवन करेंगे उनके साथ रोटी-बेटी का व्यवहार नहीं करेगे। ऐसी दृढ़ प्रतिज्ञा जन्मी है तो नये समाज का निर्माण भी होता है। आपने भी यदि शुभसंकल्प में बढ़ने का निर्णय लिया है और मल्लिनाथ भगवान की प्रार्थना करते हुए सेवक की तरह भक्ति करने की तैयारी की है तो आपकी भी अलग ही पहिचान होनी चाहिये और वह पहचान परमात्मा के चरणों में आध्यात्मिक लक्ष्मी और अखूट लक्ष्मी के परिप्रेक्ष्य मे होनी चाहिये। लक्ष्मी का दूसरा नाम 'श्री' होता है। अतः आज के उस 'बावरी' नाम को गौण करिये, क्योंकि उसके स्मरण से पीछे के पुराने कर्म स्मृति मे आएंगे। इसलिए उसे भूलकर आज से आपकी पहचान "सिरीवाल" नाम से कराये।

"सिरीवाल" शब्द में अन्तर्निहित गूढ़ अर्थ को भी समझे। इस सिरीवाल शब्द का अर्थ दो प्रकार से हो सकता है- 1. लक्ष्मी के अर्थ में, 2 आध्यात्मिकता के अर्थ मे। जब आपका जीवन आध्यात्मिक होगा तो आध्यात्मिक लक्ष्मी जीवन को ओत-प्रोत करेगी और सदाचार की जीवन में वृद्धि होगी। समझ लीजिये कि सिरीवाल का अर्थ हो जायेगा वह जो 'श्री' का मालिक है। इस प्रकार आप श्री के दोनो ही अर्थो के धारक बनेगे। इस प्रकार सिरीवाल की पहचान प्राप्त कर आप जब जीवन को सस्कारित कर लेगे तक आपकी भावी पीढ़ियाँ सतति, आपका गुणानुवाद करेगी। कहेगी- "अहो ! हमारे पूर्वज कैसे चरित्रवान थे कि गलत आचरण छोडकर सही जीवन स्वीकार किया और हमारे संस्कारित जीवन का निर्माण किया।

बंधुओ ! आज चतुर्दशी है। पक्खी कल है। चातुर्मास पूर्ण होने का दिवस कल है। साधुओं की मर्यादा होती है कि संत शेषकाल में एक जगह 29 दिन तथा साध्वियाँ 58 दिन रुक सकती है। किन्तु चातुर्मास में जीवरक्षा की भावना के अतिरिक्त भी बहुत-सी अपेक्षाएँ होती हैं जिनके कारण भी चार माह एक जगह वर्षावास करना होता है। तीर्थंकर देवों की मर्यादा का, आज्ञा की पालना का और आराधना करने का लक्ष्य भी रहता है। आषाढ़ पूर्णिमा से चातुर्मास प्रारंभ होता है और कार्तिक पूर्णिमा को समाप्ति का प्रसंग बनता है। यदि अधिकमास का वर्ष हो तो यह चातुर्मास 5 महीने का बन जाता है, फिर भी चौमासा ही कहलाता है। संत जीवन की सुरक्षा के लिए, जब विचरण की स्थिति बनती है तब श्रावक समाज का भी उनकी सुरक्षा का दायित्व बनता है। दायित्व तो प्रत्येक क्षेत्र का बनता है कि वह सुरक्षा को ध्यान रखे केवल चातुर्मास कराने वालों का नहीं। यह प्रत्येक क्षेत्र का दायित्व होता है कि वह अगली मंजिल तक पहुँचाने की तत्परता रखें।

बावरी जाति के भाईयों का उदाहरण आपके सामने है। जैसा साहस का कदम उन्होंने उठाया है वैसा कदम समाज का सारा धरातल ही बदल देता है। इसका श्रेय भाई रामलालजी को है कि वे समाज को तैयार कर पाये कि हमें काला तिलक हटाना है और शुद्ध मानवता के धरातल पर जीना है। भगवान महावीर की अमृतवाणी को उन्होने चरितार्थ कर दिया-

मानवता की भव्य भूमि पर, बोल गये भगवान
मानव-मानव एक समान॥

10.11.2000

❖ ❖ ❖

20. जगे हमारी सुप्त शक्तियाँ

आत्मसाधना की निष्पत्ति समाधि में है। धर्म अनुष्ठान प्रतिदिन हम कर रहे हैं। परन्तु धार्मिक अनुष्ठान करते हुए समाधिभाव की अवाप्ति-प्राप्ति हो पाई है या नही या अभी भी मन अशांत है। मन में उथल-पुथल या सकल्प और विकल्प की स्थिति तो नहीं है यह अन्वेषण करने की आवश्यकता है। यदि संकल्प और विकल्प चलते रहें, मन मे उतार-चढ़ाव आते रहे और हम धार्मिक अनुष्ठान भी करते रहें तो वे अनुष्ठान हमे निष्पत्ति तक नहीं पहुँचा पायेंगे।

समाधि के चार प्रकार बताये गये है- सूत्र, विनय, आचार और तपस्या। वचन है-

सूत्र विनय आचार तपस्या, चार प्रकार समाध रे प्राणी।
ते करिये भवसागर तरिये, आत्मभाव आराध रे प्राणी॥

धार्मिक अनुष्ठान हम कर रहे है किन्तु धार्मिक अनुष्ठान के लिए आचरण की जितनी आवश्यकता है उतनी ही सूत्र और विनय के साथ तपस्या की भी आवश्यकता है। इन चारों का यदि संगम बन जाये और चारो के संगम से हमारी साधना-आराधना चले तो वह निश्चित रूप से समाधि प्राप्त कराने वाली होगी।

बंधुओ ! किसी भी धर्म अनुष्ठान का पालन करते हुए आप उच्चारण करते है कि सूत्र के अनुसार मैने इसकी पालना न की हो, सूत्र में जैसी क्रिया की विधि है, उस प्रकार से उसकी पूर्णता न की हो तो उसके लिए "मिच्छामि दुक्कड़" दिया जाता है। यहाँ सूत्र प्रथम है-

पढ़मं नाणं तओ दया।

जो क्रिया करना चाहते है, पहले उसका ज्ञान होना चाहिये। ज्ञान के पश्चात् उसके प्रति विनय होनी चाहिये, मन मे श्रद्धा होनी चाहिये,

संकल्प होना चाहिये कि मुझे यह अनुष्ठान करना है। यदि बेगार के रूप में धर्म-अनुष्ठान किया जाता है तो फलदायी नहीं होगा। महाराज बार-बार कहते है कि जब भी व्याख्यान में आओ सामायिक करो। आज न करें तो कहेंगे इसलिये सोचते हैं कि चलो मुँहपत्ति बाँधकर बैठ जाते हैं, पर उससे समाधि प्राप्त नहीं होगी क्योंकि उस स्थिति में उस क्रिया के प्रति हमारे अंदर जो विनय-भाव प्रकट होना चाहिये, वह प्रकट नहीं हो पाया। बंधुओं ! विनय मामूली बात नहीं है। हम विनय का यही अर्थ न ले लें कि 'नम्र होकर रहना'। किन्तु क्रिया के प्रति भी विनय होनी चाहिये अर्थात् उसमें किसी प्रकार की शंका, कांक्षा, विचिकित्सा नहीं हो। मन में करणी के प्रति शंका नहीं होनी चाहिये। न मन में यह संशय होना चाहिये कि जो क्रिया मैं कर रहा हूँ उसका लाभ मिलेगा या नहीं। जैसा कि कहते हैं 52 डूंगरी धन भी सामायिक की दलाली मे कम पड़ जाता है। मै रोज सामायिक करता हूँ, फिर भी व्यापार चल नहीं पा रहा है। रोजी-रोटी घर में बराबर उपलब्ध नहीं है। खाने के लाले पड़ जाते हैं। फिर कैसे मानूं कि सामायिक का यह लाभ होता है कि 52 डूंगरी धन उसकी दलाली मे कम पड़ जाये। इसका समाधान यह है कि हमारा तौलने का साधन उपयुक्त नही है। सोचें कि हमने किससे तौला है ? तराजू सही ली गई है या नहीं। कोई सोचे कि अनाज के काँटे से सोने-चाँदी को तौलूं या सोना-चाँदी के तराजू से हीरे-पन्ने, माणक, मोती तौल लूं तो क्या तौल पाएगा ? उन साधनों से उनका तौल नहीं होगा। जो सामग्री जिस तराजू से तोलनीय या मापनीय होती है उसी तराजू का अवलंबन लेना होगा तभी हम सही तरीके से उस पदार्थ का माप-तौल कर पाएंगें। सामायिक का तौल यदि धन से किया जाए, यदि व्यापार-धंधे से किया जाये तो मानना होगा कि हमने तराजू सही नही ली है। तराजू सही नहीं होगी तो जो तौल आप कर रहे हैं वह बराबर बैठ नही पाएगा।

कई भाई विचार करते हैं कि सामायिक में लाभ ज्यादा है या संवर में ? प्रतिक्रमण में ज्यादा है या तपस्या मे ? सभी मिठाईयाँ हैं, देखना यह है कि हमारी जठराग्नि किस मिठाई को कितना पचा पाती है। यद्यपि बादाम की कतली बहुत अच्छी है पर जठराग्नि बराबर नहीं

तो वह किस काम की ? उससे ताकत नहीं मिलेगी। वैसे ही सामायिक का भाव हमारा बरकरार है। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अनुकूलता है तो वैसी स्थिति में सूत्र, विनय, आचार, तपस्या की साधना की जाती है। जठराग्नि दीप्त है तो उसका पूरा लाभ होगा। इसलिए कहा जाता है- एक घड़ी, आधी घड़ी, आधी की भी आध, पर संगत ऐसी करें कि मन इधर-उधर न डोल सके। प्रयत्न यह रहे कि जो धार्मिक क्रिया की जा रही है मन उसी में लीन रहे। मन, वचन, काया का विशेष एकीकरण हो जाये। यह नहीं कि मन कहीं जा रहा है और वचन किसी और तरफ तथा काया तीसरी तरफ प्रवृत्ति करे। यदि त्रिवेणी की प्रवृत्ति भिन्न-भिन्न है तो वह त्रिपथता और तीनों पथ मिल जायें तो वह त्रिवेणी। विनय में इन तीनों को एकाकार करते हैं।

उसके बाद आता है आचरण अर्थात् क्रिया का रूप। घर भी बन गया तो वह तप मे समाधिस्त करा सकता है क्योंकि जो भी कदम क्रिया मे बढ़ेगा, वह कदम चलेगा तप की दिशा में। वह पूर्ति की ओर ले जायेगा। तप केवल अनशन रूप ही नहीं है। तप के अनेक भेद है। कोई कुछ भी कह रहा है उस पर कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं करता, प्रतिक्रिया व्यक्त होना तो दूर की बात बल्कि मन, वचन, काया रूप भोगों को ऐसा साध लिया जाये कि किसी भी प्रकार की प्रतिक्रिया उत्पन्न न हो। यह अवस्था भी तप के ही अंतर्गत है। इस प्रकार एक नहीं अनेक प्रकार से तप-अनुष्ठान संपन्न किये जा सकते हैं।

इस संदर्भ मे भगवान महावीर की तपस्या हमारे समक्ष आदर्श रूप है। कानो में कीलें ठोकने पर भी कोई प्रतिक्रिया मन में उत्पन्न नहीं होना। अन्याय, उपसर्गो के समय स्वयं को सम बनाये रखना तप का ही एक रूप कहा जा सकता है। प्रभु महावीर ने 12 वर्षो तक छद्मस्थ अवस्था मे साधना की, परीषहों का सामना किया और उसी साधना के क्षणो में ऋजुवालिका नदी के किनारे, गोदुह आसन मे (गाय दुहने के आसन मे) विना हिले-डुले निष्कप रहकर ध्यान-साधना की और केवलज्ञान प्राप्त किया। यही नहीं केवलज्ञान प्राप्त होने के पूर्व 12 वर्षो तक वे मौन भी रहे। परन्तु केवलज्ञान उत्पन्न होने पर जो दृश्य ज्ञान मे

उभरा वह था जैसे कीडे बिलबिलाते हैं वैसे ही प्रत्येक व्यक्ति दुःख से सतप्त है। विचारों की कुलबुलाहट से प्राणी उन्हें कितने परेशान दिख और भगवान महावीर ने आत्मसमाधि के लिए तत्काल देशना दी। यह बात अलग है कि देशना सुनने वाले बहुत थे किन्तु क्रियान्विति करने वाले कोई नहीं। इसीलिए कहा जाता है कि प्रथम देशना खाली गई क्योंकि वहाँ सुनने वाले देव थे जो धार्मिक अनुष्ठान करने में समर्थ नहीं होते। वे सुन सकते थे किन्तु कर नहीं सकते थे। बंधुओं ! देखिये कि देवो से बढकर सौभाग्य मनुष्यो को, श्रावकों को प्राप्त है। जो देव नहीं कर पाता वह मनुष्य कर लेता है। तब सोचिये, हमारे भीतर कितना सामर्थ्य है। देवों से भी बढ़कर सामर्थ्य है। जिसे देव नहीं कर सकते उसे मनुष्य करने में समर्थ है बशर्ते वह पुरुषार्थ प्रकट करे। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि व्यक्ति अपनी शक्ति से अनभिज्ञ होता है जब कोई उसे स्मरण करा दे तो उसकी सुषुप्त शक्ति जागृत हो जाती है। हनुमान को यह पता नहीं था कि वे समुद्र लांघ सकते थे। किन्तु जब उन्हे स्मरण कराया गया, "हनुमान ! तुम्हारे भीतर वह शक्ति है। अब अवसर आया है तो ऐसे अवसर पर यदि उस क्षमता को प्रकट नहीं कर सकते तो फिर किस काम की।" कहते है तत्काल हनुमान के भीतर ऐसी ताकत पैदा हुई कि उनका विराट रूप बन गया और वे समुद्र को लांघने मे सफल हो गये। वह विराट रूप हमारे भीतर, हम सबके भीतर विद्यमान है बशर्ते हम उसे जागृत कर ले।

विद्वान् श्री राजेशमुनिजी म.सा. कह गये कि तीली रगड खाकर दीपक को प्रकाश देती है, जिसका फैलाव होता है। जैसे माचिस में ज्योति भरी होती है, दिखती नहीं है, किन्तु रगड़ लगने पर वह प्रकट हो जाती है, वैसे ही तीर्थंकर देवो के प्रवचन होते है। हालाँकि शब्द अपने आप मे जड़ होते है किन्तु वे चेतना को ऐसी सामर्थ्य दे सकते है कि चेतना में ओज और जागृति पैदा हो जाये। तीर्थंकर देवो की वाणी भले प्राकृत या अर्धमागधी में निबद्ध हो किन्तु उसकी रगड़ यदि हमने अपनी आत्मा में, आत्मा की बाती मे लगा ली तो हमारी आत्मा आलौकित हो सकती है। इसीलिए कवि विनयचंदजी कहते हैं

प्रवचनसार विचार हिया में.........।

बंधुओ ! प्रभु महावीर ने केवलज्ञान प्राप्त होने के बाद जिस देशना को प्रवाहित किया उसके लिये यह नही देखा कि सुनने वाला अमीर है या गरीब है। यह भेद तीर्थंकर के उपदेश में नहीं होता कि अमीर आये तो अमीर को तो देना किन्तु यदि गरीब आये तो उसे टरका देना। कोई महत्त्वपूर्ण व्यक्ति आये तो उसके अनुसार देशना देना और सामान्य व्यक्ति या छोटा बालक आये तो उसे बहला देना। तभी कहा गया है-

जहा पुण्णस्स कत्थइ, तहा तुच्छस्स कत्थइ।

जैसा पुण्यवान के लिए कहा, वैसा ही तुच्छ के लिए कहा। तो क्या वे रोज रटी-रटाई भाषा ही बोलते थे। जिस प्रकार आज तक टेप रिकॉर्डर द्वारा संभव होता है कि कोई आये और चालू हो गये। ऐसा नही है। भाषा-भाव में अंतर हो सकता है, कथन शैली में अतर हो सकता है किन्तु कथन करने का जो सार है, जो मूल उद्देश्य है, वह सबके लिये एक होता है कि प्रत्येक आत्मा का कल्याण हो। कोई क्लिष्ट या साहित्यिक भाषा समझता है, कोई सरल भाषा या लोक भाषा। जो जिस रूप मे समझे उसे वैसा उपदेश देना ताकि वह उसके समझकर अन्तर ज्योति को प्रकट कर सके। उनकी देशना निरन्तर चलती रही। केवलज्ञान प्राप्ति के पश्चात् लगभग 30 वर्ष तक यह क्रम चलता रहा।

14,000 संत, 36,000 साध्वियाँ और श्रावक-श्राविका हजारो नही, लाखों की संख्या में। जो भी निकट आया, उसे दिशाबोध देकर गतिशील किया। 30 वर्ष के पश्चात् जब प्रभु का अंतिम समवशरण था तव शकेन्द्र ने निवेदन किया कि थोडा-सा आयु का समय बढा लीजिये क्योंकि निर्वाण का समय नजदीक आ गया है और आपकी जन्मभूमि पर भस्म ग्रह का योग है, जिससे 2000 वर्ष तक शासन की नवलाई रहेगी। धर्म का जो उद्योत होना चाहिये वह हो नही पाएगा। इस पर भगवान ने उत्तर दिया- "धर्म या शासन के प्रति तुम्हारी गहरी आस्था-निष्ठा है, इसलिए तुम ऐसा कह रहे हो किन्तु आयु के क्षणों को

बढ़ाने में तीर्थंकर भी समर्थ नहीं होते।" भगवान का उत्तर सुनकर इन्द्र समझ गया कि यह भवितव्य योग है।

बंधुओं ! भगवान महावीर के निर्वाणोपरान्त लगभग दो हजार वर्ष का समय जिनशासन के लिए ऐसा निकला कि उसकी ज्वाजल्यमान ज्योत मेरू रूप से ज्योतित रही। दो हजार वर्ष का समय व्यतीत होता है और गुजरात में लुंका का जन्म होता है, जिसे लोग लोंकाशाह के नाम से पहचानने लगे थे। देखिये कि जीवन की घटनाएँ व्यक्ति को कैसे मोड़ देती हैं। पिता का स्वर्गवास हो गया। छोटी उम्र थी। पिता ने एक रत्न दिया था। कहा था– जब काम पड़े तब मेरे अमुक मित्र के यहाँ गिरवी रख देना और जितनी संपत्ति की आवश्यकता हो, मेरे मित्र से ले आना। समय की गति ऐसी रही कि घर की व्यवस्था डगमगा गई। देखा कोई उपाय नहीं तो तिजौरी से वह रत्न निकाला और पिता के मित्र की पेढ़ी पर पहुँच गये। पिता के मित्र ने कहा– "मेरे पिता ने कहा था इस रत्न को बेचना मत। मेरे मित्र के यहाँ गिरवी रखकर संपत्ति ले आना, तो मैं यह रत्न गिरवी रखने आया हूँ।" सेठ ने रत्न देखा। ये तुम्हारे घर पर ही रहने देना। जब कभी ऐसे रत्न का कोई ग्राहक आयेगा तब मंगवा लिया जायेगा। तुम्हें जितनी आवश्यकता हो उतनी संपत्ति ले जाओ।" फिर पूछा– ये बता कि तू क्या करता है ? मै पढ़ता हूँ, अतिरिक्त समय में कोई काम नहीं है। इस पर सेठ ने कहा– तो ऐसा करो अतिरिक्त समय में मेरी पेढ़ी पर आया करो और काम किया करो। बस काम शुरू कर दिया। विचक्षण बुद्धि थी, थोड़े ही दिनों में पारंगत हो गये।

फिर संयोग बना। सम्राट के यहाँ बाहर के जौहरी आये थे। माल की परख करने के लिए बड़े-बड़े जौहरी पहुँचे थे। जौहरी रत्न देख-देखकर कीमत आँकने लगे। लुंका चुपचाप बैठे रहे। सम्राट की निगाह पड़ी, पूछा– "यह बालक कौन है ?" उत्तर मिला– "अमुक पेढ़ी पर काम सीखने वाला नवीन जौहरी है।" सम्राट को उत्सुकता हुई, पूछा– "तू चुप क्यो बैठा है ? तू भी अपनी प्रतिभा का परिचय दे। लुंका ने कहा– "राजन् ! बड़े-बुजुर्गों के अनुभव के सामने मै अपनी अल्पज्ञता का क्या बखान करूँ। अपनी क्या राय रखूँ ?" सम्राट ने

आश्वस्त किया- "नहीं-नहीं खुले दिल से अपनी बात कहो।" लुंका ने आत्मविश्वास भरे शब्दों में कहा- "राजन् ! जिस हीरे की कीमत लाखो में आँकी जा रही है वह फूटी कौड़ी का भी नहीं है।" लुंका के इस निर्णय को सुनकर सारे जौहरियों के चेहरो पर तनाव की रेखाएँ खिंच गईं। उन्होने सोचा- हमारी परख को चुनौति दे रहा है। समय की भी नजाकत होती है और ये तो अनादिकाल से चला आ रहा है कि अपना पराभव कोई नही चाहता। हर व्यक्ति अपनी बात ऊपर रखना चाहता है। विरोध के स्वर उभरे- "ऐसा कैसे कह दिया ?" सम्राट ने सबको चुप कर दिया। जिसका माल था उसने कहा- "ये बुद्धि का कच्चा बालक, यह क्या जाने ? ये अपनी बात सिद्ध करे।"

लुंका आगे बढ़ा और नम्रतापूर्वक कहा- "हुजूर इस रत्न का भेदन किया जाये। अपने आप सत्य प्रकट हो जायेगा।" रत्न का भेदन करते ही उसके टुकडे हो गये। वह व्यापारी खड़ा था, चेहरा फक् पड़ गया। दूसरे जौहरी भी विचारमग्न हो गये, निगाह इतनी पैनी और इतनी छोटी उम्र में ! प्रखर प्रतिभा ! इसके बाद तो सम्राट के यहाँ ऐसी पहचान बनी और ऐसा आदर बढ़ा कि जब भी रत्न-परीक्षा होती लुंका को सभा में अवश्य उपस्थित रहना होता।

तब पिता के मित्र सेठ को अवसर मिला। उसने प्यार से कहा- बेटे ! तुम्हें मालूम है कि तुम्हारे पिता ने एक रत्न छोड़ा है। बाहर के व्यापारी आये है, अच्छा मौका है; बेचकर संपत्ति के रूप मे उसका रूपान्तरण कर लिया जाये। तो जाओ और वह रत्न घर से ले आओ।

कथा के अनुसार लुंका घर गये, तिजौरी खोली, डिब्बी निकाली, रत्न को देखा और देखकर बाहर फेंक दिया। बंधुओ ! क्या रत्न को ऐसे फेक दिया जाता है ? पर जब तक रत्न की परीक्षा नहीं होती है, काँच को भी अलमारी मे सुरक्षित करके रखा जाता है, पर जब रत्न-परीक्षा हो जाती है और पता चल जाता है कि यह रत्न नही है, मात्र काँच है, तब उसे रखने की क्या उपयोगिता ? पारखी की निगाहों में काँच, काँच होता है। इसलिए फेंक दिया लुंका ने। फिर वह पेढ़ी पर पहुँचा, खाली हाथ और पिता के मित्र सेठ से कह दिया- "वह रत्न नहीं काँच का

टुकड़ा था अतः मैंने फेक दिया।" फिर कहा- "पर मेरी जिज्ञासा है कि जिस समय मैं वह आपके पास लाया था तब ही आपने ये बात क्यों नहीं बता दी ? मैं उस समय ही फेंक देता।" सुदृढ़ सेठ ने अब रहस्य खोला, कहा- "मैं समझ गया था किन्तु उस समय कहता तो तुम्हारे दिल मे मेरे प्रति अन्यथा विचार पैदा होते ? और यह भाव पैदा होते कि मित्र होकर भी शोषण में लगे हैं या कालान्तर मे छुड़ाने आते तो यह बात भी आती कि मेरा रत्न दबा लिया। इसलिए मैने कहा था कि घर पर ही रहने दो। अब जब तू स्वयं पारखी बन गया तो परीक्षा कर ली। अब मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि पिता ने बहुत संपत्ति लगाकर वह रत्न खरीदा होगा किन्तु जब देखा कि यह काँच का टुकड़ा है तो सदमे से उनकी मृत्यु हो गई। रत्न पड़ा रह गया।"

लुंका के जीवन से संबंधित यह एक घटना है जो सिद्ध करती है कि पूत के पैर पालने मे ही दिख जाते हैं। लोंकाशाह के जीवन की यह विशेषता थी कि वे रत्नों की परख में जितने कुशल थे, धर्म के प्रति भी उतने ही सजग थे। जहाँ भी संतो का संयोग मिलता, धर्म-चर्चा करते। यह जयपुर भी जौहरियों की नगरी है। यहाँ के श्रावक कहने लगे- पहला चातुर्मास जयपुर मे हो। सुना था जयपुर संघ धर्मरसिक संघ है। मानवमुनिजी ने कहा था, जयपुर के लिए कि यह जिनवाणी का रसिक संघ है। यहाँ के मंत्रीजी कहने लगे यहाॅ आप शास्त्र का वांचन करे। उनकी भावना का सम्मान करते हुए मैं भी अपनी क्षमता के अनुसार वीतराग वाणी का अवलंबन लेते हुए लगभग 4 महीने से कुछ ऊपर ही, अपनी बात प्रस्तुत करता रहा। यहाँ के श्रावकों व बाहर के दर्शनार्थियों ने सुनने मे तत्परता दिखाई। वे सुनते रहे तब मैं यह बात भी कह दूं कि वे लोंकाशाह का अनुसरण भी करें। अनुसरण करने की बात जिस विशेष प्रयोजन से मै कह रहा हूँ, उसे भी समझिये।

लोकाशाह सुनकर ही नहीं रहते थे आचरण भी करते थे। जब एक बार उनकी लिखावट संतों ने देखी तो सोचा कि शास्त्रे की प्रतियाँ जीर्ण-शीर्ण हो रही है, क्यो न उनका उद्धार करा लिया जाये। शास्त्रें के पुनर्लेखन का प्रस्ताव लोकाशाह के सम्मुख रखा गया। उन्हें तो जैसे मुँह

मांगी मुराद मिल गई। अत्यन्त हर्ष पूर्वक वे बोले- यह तो मेरा सौभाग्य होगा और प्रतियाँ लेकर वे लेखन कार्य करने लगे। किन्तु पत्रिका को पत्रिका के रूप में लिखने वाले की कोई खास प्रतिभा नहीं होती। परन्तु लोंकाशाह तो प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति थे, तो रत्न परखने मे कुशल भी थे। शास्त्रवाणी के अन्तर्निहित भाव उनके हृदय मे खुलने लगे-

प्रवचन सार विचार हिया में........।

प्रवचनो को देखकर विचार उनके भीतर आंदोलित होने लगे। वे तुलना करने लगे कि दशवैकालिक क्या बोल रहा है, आचारांग क्या बोल रहा है और आज साधु-जीवन क्या बोल रहा है ? उनका चिन्तन चला- इतनी दूरी कैसे हो गई ? हालाँकि समय का प्रभाव रहा था उसमें। कुछ शास्त्र मौजूद रहे, कुछ का लोप हो गया था, पर क्रियाओ का बहुत-सा लोप उस समय तक बन चुका था। लोकाशाह ने उनकी नकल उतारनी शुरू की। जिज्ञासा थी तो अध्ययन करते और साथ-साथ प्रत्येक की दो-दो प्रतियाँ उतार लेते। बीच-बीच मे संतो से प्रश्नोत्तर करते और जिज्ञासाएँ भी व्यक्त करते। उनकी गहरी पकड देखकर संतो ने पूछा- "तुम इतनी बाते कैसे जानते हो ?" उन्होने उत्तर दिया- "प्रति बनाते हुए मै पढता भी हूँ, चिन्तन भी करता हूँ और अर्थ पर विचार भी करता हूँ।" यह सुनकर संतो ने कहा- "नहीं, नही, शास्त्र नहीं पढना।"

पढ़े सूत्र तो मरे पुत्र।

बधुओ । आँखें बंद करके तो लिखा नहीं जा सकता। लि सकते है क्या ? यद्यपि कई जगह प्रज्ञाचक्षु बालको के लिए शिक्ष शालाएँ चलती है जहाँ आँखो से नही देख सकने वाले शिक्षा लेते ताकि वे जीवन व्यवहार चला सके। पर लोंकाशाह तो लोकाशाह ही थ उन्होने कहा- ऐसा तो कैसे हो सकता है ? अंततोगत्वा उनसे कहा गर कि शास्त्र दे दो। संतो की आज्ञा का पालन करते हुए लोंकाशाह ने पु को शास्त्र ले आने का आदेश दिया। पुत्र ने पूछा- "कौन-से लाऊँ दिन के लाऊँ या रात के ?" उन्होने कहा- "दिन के लिखे हुए।" संतो

को आश्चर्य हुआ। पूछा- "क्या दो प्रतियाँ करते हो ?" उत्तर मिला- "हाँ, मुझे भी चाहिये।" आज भी कई भाई संतों के गीत सुन लेते है तो कहते हैं कि डायरी दे दो। गीत पसंद आ जाता है तो क्या करते हैं ? नकल-वकल नहीं करते। आँखों पर जोर नहीं देते। झट जाते हैं कम्प्यूटराईज्ड करवाकर पॉकेट में डाल लेते हैं। ऐसी-ऐसी हरकतें जानने, देखने, सुनने में आती हैं। ये उचित नहीं है। लिखिये हाथो से, वहाँ मस्तिष्क काम करेगा। पॉकेट में भर लेंगे तो मस्तिष्क का काम नहीं होगा।

पूज्य गुरुदेव फरमाया करते थे कि लिखने से विषय 50 प्रतिशत हृदयंगम हो जाता है। एक बार लिखने से यदि 50 प्रतिशत अंकित हो गया, तो फिर दो बार पढ़ेंगे तो बहुत कुछ याद हो जावेगा।

लोंकाशाह ने स्पष्टीकरण दिया- "दो प्रतियाँ करता हूँ किन्तु रात में करने में कुछ आरंभ की स्थिति बनती है इसलिए वह प्रति नहीं दे सकता।" उनसे कहा गया- "दोनों दो।" लोंकाशाह ने दृढ़ता से विरोध प्रकट करते हुए कहा- "नहीं, दिन में की है, वह सेवा में समर्पित है, रात की नहीं दे सकता।"

बंधुओं ! यह है लोंकाशाह की शास्त्रें और धर्म के प्रति समर्पण की संक्षिप्त गाथा। यही लोंकाशाह शास्त्रें का अध्ययन करते हुए धर्म द्वद्व भी बजाने लगे। इधर भगवान महावीर का जन्म राशि पर भस्म ग्रह का काल पूर्ण हुआ और उधर लोकाशाह की क्रान्ति का सूत्रपात हुआ। एक बार संघ निकला जो वर्षा के कारण आगे बढ़ नहीं पाया। संघ के लोग लोंकाशाह को सुनने चले जाते। उनको सुनने में काफी रुचि होती उसी संघ के 45 व्यक्तियों ने एक साथ दीक्षा स्वीकार की। फिर लोगों ने उनका तिरस्कार किया और कहा कि ये धर्म विद्रोही है, पर वे घबराये नहीं, प्रचार-प्रसार करते रहे। ग्रंथों में अलग-अलग प्रसंग है। यह भी बतलाया गया है कि वे गृहस्थ रहे। ऐसा भी बतलाया गया है कि वे साधु बने। साधु बनकर प्रचार-प्रसार किया। उसी दौरान जब वे एक बार अहमदाबाद की ओर जा रहे थे, तब एक ढूंढे में रुके। लोगों ने कहा- ये ढूँढिया है। उन्होंने निर्लिप्त भाव से उत्तर दिया- कोई बात नही, जो

तत्त्व इधर-उधर हो रहा था, उसे हमने ढूंढ लिया है। जो ढूंढ ले वह ढूंढिया। उन्होंने सही अर्थ ही निकाला।

भगवान महावीर के निर्वाण के 609 वर्षों के बाद दिगम्बर मत की स्थिति बनी। 690 वर्ष बाद मूर्ति की स्थापना का प्रसंग बना। कहा जाता है कि भगवान महावीर के निर्वाण के 694 वर्ष बाद पहला मंदिर सांचोर में निर्मित हुआ था।

तब से चैत्यवासी परम्परा का प्रारंभ हुआ। इस प्रकार जिनशासन की क्रियाओं की धूमिल अवस्था बनी।

श्री भद्रबाहु स्वामी के स्वप्न का फल सुनकर जो संत श्री भद्रबाहु स्वामी के साथ दक्षिण की तरफ प्रयाण कर गये उनका उधर ही विचरण होता रहा। दक्षिण मे जो पहुँचे उनकी सुविहित मार्ग के रूप में पहचान बनी। फिर लोकाशाह की क्रान्ति के बाद वे सुविहितमार्गी नया रूप साधुमार्ग बना।

विचार कीजिये- क्रान्ति किसे कहा जाये ? कोई कहता है क्रान्ति वह है जिसमे खून-खराबा होता है। किन्तु क्रान्ति का वह रूप यहाँ नही समझा जाये। क्रान्ति वह है जो हमारे भीतर की भ्रान्ति दूर करे। उसी क्रान्ति के आधार पर जीवन मे शांति स्थापित होगी। जब तक भ्रान्ति है, क्रान्ति घटित नहीं होगी। जब तक क्रान्ति घटित नही होगी, तब तक शांति भी नहीं मिल सकती। कितनी ही प्रार्थना कर ले, जाप कर ले, कुछ भी कर ले किन्तु जिन्दगी में शांति प्राप्त हो ही नही सकती। आज हमारी विचित्र अवस्था बन गई है। कैसे-कैसे जीवन को भ्रात करते चलते है और मान लेते है कि हम क्रान्ति कर रहे हैं। आपको एक दृष्टान्त देता हूँ।

कुछ सियार उत्पात करते नगर मे चले गये तो लोगो ने उन्हे खदेड़ दिया। उनमें से एक सियार कुछ ज्यादा ही होशियार था। भागते समय वह कागज का एक टुकडा उठा लाया। फिर उस सियार ने जगल मे सभा बुलाई और एक ऊँचे स्थान पर खड़े होकर सभा को सम्बोधित करने लगा- "सियार भाईयो ! घबराने की आवश्यकता नहीं है। मै प्रमाण पत्र लाया हूँ। उसके आधार पर मै नगर मे गया था और मन चाहा

घूमकर आया हूँ।" सभी सियार कहने लगे- "ओ हो ! हमारे नेता जिन्दाबाद !" सभी हॉ में हाँ मिलाने लगे। पुनः नगर घूमने की योजना बनाई। उन्हें देखकर कुत्ते भौंकने लगे। सियार कहने लगे कुत्ते भौंक रहे हैं। सियार मुखिया ने कहा- "ऐ ! क्यों भौंकता है ? मेरे पास प्रमाण पत्र है। हमें कोई रोक नहीं सकता।" सियारों का मनोबल बढ़ गया। हमारे पास प्रमाण पत्र है, ये क्या करेंगे। वे हौंसला बुलन्द करके चलने लगे। कहने लगे- ओ हो ! मजा आ गया। फिर उन्होंने नगर में प्रवेश किया तो एक बलिष्ठ कुत्ते से सामना हो गया। उसकी आवाज शेर की तो नहीं कह सकता किन्तु आस-पास के क्षेत्र में गूंज पैदा कर देने के लिये काफी थी। उसकी भौंक के उत्तर में जब और कुत्ते भी दौड़ आये तो जिस सियार के पास प्रमाण पत्र था वह नेता भी भागने लगा। इस पर दूसरे सभी सियार कहने लगे कहाँ जा रहा है ? निकाल-निकाल प्रमाण पत्र।" सियार नेता ने उत्तर दिया- क्या बताऊँ, ये अनपढ़ हैं। पढ़ना नहीं जानते। बच करके निकल जाना ही ठीक है।"

बंधुओं ! यह एक रूपक है। इस प्रकार ऐसी भ्रान्तियाँ फैलाकर शांति प्राप्त नहीं की जा सकती क्योंकि व्यक्ति भ्रान्तियों में डाँवाडोल हो जाता है। कोठारीजी बोल गये हैं कि आज क्रान्ति दिवस है परन्तु बंधुओ ! क्रान्ति तब होगी, जब भ्रान्ति दूर कर जीवन में नयापन अनुभव करेंगे। ऐसी क्रान्ति खूनी नहीं होगी। ऐसी क्रान्ति से जीवन में शांति प्राप्त होती है और जीवन आनंदमय बन जाएगा। लोंकाशाह ने ऐसी ही क्रान्ति की और भ्रान्ति का निवारण किया। इसीलिये वह क्रान्ति जन-जन में शांति पैदा करने वाली बनी। परिणामस्वरूप इतना समय शान्ति में बीत गया। लगभग 500 वर्ष से अधिक हो गये हैं फिर भी आज हम उनका श्रद्धापूर्वक स्मरण कर रहे है। भ्रान्ति दूर कर सबके लिए शांति का मार्ग प्रस्तुत करके उन्होंने मानवता का अपरिमित कल्याण किया।

सुविहितमार्गी की नई पहचान साधुमार्ग के रूप में बनी, उसके पीछे मन्तव्य यह है कि यह मार्ग तीर्थंकर देवों से आया हुआ मार्ग है- **साधो आगतः मार्गः साधुमार्गः**। उस मार्ग की प्रवृत्ति में नये-नये रूप उद्‌घाटित हुए। इसकी स्थानकवासी, 22 सम्प्रदाय आदि नामों से भी

पहचान बनी। यह साधुमार्ग अनादिकाल से अविच्छिन्न रूप में प्रवाहित है और प्रवाहित होता रहेगा। भरत क्षेत्र में उसकी आदि होती है, पर महाविदेह मे यह प्रवृत्ति सदासर्वदा प्रवाहित रहती है। भगवान महावीर के निर्वाण के 2280 वर्ष बाद तेरापंथ का प्रवर्तन हुआ। यह है इस मार्ग का संक्षिप्त इतिहास। लोंकाशाह ने जो क्रान्ति की वह संत जीवन की सुरक्षा के लिए की थी। आज आवश्यकता इस बात की है कि हम उन्हीं लोंकाशाह का स्मरण करते हुए यह भी सुनिश्चित करे कि यह क्रान्ति बरकरार रहे। वर्तमान समय की स्थितियों में साधुचर्या के स्वरूप को देखकर भ्रमित होने की स्थिति नहीं बनें, इसके लिए हमे सूत्र का सहारा और विनय का आश्रय लेना होगा। टी.वी. संस्कृति और मीडिया के प्रचार की चकाचौंध हमें भ्रमित न कर पाये इसलिए यह आवश्यक है कि सूत्र की बात हमारे ध्यान मे रहे। तो ये आशंका नहीं जगेगी। बंधुओं ! यदि मूल खूंटा नहीं रहा तो क्रिया समाप्त हो जायेगी और जीवन का निष्कर्ष, समाधि जो मिलनी चाहिये, वह प्राप्त कर नहीं पाएगे। बावरी समाज के भाई जिन्होने साहस का कदम उठाया है, उनकी हिम्मत बरकरार रहे। मैं चाहूंगा कि ऐसा विचार नही करें कि कौन हमे सहारा देगा। आप अपने पैरों पर खड़े रहने की स्थिति मे आयें और आध्यात्मिक लक्ष्मी की प्राप्ति के प्रति प्रयत्नशील रहें तो निश्चित है कि विजय तिलक लगाकर जिस जय-यात्र पर आप निकलें है उसे पूर्णता तक पहुँचा पाएंगे।

हालांकि चातुर्मासिक प्रतिक्रमण के पश्चात् खमतखामणा का प्रसग रहता है किन्तु आज की सभा में भी खमतखामणा की बात होनी है। जयपुर के संघ मंत्री श्री उमरावमलजी अपनी भावना व्यक्त कर गये है। वैसे तो जयपुर राजस्थान की राजधानी है किन्तु संत यह सोचकर यहाँ चातुर्मास नही करते। उनके लिये विचारणीय यह होता है कि राज्य की यह राजधानी धर्म की राजधानी कितनी है। यह चिन्तन करते हुए जब क्षेत्र का चयन किया जाता है तभी सार्थक आत्मसाधना होती है और समाधि भाव भी बना रहता है। जयपुर की जनता धर्मप्राण जनता है। कौन व्याख्यान देता हे, बडा सत या छोटा संत; कितनी देर व्याख्यान देता है, इसको और उनका ध्यान नही जाता। उनका उद्धेश्य तो सत वाणी सुनना

होता है। उनकी प्रवृत्ति रहती है कि स्वाध्याय के लिए समय दें तो तैयार, समय न दे पाएं तो अपने आप कर लेंगे, पर उपालंभ नहीं देंगे कि टाईम नहीं दिया। जयपुर की जनता की यह एक और विशेषता है कि यहाँ जिस संप्रदाय का चातुर्मास होता है, उसकी मर्यादा का ध्यान रखा जाता है। इस दृष्टि से जयपुर की जनता ने अपना कर्त्तव्य बखूबी निर्वाह करने का प्रयत्न किया है। कठिनाईयों को सहते हुए भी कल्प में व्यवधान उपस्थित करने का प्रयत्न नहीं किया। इधर से नहीं उधर से आना पड़े, घूमकर आना पड़े, तो भी मंजूर है अन्यथा इतना घूमने में भी कंटाला आना स्वाभाविक है। कल्पमर्यादा के साथ ही ज्ञान-दर्शन-चारित्र की अभिवृद्धि में आपने सहयोग दिया। चातुर्मास में संत-सतियो की विशेष बीमारी के प्रसंग नहीं बने और सामान्य स्थितियों में भी संघ ने तत्परता दिखाई। संत-सती वर्ग मे समाधि बनी रहे इसका लक्ष्य रखा। यह अन्य संघों के लिए भी आदर्श रूप है।

संघ ने अपनी भक्ति भावना का परिचय दिया। संत-सती वर्ग भी अपनी साधना में तन्मय रहते हुए श्रावक समाज को यथायोग्य प्रेरणा, प्रतिबोध देता रहा है। उस प्रेरणा, प्रतिबोध में यद्यपि आशय किसी व्यक्ति समाज को व्यथित करने का नहीं होता तदपि छद्‌मस्थता के कारण हमारे किसी भी व्यवहार से प्रेरणा प्रबोध से किसी भी व्यक्ति के दिल को ठेस लगी हो तो जयपुर संघ अपने माता-पिता के विरुद्ध को कायम रखते हुए विचार करे कि बालक गोद में लात भी मारता है, पर माता-पिता उसे सहन करते हैं और बालक पर स्नेह-वर्षण्ण करते रहते हैं। बालक को गोद से छिटका नहीं देते। वैसे ही छोटे-छोटे संत, महाश्रमणीरत्नाजी एवं छोटी साध्वियाँ एवं मेरे निमित्त से किसी भी भाई-बहिन का किसी भी प्रकार से दिल दुःखा हो तो संघ सदस्य क्षमा का अमृत बरसा कर उदारता दिखाएंगे।

11.11.2000

❖ ❖ ❖

आचार्य श्री रामलालजी म.सा. का जीवन परिचय

निवासी	: देशनोक
पिता का नाम	: श्री नेमीचन्दजी भूरा
माता का नाम	: श्रीमती गवराबाई भूरा
गोत्र	: भूरा
जन्म तिथि	: चैत्र सुदी 14 संवत् 2009
विवाहित/अविवाहित	: अविवाहित
दीक्षा तिथि	: माघ सुदी 12 संवत् 2031
दीक्षा स्थल	: देशनोक
दीक्षा गुरु	: आचार्य श्री नानेश
दीक्षा के समय उम्र	: 22 वर्ष 9 माह 28 दिन
युवाचार्य पद तिथि	: फाल्गुन सुदी 3 संवत् 2048
युवाचार्य पद प्रदान स्थल	: बीकानेर
युवाचार्य पद के समय दीक्षा पर्याय	: 17 वर्ष 21 दिन
युवाचार्य पद के समय उम्र	: 39 वर्ष 10 माह 19 दिन
युवाचार्य काल	: 7 वर्ष 7 माह 15 दिन
युवाचार्य काल में दीक्षा (सतों की)	: 9
आचार्य पद तिथि	: कार्तिक बदी 3 संवत् 2056
आचार्य पद स्थल	: उदयपुर
आचार्य पद के समय उम्र	: 47 वर्ष 6 माह 4 दिन
आचार्य पद के समय दीक्षा पर्याय	: 24 वर्ष 8 माह 6 दिन